पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति

[अखिल भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रि परिषद् द्वारा ११०१ रु० के
१९७३ चाँदमल पाण्ड्या पुरस्कार से पुरस्कृत]

डॉ. रमेशचन्द बिजनौर
द्वारा भेंट

लेखक
डॉ० रमेशचन्द जैन
एम० ए०, पी-एच-डी०, डी० लिट्, जैनदर्शनाचार्य
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
वर्द्धमान कालेज, बिजनौर

प्रकाशक
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

प्रकाशक
श्री राजकुमार सेठी
प्रकाशन मंत्री
श्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा
प्रकाशन विभाग

प्राप्ति स्थान :

- श्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा
  केन्द्रीय ग्रन्थागार
  कोठारी भवन ३०/३१, नई धानमण्डी,
  कोटा (राजस्थान)
- पीयूष भारती
  जैन मन्दिर के पास, बिजनौर (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण : १९८३
वी. नि. सं. २५१०

मूल्य : पचास रुपया

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी-१०

परम पूज्य पितामह
श्री सिंघई भागचन्द जैन सोंरया
के करकमलों में
सादर समर्पित
जिनको
हार्दिक प्रेरणा एवं मृदुल स्नेह
पाकर मैं अपने जीवन पथ में
आगे बढ़ सका

उदारमना सहयोगी

श्री निर्मलकुमार जैन सेठी
सीतापुर (उ० प्र०)

आभार

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी (जन्म ४ जुलाई, १९३८) तिनसुकिया के सुप्रसिद्ध व्यवसायी एवं उद्योगपति स्व० श्री हरकचन्द जी सेठी के ज्येष्ठ पुत्र हैं। उन्होंने अल्पकाल में ही औद्योगिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में विशेष प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है।

सिल्चर, गोरखपुर, सीतापुर व लखनऊ में आपकी आटा-चावल मिलें हैं तथा तिनसुकिया, गोहाटी व दिल्ली में व्यापारिक प्रतिष्ठान है।

आप उ० प्र० रोलर फ्लोर मिलर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष रहे हैं, कई सरकारी समितियों के सदस्य हैं व सरकारी डेलीगेशनों में विदेशों की यात्रा भी कर चुके हैं। आपका आचार-विचार अत्यन्त शुद्ध एवं निर्मल है तथा धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में आप सदा ही अग्रणी रहते हैं। वर्ष १९८१ में महासभा का अध्यक्ष पद ग्रहण करते ही प्रत्येक प्रान्त में महासभा के अधिवेशन आयोजित कराकर तथा प्रान्तीय समितियाँ गठित कराकर आपने जैन जगत् मे एक नवीन चेतना का संचार किया है।

दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार विकास के लिए आपकी उत्कट लगन है तथा देश भर के अनेक तीर्थ क्षेत्रों पर आपने मुक्त हस्त से दान देकर अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है। आप उत्तरांचल दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के महामंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी की कार्यकारिणी के सदस्य, अयोध्या तीर्थ क्षेत्र के अध्यक्ष तथा अन्य कई तीर्थ क्षेत्रों के संरक्षक अध्यक्ष हैं।

धर्म साहित्य एवं धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे आपकी विशेष रुचि है। डॉ० रमेशचन्द जैन की पी० एच० डी० उपाधि के शोध प्रबन्ध "पद्मचरित मे प्रतिपादित भारतीय संस्कृति" के प्रकाशन मे आपने आर्थिक सहयोग दिया है। जिसके लिए श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का साहित्य प्रकाशन विभाग आपका विशेष आभारी है। डॉक्टर साहब संस्कृत साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठत विद्वान् हैं तथा बर्तमान में बिजनौर स्नातकोत्तर कालेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं।

राजकुमार सेठी
मंत्री—साहित्य प्रकाशन-विभाग,
श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा

प्राक्कथन

महादेश भारतवर्ष की प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न प्राचीन एवं मध्ययुगीन भाषाओं में प्राप्त जैन परम्परा का पुराण साहित्य पर्याप्त विपुल, विविध एवं श्रेष्ठ कोटि का है। सुदूर अतीत से ही शिष्ट साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत का सर्वोपरि महत्त्व रहता आया है और संस्कृत भाषा का भी जैन पुराण साहित्य भाषा-सौष्ठव, काव्योचित गुणों, आकार-प्रकार आदि किसी भी दृष्टि से अन्य परम्पराओं के पुराण साहित्य की अपेक्षा तनिक भी हीनस्तरीय नही है।

अद्यावधि उपलब्ध संस्कृत भाषा के जैन पुराणों में आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित सर्वप्राचीन है। सात महाधिकारों, १२३ पर्वों और १८००० श्लोकों मे निबद्ध इस महान् पुराण ग्रन्थ की रचना आचार्य ने महावीर निर्वाण के छः मास अधिक १२०३ वर्ष व्यतीत होने पर, अर्थात् सन् ६७६ ई० के वैशाख मास के शुक्ल पक्षारम्भ मे, सम्भवतया अक्षय तृतीया के दिन, पूर्ण की थी। ग्रन्थ के इस सुनिश्चित रचनाकाल के विषय मे किसी भी आधुनिक विद्वान् ने कोई शंका नही उठाई है। रविषेण दिगम्बर आम्नाय के अनुयायी थे, यह तथ्य निर्विवाद है, किन्तु उस परम्परा के किस संघ-गण-गच्छ से वह सम्बद्ध थे, इसकी कोई सूचना नही है। केवल यही ज्ञात है कि वह सन्मुनि लक्ष्मणसेन के शिष्य थे, जो स्वयं अर्हन्मुनि के शिष्य और दिवाकर यति के प्रशिष्य थे और यह दिवाकर यति इन्द्रगुरु के शिष्य थे।

जैन परम्परा में इक्ष्वाकुवंशी अयोध्यापति दाशरथि रामचन्द्र का अपरनाम 'पद्म' विशेष प्रसिद्ध रहा है, अतएव पद्मपुराण या पद्मचरित से आशय रामचरित, रामकथा या रामायण का होता है। भारतीय पुराण पुरुषो में श्री राम का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र या कथानक प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय रहता आया है और उसका प्रभाव देश एवं काल की सीमाओं का अतिक्रमण करके अतीव व्यापक रहा है। ब्राह्मण परम्परा मे वाल्मीकीय रामायण रामचरित्र का मूलाधार माना जाता है। बौद्ध परम्परा मे उसका आधार दशरथ-जातक है। और जैन परम्परा में केवलिजिन प्रणीत द्वादशांगश्रुत के बारहवें अंग दृष्टिप्रवाद के तृतीय विभाग, 'प्रथमानुयोग' में वर्णित त्रेसठ–शलाका पुरुषों का चरित उसका मूल स्रोत माना जाता है। आचार्य रविषेण के अनुसार पद्मचरित (रामचरित्र) का वह मूल कथानक इन्द्रभूति, सुधर्मा

आदि केवलियों और प्रभव आदि श्रुतकेवलियों के माध्यम से प्रवाहित होता हुआ अन्ततः अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर नामक आचार्य को प्राप्त हुआ और उक्त कीर्तिधर के ग्रंथ को देखकर रविषेण ने अपना पद्मपुराण रचा है। रविषेण के परवर्ती अपभ्रंश भाषा के महाकवि स्वयंभू ने भी अपनी रामायण या पद्मचरित (लगभग ७९० ई०) में यही बात कही है, साथ ही कीर्तिधर के उपरान्त रविषेण का भी नामोल्लेख किया है। अतः इन दोनों विद्वानों के सन्मुख आचार्य कीर्तिधर का रामचरित्र विद्यमान था, जो अब कहीं उपलब्ध नही है। दूसरी ओर, विमलार्य कृत प्राकृत पद्मचरित का जिसका रचनाकाल विभिन्न विद्वान् प्रथम शती ई० से पांचवी शती ई० पर्यन्त किसी समय रहा अनुमानित करते है, कोई भी नामोल्लेख रविषेण और स्वयंभू ने नही किया, यद्यपि उसके साथ इन दोनों के ग्रन्थों की तुलना करने पर अनेक साम्य लक्षित होते हैं। अब या तो जिसे आज विमल सूरिकृत पद्मचरित्र के रूप में जाना जा रहा है, उसे ही रविषेण और स्वयंभू कीर्तिधर की कृति के रूप मे जानते थे, अथवा उन तीनों का ही मूल स्रोत वह कोई अन्य ग्रन्थ रहा है जिसके विषय में आज कुछ ज्ञात नही है। उन तीनो मे भी परस्पर भाषा, शैली, सकोच, विस्तार आदि के अनेक अन्तर है, तथापि वे जैन रामकथा की उस एक धारा का ही प्रतिनिधित्व करते है जो गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण (त० ८५० ई०) मे प्राप्त धारा से भिन्न है। परवर्ती लेखकों मे से कुछ ने एक धारा का अनुसरण किया, कुछ ने दूसरी का, तथापि गुणभद्रीय धारा की अपेक्षा रविषेणीय धारा ही अधिक लोकप्रिय रही। रामकथा या तत्सबंधी प्रसंगों अथवा प्रकरणविशेषों को लेकर जैन लेखकों द्वारा विभिन्न भाषाओ में रचित साधिक दो सौ रचनाएँ उपलब्ध है, उनमे से लगभग डेढ सौ का आधार रविषेणीय पद्मपुराण ही है।

हमने लगभग तीस वर्ष पूर्व रविषेणकृत पद्मचरित के सन्दर्भ मे लिखा था कि वह 'प्राचीन भारत के सास्कृतिक इतिहास की जानकारी तथा रामकथा की विभिन्न जैनाजैन धाराओ के तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। वस्तुत प्रत्येक साहित्यकार की कृति मे उसके समसामयिक समाज की सभ्यता एवं सस्कृति अल्पाधिक प्रतिबिंबित होती ही हैं, भले ही उसका वर्ण्य कथानक उससे सैकड़ों या सहस्रो वर्षों पूर्व घटित घटनाओं एवं व्यक्तियों से सम्बन्धित रहा हो। अतएव इधर विश्वविद्यालयों के शोधछात्रो द्वारा ग्रन्थपरक सांस्कृतिक अध्ययन अनेक किये जा रहे हैं। डॉ० रमेशचन्द जैन का पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'पद्मचरित मे प्रतिपादित भारतीय संस्कृति' भी उसी कड़ी की शोध-ओजपूर्ण कृति है। ई० सन् की छठी-सातवी शताब्दियों के आसपास की भारतीय सस्कृति, सभ्यता एवं

जनजीवन से सम्बन्धित जो विपुल सामग्री रविषेणाचार्य की इस पुराण में संचित है, उसका सम्यक् आलोडन करके, बड़े श्रमपूर्वक एवं सूझबूझ के साथ डॉ० जैन ने अपनी इस पुस्तक में उजागर किया है, जिसके लिए वह साधुवादार्ह है। चयनित सामग्री का व्यवस्थित आकलन, तुलनात्मक विवेचन, उपर्युक्त सन्दर्भ, यथावश्यक पादटिप्पणियो, समीक्षक दृष्टि, उपयोगी परिशिष्टों आदि से समन्वित यह शोधप्रबन्ध ज्ञानवर्द्धक, प्रामाणिक एवं पठनीय है, और तद्विषयक शोध-खोज मे सहायक होने की क्षमता से युक्त है। रामकथा के विभिन्न पक्षों तथा तद्विषयक विभिन्न साहित्यिक कृतियों पर गत पचास-साठ वर्षों में जो अनेकों शोध-खोजपूर्ण विवेचन प्रकाश में आये हैं, और नित्य आ रहे हैं, उनमें डॉ० जैन के इस रविषेणीय पद्मचरित विषयक सांस्कृतिक अध्ययन की भी गणना होगी।

ज्योति प्रसाद जैन

ज्योति निकुञ्ज,
चारबाग, लखनऊ–१९
दिनांक २१-१०-१९८३ ई०

दो शब्द

"पद्मचरित और उसमें प्रतिपादित भारतीय संस्कृति" ग्रन्थ विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा वर्ष १९७२ ई० में पी-एच. डी. उपाधि हेतु स्वीकृत किया गया था । इस ग्रन्थ की रचना में अनेक विद्वानों की कृतियों का यत्र-तत्र उपयोग हुआ है । श्रद्धेय डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा अनूदित तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पद्मचरित के प्रामाणिक संस्करण का उपयोग लेखक ने ग्रन्थ निर्माण मे किया है । पूज्य गुरुवर्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, डॉ० हीरालाल जी, सिद्धान्ताचार्य, डॉ० फूलचन्द्र शास्त्री, डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री, डॉ० दरबारीलाल कोठिया, प्रो० उदयचन्द्र जैन, प्रो० अमृतलाल शास्त्री एवं डॉ० कोमलचन्द जैन की रचनाओं अथवा सुझावो से मैं विशेष लाभान्वित हुआ । श्रद्धेय पं० जम्बूप्रसाद जी शास्त्री समय-समय पर सत्परामर्श देते रहे । शोध प्रबन्ध के निर्देशक होने के कारण डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन (महामन्त्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद्) एवं भूतपूर्व रीडर संस्कृत अध्ययन-शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) से पर्याप्त दिशा निर्देश प्राप्त होता रहा । अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद् के कर्णधार डॉ० लालबहादुर शास्त्री तथा वाणीभूषण पं० बाबूलाल जैन जमादार ने उक्त ग्रन्थ पर श्रीमान् राय साहब चाँदमल पाण्ड्या पुरस्कार के अन्तर्गत १९७३ का एक सहस्र एक सौ एक रुपये का पुरस्कार दिलाकर लेखक का उत्साहवर्द्धन किया है । महावीर प्रेस, वाराणसी के मालिक बाबूलाल जैन फागुल्ल ने सुन्दर मुद्रण कर समाज को अनेक ग्रन्थरत्न भेंट किए हैं, इसी परम्परा मे यह ग्रन्थ भी उन्ही के प्रेस में मुद्रित होकर जन साधारण के समक्ष आ रहा है । इन सब महानुभावों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । श्रीमान् सेठ निर्मलकुमार जी सेठी, सीतापुर इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महासभा की ओर से अपना आर्थिक योग-दान न दिलाते तो यथाशीघ्र इस ग्रन्थ का सबके समक्ष आना कठिन था, अतः मैं अ. दि. जैन महासभा तथा उसके अध्यक्ष सेठी सा. के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ । वर्द्धमान कॉलिज बिजनौर तथा जैन मन्दिर, बिजनौर के ग्रन्थागारों में उपलब्ध ग्रन्थों से मैं लाभान्वित हुआ, अतः इनके तत्कालीन पदाधिकारियों डॉ० श्रीराम त्यागी, डॉ० राजकुमार अग्रवाल एवं आदरणीय बाबू रतनलाल जैन के प्रति मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ । आशा है, जन समुदाय एवं विद्वन्मण्डली में इस ग्रन्थ का समादर होगा ।

जैन मन्दिर के पास
बिजनौर, उ० प्र०

विद्वद्गुणानुरागी
रमेशचन्द जैन

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

अध्याय ७

उपसंहार

अध्याय १

पद्मचरित का परिचय

पद्मचरित के कर्ता

पद्मचरित के कर्ता आचार्य रविषेण हैं। इन्होंने अपने किसी संघ, गण-गच्छ का उल्लेख नहीं किया है और न स्थानादि की चर्चा भी की है। अपनी गुरु परम्परा के विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है कि इन्द्र गुरु के शिष्य दिवाकर यति थे, उनके शिष्य अर्हद् यति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और उनका शिष्य मैं रविषेण हूँ।[1] पं० नाथूराम प्रेमी ने रविषेण के सेनान्त नाम से अनुमान लगाया है कि ये शायद सेन संघ के हों और इनकी गुरुपरम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकर सेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मण सेन हों।[2] इनके निवास स्थान, माता-पिता आदि के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

पद्मचरित का समय

पद्मचरित की रचना के विषय में रविषेण ने लिखा है—जिनसूर्य श्री वर्धमान जिनेन्द्र के मोक्ष जाने के बाद एक हजार दो सौ तीन वर्ष छः मास बीत जाने पर श्री पद्ममुनि (राम) का यह चरित लिखा गया है।[3] इस प्रकार इसकी रचना ७३४ विक्रम (६६७ ई०) मे पूर्ण हुई।

पद्मचरित की कथा वस्तु का आधार

पद्मचरित की कथावस्तु के आधार के विषय मे रविषेण ने लिखा है कि श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ यह अर्थ इन्द्रभूति नामक गणधर को प्राप्त हुआ, अनन्तर धारणीपुत्र सुधर्मा को प्राप्त हुआ, अनन्तर प्रभव को प्राप्त हुआ, प्रभव के अनन्तर कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। कीर्तिधर आचार्य के अनन्तर अनुत्तरवाग्मी आचार्य को प्राप्त हुआ तथा अनुत्तरवाग्मी आचार्य का

---

१. आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि- ।
स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम् ।। पद्म० १२३।१६८

२. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८८।

३. द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्द्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धेश्चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम् ।। पद्म० १२३।१२८

लिखा हुआ प्राप्त कर यह रविषेण का प्रयत्न प्रकट हुआ है ।[४] ग्रन्थ के अन्तिम पर्व में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है ।[५] तदनुसार समस्त संसार के द्वारा नमस्कृत श्री वर्द्धमान (जिनेन्द्र) ने पद्ममुनि का जो चरित कहा था वही इन्द्रभूति (गौतमगणधर) ने सुधर्मा और जम्बू स्वामी के लिए कहा । वही जम्बू-स्वामी के प्रशिष्य उत्तरवाग्मी आचार्य के द्वारा प्रकट हुआ । ये उत्तरवाग्मी कौन थे ? इसके विषय मे अभी तक कोई जानकारी नहीं प्राप्त हुई । इनके द्वारा लिखित राम कथा भी आज उपलब्ध नहीं है ।

रामकथा सम्बन्धी प्राकृत की सबसे प्राचीन रचना विमलसूरि कृत पउम-चरियं है । पउमचरियं तथा पद्मचरित को मिलाकर देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनों का कथानक सर्वथा एक है । दोनों को परस्पर देखने से इसमे कोई सन्देह नही रहता कि वे एक दूसरे के भाषात्मक रूपान्तर मात्र है ।[६] किसने किसका अनुवाद किया, यह यहाँ विचारणीय है । रविषेण ने अपनी रचना विक्रम सं० ७३४ मे पूर्ण की, इसका उन्होंने ग्रन्थ में ही उल्लेख किया है । इस पर किसी को विवाद नही है । विमल सूरि ने वीर नि० सं० ५३० या वि० सं० ६० के लगभग पउमचरियं की रचना की,[७] इसके विषय में विवाद है । डॉ० हर्मन जैकोबी उसकी भाषा और रचना शैली पर से अनुमान करते है कि वह ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी की रचना है ।[८] डॉ० कीथ,[९]

---

४. वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम् ।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मं धारणीभवम् ॥ पद्म० १।४१ ।
प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनुत्तरवाग्मिनम् ।
लिखितं तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः ॥ पद्म० १।४२ ।

५. निर्दिष्टं सकलैर्नतेन भुवनैः श्री वर्द्धमानेन यत् ।
तत्त्वं वासवभूतिना निगदितं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।
शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुनेः ।
श्रेयः साधुसमाधिवृद्धिकरणं सर्वोत्तमं मङ्गलम् ॥ पद्म० १·३।१६७ ।

६. जैन साहित्य और इतिहास (नाथूराम प्रेमी), पृ० १०२–१०८ ।

७. पंचेव वासया दुसमाए तीसवरस संजुत्ता ।
वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥
पउमचरियं (जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८७)

८. एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड ईथिक्स, भाग ७, पृ० ४३७ और मार्डन रिव्यू दिस० सन् १९१४ ।

९. कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

डॉ० बुलनर[10] आदि इसे ईसा की तीसरी शताब्दी के लगभग की या उसके बाद की रचना मानते हैं, क्योंकि उसमें दीनार शब्द का और ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक शब्दों का उपयोग किया गया है। दी० ब० केशवराव ध्रुव उसे और भी अर्वाचीन मानते हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्येक उद्देस के अन्त में जो गाहिणी, शरम आदि छन्दों का उपयोग किया गया है वह उनकी समझ में अर्वाचीन है। गीति में यमक और सर्गान्त विमल शब्द का आना भी उनकी दृष्टि में अर्वाचीनता का द्योतक है।[11] डॉ० विंटरनित्ज, डॉ० लॉयमन आदि विद्वान् वीर नि० ५३० को ही पउमचरिय का रचनाकाल मानते हैं।[12] उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में जो वि० सं० ८३५ में समाप्त हुई थी, विमल[13] के विमलांक (पउमचरिय) की और रविषेण के पद्मचरित[14] की सराहना की है। इससे निश्चित रूप से इतना तो अवश्य ही सिद्ध होता है कि पउमचरिय वि० सं० ८३५ से पूर्व की रचना है। पं० नाथूराम प्रेमी पद्मचरित को प्राकृत पउमचरिय का पल्लवित छायानुवाद मानते है। इसकी पुष्टि के लिए उनके प्रमुख तर्क निम्नलिखित[15] हैं।

१. दोनों ग्रन्थकर्ताओं ने अपने-अपने ग्रन्थ में रचनाकाल दिया है। उससे स्पष्ट है कि पउमचरिय पद्मचरित से पुराना है।
२. पद्मचरित मे विस्तार और पउमचरिय मे संक्षेप पाया जाता है।
३. दोनों का कथानक बिल्कुल एक है और नाम भी एक है।
४. पर्वों या उद्देसों के नाम प्रायः एक से है।
५. पउमचरिय के अन्तिम पद्य में विमल और पद्मचरित के पर्व के अन्तिम पद्य में रवि शब्द आता है।
६. पद्मचरित मे जगह-जगह प्राकृत आर्याओं का शब्दशः संस्कृत अनुवाद दिखलाई देता है।

---

१० इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत।

११. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९१।

१२ वही, पृ० ९१।

१३. जारिसियं विमलंको विमलंको तारिसं लहइ अत्थं।
अमयमइयं च सरसं सरसं चिय पाइअं जस्स ॥

१४. जेहिं कए रमणिज्जे वरंग पउमाणचरियवित्थारे।
कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय रविसेणो ॥
—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८८।

१५. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८९-९०।

७. माहण शब्द की उत्पत्ति की जो कथा (मा हननं कार्षीः = हनन मत करो—पद्म० ४।१२२) पद्मचरित में मिलती है उससे उसके प्राकृत स्रोत का ही अनुमान होता है। संस्कृत में ब्राह्मण शब्द ही प्रचलित है। ब्राह्मण शब्द से इस प्रकार की व्युत्पत्ति नहीं निकाली जा सकती।

८. प्राकृत से संस्कृत किये जाने के अनेक उदाहरण जैन साहित्य में मिलते हैं। संस्कृत से प्राकृत मे अनुवाद किये जाने का एक भी उदाहरण नहीं मिलता।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि रविषेणाचार्य ने इसे पउमचरिय के आधार से जैसा का तैसा रख दिया है, किन्तु पद्मचरित में पउमचरिय या उसके कर्ता का कहीं भी नामोल्लेख न किया जाना उपर्युक्त मत के स्वीकार करने के बीच एक बहुत बड़ी बाधा है। हो सकता है ये दोनों ग्रन्थ एक दूसरे के छायानुवाद न होकर किसी अन्य पूर्ववर्ती आचार्य के छायानुवाद या पल्लवित अनुवाद हों और उनकी वह रचना आज अनुपलब्ध हो। इस दृष्टि से पद्मचरित मे जिन अनुत्तरवाग्मी[16] मुनिराज का उल्लेख आता है तथा जिनका लिखा रविषेण को प्राप्त हुआ, उन्ही अनुत्तरवाग्मी मुनि प्रणीत ग्रन्थ के आधार पर दोनों ने अपनी रचना की हो, यह भी हो सकता है। पद्मचरित के आधार पर कवि स्वयम्भू ने अपभ्रंश मे पउमचरिउ की रचना लगभग आठवी सदी[17] के प्रथम चरण मे की। इस रचना का मूल स्रोत स्वयम्भू ने भी वही माना, जो कि रविषेण ने माना था।[18] इतना विशेष है कि चूँकि इन्होंने अपनी रचना रविषेण के पद्मचरित के आधार पर की थी, अतः अन्त मे रविषेण का नाम भी दे दिया। इससे भी उपर्युक्त मन्तव्य की पुष्टि होती है।

दोनों ग्रन्थों के अध्ययन मे इतना अन्तर अवश्य ज्ञात होता है कि जब रविषेण की कृति पूरी तरह दिगम्बर परम्परा की है तब विमलसूरि की कृति में कुछ बातें दिगम्बर परम्परा के अनुकूल हैं, कुछ श्वेताम्बर परम्परा के अनुकूल

---

१६. पद्म० १।४२।

१७. डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन : पउमचरिउ (हिन्दी अनुवाद–प्रस्तावना सहित)।

१८. बद्धमाणमुहकुहर विणिग्गय। रामकहा णइएह कमागय॥ १॥
.... ॥
एस रामकहसरि सोहन्ती। गणहर देवेंहि दिट्ठ वहन्ती॥ ६॥
पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं। पुणु धम्मेणगुणालंकरिएं॥ ७॥
पुणु पहवें संसाराराएं कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं॥ ८॥
पुणु रविसेणायरिय पसाएं। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं॥ ९॥
—पउमचरिउ, पृ० ६।

हैं और कुछ दोनों के प्रतिकूल होकर तीसरी परम्परा की ओर संकेत करती हैं। इसके कुछ उदाहरण भारतीय ज्ञानपीठ के सम्पादकद्वय डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये तथा डॉ० हीरालाल ने दिये हैं।[१९] पं० पन्नालाल साहित्यचार्य ने भी इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।[२०] इसे दुहराना यहाँ पिष्टपेषण ही होगा।

पद्मचरित की कथावस्तु

पद्मचरित की कथावस्तु १२३ पर्वों में विभक्त है। इनमें कुछ पर्व तो बहुत बड़े-बड़े हैं और कुछ छोटे है, कुछ न बहुत बड़े है न बहुत छोटे। प्रथम पर्व में मङ्गलाचरण, सज्जन दुर्जन प्रशंसा तथा ग्रन्थ की संक्षिप्त कथावस्तु वर्णित है। द्वितीय पर्व मे राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर भगवान् महावीर के समवसरण में जाने का वर्णन है। तृतीय पर्व मे राजा श्रेणिक का गौतम गणधर से रामकथा के विषय में जिज्ञासा प्रकट करना, गौतम द्वारा कथा सुनाने का आश्वासन, कुलकरो की उत्पत्ति, ऋषभदेव का जन्म तथा उनके दीक्षाकल्याणक आदि का वर्णन है। चतुर्थ पर्व मे ऋषभदेव का राजा श्रेयान्स और सोमप्रभ के यहाँ आहार लेना, भगवान् को कैवल्य की प्राप्ति होना, भरत-बाहुबली युद्ध तथा ब्राह्मणवर्ण की सृष्टि विषयक चर्चा है। पंचम पर्व में चार महावंशों की वंशावलियाँ, अजितनाथ भगवान् का वर्णन तथा सगर चक्रवर्ती का वर्णन है। षष्ठ पर्व मे वानरवंश का विस्तृत वर्णन है। सप्तम पर्व मे रथनूपुर के राजा इन्द्र का वर्णन तथा राक्षस वंश मे दशानन की उत्पत्ति और प्रभाव वर्णित है। नवम पर्व में बालि, सुग्रीव, नल, नील आदि की उत्पत्ति, रावण द्वारा कैलाश पर्वत का उठाया जाना तथा बालि के प्रभाव की चर्चा है। दशम पर्व मे सुग्रीव का सुतारा से विवाह, रावण का दिग्विजय के लिए निकलना तथा राजा सहस्ररश्मि की जलक्रीड़ा, दीक्षा आदि का वर्णन है। ११वें पर्व मे हिंसायज्ञ का इतिहास दिया गया है। १२वें पर्व में रावण द्वारा इन्द्र की पराजय तथा १३वें पर्व मे इन्द्र का दीक्षा लेने, निर्वाण प्राप्त करने का वर्णन है। १४वें पर्व मे अनन्तबल मुनिराज का केवलज्ञान तथा रावण द्वारा जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मैं उसे बलात् नहीं चाहूँगा, इस प्रकार की प्रतिज्ञा ग्रहण का उल्लेख है। १५वें पर्व में पवनञ्जय की उत्पत्ति और उसका अंजना के साथ विवाह वर्णित किया गया है। १६वें पर्व में रावण का वरुण के साथ युद्ध, पवनञ्जय का उसमें जाना, अंजना के प्रतिविद्वेष त्याग तथा संभोग शृंगार का वर्णन है। १७वें पर्व में अंजना का गर्भ धारण करना, अपमानित कर घर से निकाला जाना तथा हनु-

---

१९. पद्मपुराण, पृ० ७ (प्रस्तावना)।

२०. वही, पृ० २८-३० (प्रस्तावना)।

मान् की उत्पत्ति की कथा कही गयी है। १८वें पर्व में पवनंजय तथा अंजना के मिलाप का वर्णन है। १९वें पर्व मे वरुण के विरुद्ध होने पर रावण का सब राजाओं को आमन्त्रण देना, हनुमान् का उसमें जाकर पराक्रम दिखाना वर्णित है। २०वें पर्व में चौबीस तीर्थङ्करों तथा अन्य शलाका पुरुषों का वर्णन है। २१वें पर्व में मुनिसुव्रतनाथ तथा उनके वंश का वर्णन, इक्ष्वाकु वंश के प्रारम्भ का वर्णन तथा कीर्तिधर और सुकोशल मुनि की दीक्षा आदि का उल्लेख है। २२वें पर्व मे कीर्तिधर तथा सुकोशल मुनि का तप, उनकी सद्गति तथा सौदास की कथा कही गई है। २३वे पर्व मे नारद द्वारा राजा दशरथ और जनक को रावण के दुर्विचार का संकेत तथा विभीषण द्वारा दशरथ और जनक के पुतलों के सिर काटे जाने का वर्णन है। २४वे पर्व मे कैकया और उसकी कलाओं का विस्तृत परिचय, दशरथ का कैकया के साथ विवाह वर्णित है। २५वें पर्व मे राजा दशरथ के चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है। २६वे पर्व में राजा जनक के विदेहा से सीता और भामण्डल की उत्पत्ति, भामण्डल का अपहरण तथा चन्द्रगति विद्याधर के यहाँ उसके वृद्धि को प्राप्त होने का वर्णन है। २७वें पर्व में म्लेच्छ राजाओं द्वारा जनक के देश मे उपद्रव करने तथा दशरथ द्वारा राजा जनक की सहायता किये जाने के कारण म्लेच्छों की पराजय तथा जनक का दशरथ के पुत्र राम के लिए अपनी पुत्री सीता देने का निश्चय अंकित है। २८वे पर्व मे नारद के कारण भामण्डल को सीता के प्रति आसक्ति, जनक का मायामयी घोड़े द्वारा हरा जाना तथा जनक द्वारा यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा देगे तो सीता ले सकेंगे अन्यथा भामण्डल लेगा इस प्रतिज्ञा का वर्णन है। २९वे पर्व मे दशरथ द्वारा आष्टाह्निक महापर्व का मनाया जाना तथा सर्वभूतहित मुनि के आगमन का वर्णन है। ३०वें पर्व मे भामण्डल का सीता तथा जनक से मिलन बतलाया गया है। ३१वें पर्व मे दशरथ के पूर्वभव, राम के राज्याभिषेक की घोषणा, कैकया को वर प्रदान, भरत का राज्याभिषेक तथा राम लक्ष्मण तथा सीता का वन गमन वर्णन प्रमुख विषय है। ३२वे पर्व मे केकया और भरत का राम को लौटाने का प्रयास तथा निराश होकर भरत का राज्यशासन सँभालना वर्णित है। ३३वें पर्व में वज्रकर्ण की रक्षा तथा सिंहोदर-वज्रकर्ण की मैत्री कराकर राम-लक्ष्मण के आगे बढ़ने का कथन किया गया है। ३४वें पर्व का प्रतिपाद्य विषय राम-लक्ष्मण द्वारा म्लेच्छ राजा को आज्ञाकारी बनाकर बालखिल्य को बन्धनमुक्त कराना है। ३५वें पर्व में यक्षपति द्वारा राम-लक्ष्मण के निवास के लिए रामपुरी की रचना तथा राम का उसमें निवास करना वर्णित है। ३६वें पर्व मे लक्ष्मण का वनमाला से विवाह होता है। ३७वें पर्व मे राम-लक्ष्मण नर्तकी के वेष मे जाकर अतिवीर्य को बन्धन में बाँधकर मुक्त करते हैं

तथा अतिवीर्य दीक्षाग्रहण करता है। ३८वें पर्व में लक्ष्मण का जितपद्मा के साथ विवाह होता है। ३९वें पर्व में राम-लक्ष्मण देशभूषण-कुलभूषण मुनि का उपसर्ग निवारण करते हैं। ४०वें पर्व में वंशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ राम का अभिवादन करते है। राम दण्डक वन को प्रस्थान करते हैं। ४१वें पर्व में राम लक्ष्मण तथा सीता का जटायु से मिलन होता है। ४२वें पर्व में पात्र दान के प्रभाव से राम-लक्ष्मण रत्न तथा स्वर्णादि से युक्त होकर इच्छानुसार दण्डक वन में घूमते हैं। ४३वें पर्व में लक्ष्मण द्वारा शम्बूक वध तथा उन्हें सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति होती है। ४४वें पर्व में राम-लक्ष्मण का खरदूषण के साथ युद्ध होता है। खरदूषण की सहायता के लिए रावण आता है। छल से वह सीता को हर ले जाता है। ४५वें पर्व मे राम सीता के वियोग में दुःखी होते हैं उनकी विराधित से मैत्री होती है। ४६वें पर्व में रावण सीता के साथ लंका पहुँचता है। मंदोदरी बहुत समझाती है लेकिन वह नहीं मानता। ४७वे पर्व में राम कृत्रिम सुग्रीव (साहसगति) को मारते है तथा यथार्थ सुग्रीव की तेरह कन्याओं से विवाह करते हैं। ४८वे पर्व में रत्नजटी बतलाता है कि सीता को रावण हर ले गया है। ४९वें पर्व मे लक्ष्मण कोटिशिला उठाते हैं। वानर लक्ष्मण की शक्ति का विश्वास कर युद्ध करने के लिए तैयार होते हैं। ४९वें पर्व में हनुमान् सीता के पास राम का संदेश भेजने के लिए लंका जाते हैं। ५०वें पर्व में हनुमान् बलपूर्वक राजा महेन्द्र को परास्त करते हैं। ५१वें पर्व मे राम को गन्धर्व कन्याओं की प्राप्ति होती है। ५२वें पर्व में हनुमान् लंका के मायामयी कोट को ध्वस्त कर लंका सुन्दरी के साथ विवाह करते हैं। ५३वें पर्व मे हनुमान् लंका में जाकर विभीषण से मिलते है। बाद में सीता को राम का सन्देश सुनाते है। अनन्तर बन्धनबद्ध होने पर वे रावण के समक्ष जाकर बन्धन तोड लंका को नष्ट-भ्रष्ट कर वापिस आ जाते हैं। ५४वें पर्व मे हनुमान् राम को सीता की दयनीय स्थिति का निरूपण करते हैं। विद्याधर राम को साथ ले लंका की ओर प्रस्थान करते हैं। ५५वें पर्व मे विभीषण रावण से तिरस्कृत होकर राम से आ मिलता है। ५६वें पर्व में राम की सेना का वर्णन है। ५७वें पर्व मे लंका निवासिनी सेना की तैयारी तथा उसका लंका से बाहर निकलने का वर्णन है। ५८वे पर्व में नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त मारे जाते हैं। ५९वें पर्व में हस्त-प्रहस्त और नल नील के पूर्व भवों का वर्णन है। ६०वें पर्व मे अनेक राक्षस मारे जाते हैं। राम-लक्ष्मण को दिव्यास्त्र तथा सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्यायें प्राप्त होती हैं। ६१वें पर्व में सुग्रीव तथा भामण्डल नागपाश से बांधे जाकर राम-लक्ष्मण के प्रभाव से बन्धनमुक्त होते हैं। ६२वें पर्व मे वानर और राक्षसवंशी योद्धाओं का युद्ध होता है तथा लक्ष्मण को शक्ति

लग जाती है। ६३वें पर्व में शक्तिनिहत लक्ष्मण को देख राम विलाप करते हैं। ६४वें पर्व में एक अपरिचित मनुष्य विशल्या द्वारा लक्ष्मण की शक्ति दूर होने का उपाय बतलाता है। ६५वें पर्व में विशल्या लक्ष्मण की शक्ति दूर करती है तथा लक्ष्मण का विशल्या के साथ विवाह होता है। ६६वें पर्व में रावण का दूत राम के दरबार में आकर रावण के पक्ष का समर्थन करता है। यहाँ दूत को किसी फल की प्राप्ति नही होती है। ६७वे पर्व में रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता है। ६८वें पर्व मे दोनो सेनाये आष्टाह्निक पर्व मनाती हैं। ६९वें पर्व मे रावण शान्तिजिनालय मे विद्या सिद्ध करने के लिए आसनारूढ होता है। ७०वें पर्व में अंगद आदि योद्धा विघ्न उपस्थित कर रावण को विचलित करने का यत्न करते हैं। ७१वे पर्व मे रावण को विद्या सिद्ध हो जाती है। ७२वे पर्व में सीता का मन विचलित करने का रावण अनेक उपाय करता है। अन्त में सीता की दीनदशा देखकर रावण दु:खी होता है किन्तु वह युद्ध से विमुख नही होता है। ७३वे पर्व में रावण के मंत्री तथा पत्नी मन्दोदरी उसे समझाते हैं। ७४वे पर्व मे रावण और लक्ष्मण का भीषण युद्ध होता है। ७५वें पर्व में रावण लक्ष्मण पर चक्ररत्न चलाता है। पर वह तीन प्रदक्षिणाये देकर लक्ष्मण के हाथ मे आ जाता है। ७६व पर्व मे लक्ष्मण चक्ररत्न चलाकर रावण का अन्त कर देते हैं। ७७वें पर्व मे रावण की स्त्रियाँ, बन्धु बान्धव आदि करुण विलाप करते है। ७८वें पर्व में इन्द्रजित्, मेघवाहन, कुम्भकरण तथा मय आदि राजागण निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण करते है। मन्दोदरी तथा चन्द्रनखा आदि रानियाँ आर्यिका के व्रत ग्रहण करती है। ७९वें पर्व मे राम और सीता का मिलन होता है। ८०वें पर्व मे राम लका मे छः वर्ष तक रहते हैं। ८१वें पर्व में नारद लका मे पहुँचकर राम के सामने कौशल्या, सुमित्रा आदि के दु:ख का वर्णन करते हैं। ८२वें पर्व मे राम, लक्ष्मण तथा सीता इष्ट मित्रों के साथ अयोध्या आते है। ८३वें पर्व में भरत के निर्वेद का तथा त्रिलोक मण्डन हाथी का वर्णन है। ८४वें पर्व मे त्रिलोकमण्डन हाथी व्रत धारण करता है। ८५वें पर्व मे देशभूषण तथा कुलभूषण केवली हाथी और भरत के भवान्तरों का वर्णन करते है। ८६वें पर्व मे भरत दीक्षा धारण कर लेते हैं। केकया ३०० स्त्रियों के साथ आर्यिका बन जाती है। ८७वें पर्व में त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होता है। भरत का निर्वाण होता है। ८८वें पर्व मे राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक होता है। राम-लक्ष्मण अन्य राजाओं को देशों का विभाग करते हैं। ८९वे पर्व में शत्रुघ्न मथुरा का राज्य माँगकर मधु से युद्ध करते है। घायल मधु मुनि दीक्षा धारण कर लेते हैं। ९०वें पर्व में चमरेन्द्र कुपित होकर मथुरा में रोग फैलाता है। शत्रुघ्न अयोध्या वापिस आ जाते हैं। ९१वें पर्व में

शत्रुघ्न के पूर्वभवों का वर्णन है। ९२वें पर्व में सप्तर्षियों (सात मुनियों) को सीता आहार देती है। ९३वें पर्व में राम को श्रीदामा और लक्ष्मण को मनोरमा कन्या की प्राप्ति होती है। ९४वें पर्व में राम-लक्ष्मण का अनेक विद्याधर राजाओं का वश में करना तथा लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों और पुत्र का वर्णन है। ९५वें पर्व में सीता स्वप्न देखती है। द्वितीय स्वप्न कुछ अनिष्टकारक जान उसकी शान्ति के लिए जिनेन्द्रार्चन करती है। ९६वें पर्व में प्रजा राम से सीता के लोकापवाद की चर्चा कहती है। ९७वें पर्व में कृतान्तवक्र सेनापति जिन मन्दिरों के दर्शन कराने के बहाने सीता को जंगल में ले जाकर छोड आता है। ९८वे पर्व में वज्रजंघ सीता को धर्म बहिन समझकर सान्त्वना देता है। ९९वें पर्व मे सीता को वज्रजंघ बड़ी विनय के साथ अपने यहाँ रखता है। कृतान्तवक्रसेनापति लौटकर राम को सीता का संदेश सुनाता है। १००वें पर्व में सीता के गर्भ से अनङ्गलवण और मदनाङ्कुश की उत्पत्ति होती है। १०१वें पर्व में वज्रजंघ अपनी बत्तीस पुत्रियाँ लवण को देने का निश्चय करता है। पृथु की पुत्री कनकमाला का अङ्कुश से विवाह होता है। दोनो पुत्र दिग्विजय को निकलते हैं। १०२वे पर्व मे राम-लक्ष्मण के विषय मे जानकारी प्राप्त कर दोनों पुत्र सेना सहित जाकर अयोध्या को घेर कर घोर युद्ध करते है। १०३वें पर्व में पिता-पुत्रों का मिलन होता है। १०४वें पर्व मे सीता की अग्नि परीक्षा के लिए अग्निकुण्ड बनाया जाता है। १०५वें पर्व में सीता की अग्नि परीक्षा तथा उसका विराग वर्णित है। १०६वें पर्व में राम, लक्ष्मण और सीता के भवान्तरों का विवेचन है। १०७वें पर्व मे कृतान्तवक्र सेनापति दीक्षा ले लेता है। १०८वें पर्व मे सीता के दोनों पुत्र लवण और अङ्कुश के चरित्र का निरूपण है। १०९वें पर्व में सीता का तैंतीस दिन सल्लेखना धारण कर स्वर्ग में प्रतीन्द्र होने का वर्णन है। ११०वें पर्व में राजा का चन्द्ररथ की दो पुत्रियाँ क्रमशः लवण और अंकुश का वरण कर लेती हैं। १११वें पर्व में भामण्डल की वज्रपात से मृत्यु हो जाती है। ११२वें पर्व मे हनुमान् का विराग, ११३वें पर्व में हनुमान् का दीक्षा धारण करना। ११४वें पर्व में सौधर्मेन्द्र द्वारा यह कहा जाना कि सब बन्धनों में स्नेह बन्धन का टूटना सरल नहीं, वर्णित है। ११४वे पर्व में देवों के मुख से राम की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर लक्ष्मण का निधन हो जाता है। ११६वें पर्व में लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी में लिये फिरते हैं। ११७वें पर्व में सुग्रीव, विभीषण आदि राम को समझाते है। ११८वें पर्व में कृतान्तवक्र सेनापति के जीव देव के समझाने पर राम लक्ष्मण का दाह संस्कार कर देते हैं। ११९वें पर्व मे राम अनङ्ग लवण को राज्य दे दीक्षा ले लेते हैं। १२०वें पर्व मे राम का चर्या के लिए नगरी में आने तथा नगरी मे क्षोभ हो

जाने के कारण लौट जाने तथा १२१वे पर्व में वन मे राम को आहार लाभ होने का वर्णन है। १२२वें पर्व मे सीता का जीव राम को तपस्या से डिगाने का प्रयत्न करता है। १२३वें पर्व मे सीता का जीव नरक में जाकर लक्ष्मण तथा रावण को संबोधता है। राम का निर्वाण होता है। अन्त में रविषेण ने अपनी प्रशस्ति लिखी है।

कथानक रूढ़ियाँ

पद्मचरित मे कथानक रूढ़ियों को ग्रहण किया गया है। ये कथानक रूढ़ियाँ रविषेण को पूर्ववर्ती रचनाओ (लोकप्रचलित रामायण, पउमचरिय या अन्य आचार्यकृत ग्रन्थों, जिनका उन्होंने नाम निर्देश किया है) तथा लोकमानस से प्राप्त हुई होगी। इनमें रूप परिवर्तन या यथेच्छानुसार रूप बनाना (जैसे— चपलवेग नाम का विद्याधर सीता का हरण कर रथनूपुर ले गया था),[२१] दैवी शक्तियो का सहयोग (विभिन्न दैवीय शस्त्रास्त्रों आदि का सहयोग), अद्भुत-कृत्य (रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाया जाना,[२२] माया निर्मित अनेक शीश,[२३] अद्भुत पदार्थ (पुष्पक विमान[२४] आदि), प्रेमी के विरह में प्राण त्याग करने के दृढ संकल्प के समय प्रेमिका को प्रेमी की प्राप्ति[२५] आदि कथानक रूढियों का प्रयोग हुआ है।

राम कथा का एक दूसरा रूप

जैन राम कथा का एक दूसरा रूप हमें गुणभद्र (८९७ ई०) कृत उत्तर-पुराण में मिलता है। गुणभद्र की राम कथा का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम केकयी था। भरत, शत्रुघ्न अन्य किसी रानी से उत्पन्न हुए, जिसका नाम नही दिया है। दशानन विनमि विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र है। किसी दिन वह अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखता है और उसपर आसक्त होकर उसकी साधना मे विघ्न डालने का प्रयत्न करता है, मणिमती निदान करती है कि मै दशानन की पुत्री होकर उसे मारूँगी। मृत्यु के पश्चात् वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ में आती है। भविष्यवक्ताओं ने यह कहा कि यह कन्या आपका नाश करेगी। अतः रावण उसे मंजूषा में रखवाकर मरीचि के द्वारा जमीन में गडवा देता है। हल की नोक से उलझ जाने के कारण वह मंजूषा दिखलाई देती है और लोगो द्वारा जनक के पास ले जाई जाती है। जनक मजूषा को खोलकर एक कन्या को देखते

२१. पद्म० २८।६०-९९।
२२. पद्म० ९।१३६, १३७।
२३. वही, ७५।२३, २४, २५।
२४. वही, ४४।८४।
२५. वही, ३६।३५-४९।

हैं और उसका नाम सीता रखकर उसे पुत्री की तरह पालते हैं । जब वह विवाह योग्य होती है तब जनक चिन्तित होकर एक यज्ञ करते हैं । यज्ञ की रक्षा के लिए जनक राम-लक्ष्मण को बुलाते हैं । यज्ञ समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है । यज्ञ के समय रावण को निमंत्रण नहीं भेजा गया था अतः वह क्रुद्ध हो जाता है । नारद के मुख से सीता की अत्यधिक प्रशंसा सुनकर वह उसको हर लेने का विचार करता है ।

जब राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट को वाटिका में विहार करते है तब मारीचि स्वर्णमृग का रूप धारण कर राम को दूर ले जाता है । इतने मे रावण राम का रूप धारण कर सीता से कहता है कि मैंने मृग को महल मे भेजा है और वह सीता को पालकी पर चढने की आज्ञा देता है । यह पालकी पुष्पक है, जिसके द्वारा वह सीता को लंका ले जाता है । रावण सीता का स्पर्श नही करता, क्योंकि पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जाती है । दशरथ को स्वप्न द्वारा ज्ञात होता है कि रावण ने सीता का हरण किया है, वह राम के पास यह समाचार भेजते है । सुग्रीव और हनुमान् बालि के विरुद्ध सहायता माँगने पहुँचते है । हनुमान् लका जाकर सीता को सान्त्वना देने के बाद लौटते हैं । इसके बाद लक्ष्मण बालि बध करत है और सुग्रीव को राज्य का उत्तराधिकारी बनाते है । वानरो और राम की सेना विमान से लका पहुँचाई जाती है । युद्ध मे लक्ष्मण चक्र मे रावण का सिर काट देते हैं । राम परीक्षा किये बिना सीता को स्वीकार करते है । इसके बाद दोनों दिग्विजय करते है । कुछ वर्ष बाद राम-लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी लौट आते है । सीता के अपवाद का और उसके कारण उसे निर्वासित करने का इसमें उल्लेख नही है । लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मरकर नरक जाते हैं । राम, लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीसुन्दर को राज्य देकर और सीता के पुत्र अजितंजय को युवराज बनाकर अनेक राजाओं और सीता के साथ जिनदीक्षा धारण कर लेते हैं । राम तथा हनुमान् अन्त मे मोक्ष प्राप्त करते है ।

इस प्रकार उत्तरपुराण की कथा मे निम्नलिखित[२६] वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है—

१. इसमे सीता को रावण तथा मन्दोदरी की पुत्री माना है ।
२. दशरथ अयोध्या के राजा न होकर वाराणसी के राजा हैं ।
३. सीता के लोकापवाद तथा उसके निर्वासित करने का इसमें उल्लेख नहीं है ।

---

२६. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९३-९४ ।
बुल्के : राम कथा, पृ० ७७, ७८, ७९ ।

४. लक्ष्मण की मृत्यु राम की मृत्यु के समाचार के कारण न होकर किसी असाध्य रोग से बतलाई गई है।
५. कैकयी के हठ करने तथा राम को वनवास देने का इसमें कोई कथन नहीं है।
६. स्वर्णमृग के पीछे राम के दौड़ने के बाद रावण राम का वेष धारण कर सीता को पालकी में बैठाकर ले जाता है।
७. लक्ष्मण के द्वारा यहाँ बालि बध होता है।
८. सीता के आठ पुत्र थे। इनमे लव-कुश का उल्लेख नहीं है।

पद्मचरित और उत्तरपुराण की कथाओं में इस प्रकार भेद क्यों पड़ा। इसके विषय मे विचार करते हुए पं० नाथूराम प्रेमी ने अपने जैन साहित्य और इतिहास मे लिखा है कि पउमचरिय और पद्मचरित की कथा का अधिकांश वाल्मीकि के ढंग का है और उत्तरपुराण की कथा का जानकी जन्म विष्णुपुराण के ढंग का है। दशरथ बनारस के राजा थे, यह बात बौद्ध जातक से मिलती-जुलती है। उत्तरपुराण के समान उसमें भी सीता निर्वासन, लव-कुश जन्म आदि नहीं हैं अर्थात् भारतवर्ष में रामकथा की जो तीन परम्परायें हैं वे जैन सम्प्रदाय मे भी प्राचीनकाल से चली आ रही हैं। पउमचरिय के कर्ता ने कहा है कि उस पद्मचरित को मैं कहता हूँ जो आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है और नामावली निबद्ध है।[२७] इसका अर्थ यह है कि रामचरित उस समय नामावली रूप मे था अर्थात् उसमे कथा के प्रधान पात्रों के, उनके माता, पिताओं और स्थानों भवान्तरों आदि के ही नाम होगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और उसी को विमल सूरि ने विस्तृत चरित के रूप मे रचना की होगी।[२८] इस प्रकार गुणभद्र की रामकथा के आधार के विषय मे प० नाथूराम प्रेमी इस प्रकार लिखते है—'हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि के समान किसी अन्य आचार्य ने भी जैनधर्म के अनुकूल सोपपत्तिक और विश्वसनीय स्वतन्त्र रूप से राम कथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्य को गुरु परम्परा द्वारा मिली होगी।[२९] गुणभद्र के गुरु जिनसेन ने अपना आदिपुराण कवि परमेश्वर की गद्यकथा के आधार से लिखा था। गुणभद्र की गुरुपरम्परा के दो और नाम कन्नड भाषा के कवि चामुण्डराय की रचना में मिलते

---

२७. णामावलियनिबद्धं आयारियपरंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्वि समासेण ।। ८ ।।
—नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९५।

२८. वही, पृ० ९५। २९. वही, पृ० ९६।

हैं। चामुण्डराय त्रिषष्ठिलक्षण महापुरुष के लेखकों की सूची निम्नलिखित देते हैं—कूचिभट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कवि परमेश्वर, जिनसेन, गुणभद्र।[३०]

पद्मचरित के दूसरे पर्व में राजा श्रेणिक अपने मन में विचार करता है कि जो जिनधर्म के प्रभाव से उत्तम मनुष्य थे, उच्चकुल में उत्पन्न हुए थे, विद्वान् थे और विद्याओं के द्वारा जिनके मन प्रकाशमान थे, ऐसे रावण आदि लौकिक ग्रन्थों मे चर्बी, रुधिर तथा मांस का भक्षण करने वाले राक्षस सुने जाते हैं।[३१] रावण का भाई कुम्भकरण महाबलवान् था और घोर निद्रा से युक्त होकर छः माह तक निरन्तर सोता रहता था।[३२] यदि मदोन्मत हाथियों के द्वारा भी उसका मर्दन किया जाय, तपे हुए तैल के कडाहों से उसके कान भरे जावें और भेरी और शङ्खों का बहुत भारी शब्द किया जाय तो भी समय पूर्ण न होने पर वह जागृत नही होता था।[३३] बहुत बडे पेट को धारण करने वाला वह कुम्भकरण जब जागता था तब भूख और प्यास मे इतना व्याकुल हो उठता था कि सामने जो हाथी आदि दिखाई देते थे उन्हें खा जाता था इस प्रकार वह बहुत ही दुर्द्धर था।[३४] तिर्यंच मनुष्य और देवों के द्वारा तृप्ति कर पुनः सो जाता था। उस समय उसके पास कोई अन्य पुरुष नही ठहर सकता था।[३५] कितने आश्चर्य की बात है कि पापवर्द्धक खोटे ग्रन्थों की रचना करने वाले मूर्ख कुकवियों ने उस विद्याधर कुमार का कैसा बीभत्स चित्रण किया है?[३६] जिसमे यह सब चरित्र चित्रण किया गया है, वह ग्रन्थ रामायण के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके विषय मे यह प्रसिद्धि है वह सुनने वाले मनुष्यो के तत्क्षण समस्त पाप नष्ट कर देता है।[३७] पद्मचरित के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उसके समय वाल्मीकीय रामायण या उस जैसी कोई दूसरी रामायण अवश्य प्रसिद्ध रही होगी, जिसमें उपर्युक्त मान्यताओं का वर्णन रविषेण को मिला होगा।[३८] पद्मचरित मे आये वर्णनो से यह तो अवश्य सिद्ध होता है कि रविषेण द्वारा दी गई कथा के बहुत से अंश वाल्मीकीय रामायण से मिलते-जुलते हैं। आधुनिक अन्वेषकों ने महाभारत के द्रोणपर्व, शान्तिपर्व तथा अन्य निर्देशों से अनुमान लगाया है कि वाल्मीकि रामायण से पूर्व भी रामकथा सम्बन्धी आख्यान प्रचलित थे जिनके

---

३०. रामकथा—पृ० ७७-७८ (लि० बुल्के)। ३१. पद्म० २।२३०-२३१।
३२. पद्मचरित २।२३२। ३३. पद्म० २।२३३-२३४।
३४. पद्म० २।२३५। ३५. पद्म० २।२३६।
३६. वही, २।२३७। ३७. वही, २।२३८।
३८. चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास : संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १२।

आधार पर वाल्मीकि ने अपनी रामायण की रचना की। हो सकता है इन्हीं आख्यानों से रविषेण ने भी अपनी कथावस्तु का बहुत कुछ अंश ग्रहण किया हो। इसके अतिरिक्त उसके सामने जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित परम्परा भी रही होगी जिसमे रावण आदि को उत्तम उच्चकुल मे उत्पन्न विद्वान् और विद्या से युक्त कहा गया होगा।[३९] विद्वानों का विचार है कि वाल्मीकि मुनि से भी पहले सूतों और कुशीलवों द्वारा प्रवर्तित-प्रचारित राम सम्बन्धी कथाओं का संकलन कर किसी दूसरे ही मुनि महर्षि ने रामायण काव्य की रचना की। उसका नाम सम्भवतः भार्गवच्यवन था। इसका विशेष विवरण हमे महाभारत देता है और साथ ही महाभारत से हमें यह भी विदित होता है कि भार्गवच्यवन भृगु महर्षि का पुत्र था। बौद्ध महाकवि अश्वघोष के बुद्धचरित से हमे महाभारतकार के उक्त कथन की सत्यता इस रूप मे मिलती है कि च्यवन महर्षि जिस रामकथा की रचना मे सफलकाम हो सका था, उसको वाल्मीकि ने पूरा किया। यही कारण है कि बाद मे च्यवन और वाल्मीकि को भ्रमवशात् एक मान लिया गया।[४०] हिन्दुओं के अष्टादश महापुराणों में रामकथा की सबल चर्चाएँ हैं और उन चर्चाओं के अति प्राचीन होने का इतिहास मिलता है। इन चर्चाओ में वाल्मीकि रामायण के पूर्वापर अनेक रामायण ग्रन्थो की रचना का निर्देश पाया जाता है।[४१]

पद्मचरित की भाषा और शैली

पद्मचरित सस्कृत महाकाव्य का एक अच्छा प्रतीक है। इसकी शैली सरल, प्रभावशाली और शान्त है। यह मङ्गलाचरण तथा वस्तुनिर्देश पूर्वक प्रारम्भ होता है। इसमें अनेक पर्व है। वन, पर्वत, नदियों तथा ऋतुओं आदि के प्राकृतिक दृश्यों, जन्म विवाहादि सामाजिक उत्सवों एव रसों, शृगारात्मक हाव-भाव, विलासों तथा सम्पत्ति विपत्ति मे सुख दुःखों के उतार चढ़ावों का कलात्मक हृदयग्राही चित्र इसमे उपस्थित किया गया है। यथास्थान इसमे धार्मिक उपदेशों का भी समावेश किया गया है। बीच-बीच में प्रसंगानुसार अनेक कथायें जोड़कर इसे अधिक रोचक बनाया गया है। ये कथाये नियत ढंग से प्रारम्भ होती हैं और उनके वर्णन भी नियत ढंग से चलते हैं। उपदेश की दृष्टि से कथाओं में सुन्दर-सुन्दर विचार पाये जाते हैं। ऐसी कथायें जिनका साक्षात् उद्देश्य मनोरंजन के स्थान पर उपदेश है, पद्मचरित में पाई जाती हैं। नैतिकता और

---

३९. पद्म० २।२३०, २३१।

४०. वाचस्पति गैरोला : संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५७।

४१. वही, पृ० १५८।

धार्मिकता के प्रति इनमें झुकाव है। स्वार्थपरक इच्छाओं का त्याग, सार्वभौम क्रियाशील परोपकार की भावना, कल्याण से युक्त आकर्षक दर्शन का वर्णन, व्याख्यान और उपदेश इसका प्रधान ध्येय है। इसके अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि प्राणियों के कर्म फलों को दिखलाने में रविषेण अधिक रुचि रखते थे। उनके सामने केवल नैतिकता का शुष्क आदर्श नहीं था। अपने वर्णनों में भाषा की जटिलता को दूर करने के साथ-साथ वे अपनी प्रतिभा तथा भाषा पर अधिकार प्रदर्शित करने के लिए उद्यत रहते हैं। उनका उद्देश्य अभिव्यक्ति की यथार्थता तथा अर्थ की स्पष्टता है। प्रायः बड़े-बड़े समासों का उन्होंने प्रयोग नही किया है। इनकी शैली को साधारण काव्य की उत्कृष्ट शैली कहा जा सकता है। वे कर्णकटु ध्वनियों तथा अयुक्ति अथवा शब्दाडम्बर से भी बचना चाहते हैं। अलङ्कारो की अपेक्षा अर्थ पर अधिक ध्यान देना उनकी विशेषता है, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि पद्मचरित में अलङ्कार हैं ही नहीं। पद्मचरित मे अलङ्कारो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। यह ग्रन्थ उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का भाण्डार है। मरुदेवी का वर्णन करते हुए उत्प्रेक्षा का सहारा लेकर रविषेण कहते हैं—

'वह (मरुदेवी) दूसरे के मनोगत भाव को समझने वाली थी, इसलिए ऐसी जान पडती थी, मानो आत्मा से ही उसके स्वरूप की रचना हुई हो। उसके कार्य तीनो लोकों में व्याप्त थे इसलिए ऐसी जान पड़ती थी मानो मुक्त जीव के समान ही उसका स्वभाव था।[४२] उसकी प्रवृत्ति पुण्यरूप थी इसलिए ऐसी जान पडती थी मानो जिनवाणी से ही उसकी रचना हुई हो। वह तृष्णा से भरे भृत्यों के लिए धनवृष्टि के समान थी इसलिए ऐसी जान पड़ती थी, मानों अमृतस्वरूप ही हो।'[४३]

राजा श्रेणिक का श्लेषमय वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वृषघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव।
नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत् ॥ २।६१
गोत्रनाशकरीचेष्टानामराधिपतेरिव।
नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥ २।६२

---

४२. निर्मितात्मस्वरूपेव परचित्तप्रतीतिषु।
सिद्धजीवस्वभावेव त्रिलोकव्याप्तकर्मणि ॥ पद्म० ३।९७।

४३. पुण्यवृत्तितया जैन्या श्रुत्येव परिकल्पिता।
अमृतात्मेव तृष्यत्सु भृत्येषु वसुवृष्टिवत् ॥ पद्म० ३।९८।

हरि अर्थात् विष्णु की चेष्टायें तो वृषघाती अर्थात् वृषासुर को नष्ट करने वाली थीं पर उसकी चेष्टायें वृषघाती अर्थात् धर्म का घात करने वाली नहीं थीं। इसी प्रकार महादेव जी का वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्ष के परिवार को सन्ताप पहुँचाने वाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्यों के समूह को सन्ताप पहुँचाने वाला नही था। जिस प्रकार इन्द्र की चेष्टा गोत्रविनाशकारी अर्थात् पर्वतों का नाश करने वाली थी उसी प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंश का नाश करने वाली नही थी और जिस प्रकार दक्षिणदिशा के अधिपति यमराज के अतिदण्डप्रीति अर्थात् दण्डधारण करने में अधिक प्रीति रहती है उसी प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देने मे प्रीति नही रहती थी।

स्त्री के रूप सौन्दर्य का चित्रण करने में कवि की कल्पना ने कमाल दिखाया है। उदाहरणार्थ अंजना के शारीरिक सौन्दर्य के विषय मे कवि की कल्पना देखिए—

'अंजना सुन्दरी अपने मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से भवन के भीतर जलने वाले दीपको को निष्फल कर रही थी तथा उसके सफेद काले और लाल-लाल नेत्रों की कान्ति से दिशायें रंग-बिरंगी हो रही थीं।[४४] वह स्थूल, उन्नत एवं सुन्दर स्तनों को धारण कर रही थी, उससे ऐसी जान पडती थी मानों पति के स्वागत के लिए शृङ्गार रस से भरे हुए दो कलश ही धारण कर रही थी।[४५] नवीन पल्लवो के समान लाल-लाल कान्ति को धारण करने वाले तथा अनेक शुभलक्षणो से परिपूर्ण उसके हाथ और पैर ऐसे जान पडते थे मानों नख रूपी किरणों से सौन्दर्य को ही उगल रहे हों।[४६] उसकी कमर पतली तो थी ही ऊपर से स्तनो का भारी बोझ पड रहा है इसलिए वह कही टूट न जाय इस भय से ही मानो उसे त्रिबलि रूप रस्सियों से उसने कसकर बाँध रखा था।[४७] वह अंजना जिन गोल-गोल जाँघों को धारण कर रही थी वे कामदेव के

---

४४. सम्पूर्णवक्त्रचन्द्रांशुविफलीकृतदीपिकाम्।
सितासितारुणच्छायचक्षुःसरितदिङ्मुखाम्॥ पद्म० १५।१४०।

४५. आभोगिनौ समुत्तुङ्गौ प्रियार्थं हरिणौ कुचौ।
कलशाविव बिभ्राणा शृङ्गाररसपूरितौ॥ पद्म० १५।१४१।

४६. नवपल्लवसच्छायं पाणिपादं सुलक्षणम्।
समुद्गिरदिवाभाति लावण्यं नखरश्मिभिः॥ पद्म० १५।१४२।

४७. स्तनभारादिवोदारान्मध्यं भङ्गाभिशङ्कया।
त्रिवलीदामभिबद्धं दधतीं तनुतामृतम्॥ पद्म० १५।१४३।

तरकस के समान अथवा मद और काम के बाँधने के स्तम्भ के समान अथवा सौन्दर्य रूपी जल को बहाने वाली नदियों के समान जान पड़ती थीं।[४८]

अंजना की मूर्तिमती रात्रि के रूप में कवि की यह कल्पना कितनी सुन्दर और साकार है—

'उसकी (अंजना) की कान्ति नील कमलों के समूह के समान थी, वह मुक्ताफल रूपी नक्षत्रों से सहित थी तथा पतिरूपी चन्द्रमा उसके पास विद्यमान था इसलिए वह मूर्तिधारिणी रात्रि के समान जान पड़ती थी।'[४९]

सौन्दर्य के विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुए किसी लेखक ने कहा है— देखा जाता है कि बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क होने पर हमारे जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचियाँ अनजाने ही अपनी मधुकरी वृत्ति से तिल-तिल चुन-चुनकर अनेक वस्तुओं की तिलोत्तमा अथवा आदर्श प्रतिमायें हमारे मानस में बना लेती हैं और जो बाहरी वस्तु हमारी बनाई उस (वस्तु) की मानस प्रतिभा से जितना अधिक सादृश्य रखती हैं वह हमें उतनी ही सुन्दर तथा प्रिय लगती है क्योंकि उसके रूप रंग आदि हमारे अन्तःकरण के घटक सत्त्व के आनन्दांश को उसके ज्ञानांश की अपेक्षा अधिक उत्तेजित कर देते है। वस्तुतः हमारे हृदय का वह आनन्दांश ही सौन्दर्य है जो किसी वस्तु के साक्षात् दर्शन या उसके ध्यान से उद्बुद्ध होकर हमे तन्मय कर देता है और उस वस्तु पर पड़कर उसे सुन्दर तथा प्रिय बना देता है।"[५०] सौन्दर्य का यह रूप रविषेण की अंजना में हमें साकार दिखाई देता है—

'वह (अंजना) ऐसी जान पड़ती थी मानों तीन लोक की सुन्दर स्त्रियों का रूप इकट्ठा कर उसके समूह से ही उसकी रचना हुई थी। उसकी प्रभा नील कमल के समान सुन्दर थी, हस्त रूप पल्लव अत्यन्त प्रशस्त थे, चरण कमल के भीतरी भाग के समान थे, स्तन हाथी के गण्डस्थल के तुल्य थे। उसकी कमर पतली थी, नितम्ब स्थूल थे, जंघायें उत्तम घुटनो से युक्त थीं, उसके शरीर में शुभ लक्षण थे, उसकी दोनों भुजलतायें प्रफुल्ल मालती की माला के समान

---

४८. तूणौ मनोभुवः स्तम्भौ बन्धनं मदकामयोः।
सुवृत्तौ विभ्रतीमूरू नदौ लावण्यवाहिनौ॥ पद्म० १५।१४४।

४९. इन्दीवरावलीछायां युक्तां मुक्ताफलोडुभिः।
आसक्तां प्रियचन्द्रेण मूर्तामिव विभावरीम्॥ पद्म० १५।१४५।

५०. वागीश्वर विद्यालंकार : कालिदास और उसकी काव्य कला, पृ० १७३।

कोमल थीं। कानों तक लम्बे एवं कान्तिरूपी मूठ से युक्त उसके दोनों नेत्र ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेव के सुदूरगामी बाण ही हों।'[५१]

प्रकृति को मानवीय रूप देने में रविषेण ने अपनी प्रतिभा तथा काल्पनिक शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। नर्मदा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

'वह नर्मदा तरंग रूपी भृकुटी के विलास से युक्त थी, आवर्त रूपी नाभि से सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे, दोनों विशाल तट ही स्थूल नितम्ब थे, नाना फूलों से वह व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था। इस प्रकार उत्तम नायिका के समान थी। (ऐसी नर्मदा को देख रावण महाप्रीति को प्राप्त हुआ)।[५२]

नर्मदा की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

वह नर्मदा कहीं तो उग्र मगरमच्छों के समूह से व्याप्त होने के कारण गम्भीर थी, कहीं वेग से बहती थी, कहीं मन्द गति से बहती थी, कहीं कुण्डल की तरह टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बहती थी। नाना चेष्टाओं से भरी हुई थी, तथा भयंकर होने पर भी रमणीय थी।[५३]

छन्द योजना की दृष्टि से पद्मचरित की रचना अधिकांश अनुष्टुप्[५४] श्लोकों में हुई है। अनुष्टुप् के अतिरिक्त इसमें शार्दूलविक्रीडित,[५५] मालिनी,[५६]

---

५१. ······त्रैलोक्यसुन्दरीरूपसन्दोहेनैव निर्मिता। पद्म० १५।१६।
नीलनीरजनिर्भासा प्रशस्तकरपल्लवा।
पद्मगर्भाभचरणा कुम्भिकुम्भनिभस्तनी ॥ पद्म० १५।१७।
तनुमध्या पृथुश्रोणी सुजानूरूः सुलक्षणा।
प्रफुल्लमालतीमालामृदुबाहुलतायुगा ॥ पद्म० १५।१८।
कर्णान्तिसंगते कान्तिकृतपुङ्खे सुदूरगे।
इषू ते कामदेवस्य ननु तस्या विलोचने ॥ पद्म० १६।१९।

५२. तरङ्गभ्रूविलासाढ्यामावर्तोत्तमनाभिकाम्।
विस्फुरच्छफरीनेत्रां पुलिनोरुकलत्रिकाम् ॥
नानापुष्पसमाकीर्णां विमलोदकवाससम्।
वराङ्गनामिवालोक्य महाप्रीतिमुपागत ॥ पद्म० १०।६१, ६२।

५३. उग्रनक्रकुलाक्रान्तां गंभीरां वेगिनीं क्वचित्।
क्वचिच्च प्रस्थितां मन्दं क्वचित्कुण्डलगामिनीम् ॥
नानाचेष्टितसम्पूर्णां कौतुकव्याप्तमानसः।
अवतीर्णः सतां भीमां रमणीयां च सादरः ॥ पद्म० १०।६३, ६४।

५४. पद्म० १०७।६८। ५५. पद्म० १।१०२। ५६. पद्म० २।२५४।

शालिनी,[५७] आर्या,[५८] वसन्ततिलका,[५९] मन्दाक्रान्ता,[६०] द्रुतविलम्बितवृत्त,[६१] रथोद्धतावृत्त,[६२] शिखरिणी,[६३] दोधकवृत्त,[६४] वंशस्थवृत्त,[६५] पृथिवीच्छन्द,[६६] उपजातिवृत्त,[६७] उपेन्द्रवज्रा,[६८] स्रग्धरा,[६९] इन्द्रवज्रा,[७०] भुजङ्गप्रयातम्,[७१] मन्दाक्रान्ता,[७२] वियोगिनीवृत्त,[७३] पुष्पिताग्रावृत्त,[७४] इन्दुवदनावृत्त,[७५] चण्डी-च्छन्द,[७६] तोटकच्छन्द,[७७] प्रमाणिकावृत्त,[७८] विद्युन्मालावृत्त,[७९] रुचिरावृत्त,[८०] कोकिलकच्छन्द,[८१] अश्वललितच्छन्द,[८२] भद्रकच्छन्द,[८३] वंशपत्रपतितम्,[८४] हरि-णीवृत्त,[८५] चतुष्पदिकावृत्त,[८६] मत्तमयूर,[८७] रुचिरावृत्त,[८८] अपरवक्त्र,[८९] प्रहर्षिणी,[९०] पुष्पिताग्रा,[९१] अतिरुचिरा,[९२] अज्ञातच्छन्द,[९३] तथा आर्यागीति[९४] छन्दों का व्यवहार किया गया है।

नवरसों में से शान्त, वीर, करुण, रौद्र तथा शृंगार रस का चित्रण प्रमुख रूप से हुआ है। १२वें पर्व में रावण और इन्द्र के बीच हुए युद्ध में योद्धाओं की वीरता देखते ही बनती है—

"किसी (योद्धा) की भुजा आलस्य से भरी थी (उठती ही नही थी) पर जब शत्रु ने उसमे गदा की चोट मारी तब वह क्षणभर मे नाच उठा और उसकी भुजा ठीक हो गई।[९४]‡ कोई एक भयकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतों को बायें हाथ से पकड़कर तथा दाहिने हाथ से तलवार उठा बड़े वेग से शत्रु के

---

५७. पद्म० ३।३३८। ५८ पद्म० ४।१३२। ५९. पद्म० ५।४०५।
६०. वही, ६।५७१। ६१. वही, ८।५३०। ६२. वही, ९।२२४।
६३ वही, १२।३७५। ६४. वही, १३।११०। ६५. वही, १४।३८०।
६६. वही, १६।२४२। ६७. वही, १९।९२। ६८. वही, १९।१०३।
६९. वही, २०।२४८। ७०. वही, २१।१५३। ७१. वही, २४।१३१।
७२. वही, २९।११५। ७३. वही, ३५।१९४। ७४. वही, ३६।१०३।
७५. वही, ३९।२३५। ७६. वही, ४२।४८। ७७. वही, ४२।५०।
७८. वही, ४२।४९। ७९. वही, ४२।५६। ८०. वही, ४२।५८।
८१. वही, ४२।५९। ८२. वही, ४२।६२। ८३. वही, ४२।६३।
८४. वही, ४२।६६। ८५. वही, ४२।६७। ८६. वही, ४२।६९।
८७. वही, ४२।७१। ८८. वही, ४२।७२। ८९. वही, ४२।७३।
९०. वही, ४२।७४। ९१. वही, ४२।८२। ९२. वही, ४४।१०५।
९३. वही, ११२।९५। ९४. वही, १२।२७४।

९४ ‡ अलसः कस्यचिद्बाहुराहतो गदया द्विषा।
बभूव विषदोऽत्यन्तं क्षणनर्तनकारिणः॥ पद्म० १२।२७४।

सामने आ रहा था।[९५] जो ओठ चाव रहा था तथा जिसके नेत्रों की पूर्ण पुतलियाँ दिख रही थी ऐसा कोई योद्धा अपनी ही आँतों से कमर को मजबूत कसकर शत्रु की ओर जा रहा था।"[९६]

शृङ्गार की वियोग और संयोग दोनों अवस्थाओं का चित्रण करने में रविषेण को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इसका श्रेष्ठतम उदाहरण पद्मचरित का १६वाँ पर्व है। पति द्वारा परित्यक्त अंजना की अवस्था का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—

"उसने एक ही बार तो पति का रूप देखा था, इसलिए बड़ी कठिनाई से वह उनका चित्र खींच पाती थी उतने पर भी हाथ बीच-बीच मे काँपने लगता था, जिससे तूलिका छूटकर नीचे गिर जाती थी।[९७] वह इतनी निर्बल हो चुकी थी कि मुख को एक हाथ से दूसरे हाथ पर बड़ी कठिनाई से ले जा पाती थी। उसके अंग इतने कृश हो गये थे कि उनसे आभूषण ढीले हो-हो कर शब्द करते हुए नीचे गिरने लगे थे।[९८] उसको लम्बी और गरम साँस से हाथ तथा कपोल दोनों ही जल गए थे। उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र था उसी के भार से वह खेद का अनुभव करने लगी थी।[९९]

इसी पर्व (१६वें) के अंत मे अंजना-पवनंजय के समागम का कवि ने सांगोपांग वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमे आलिंगन-पीडन,[१००] चुम्बन,[१०१] नीवी-विमोचन,[१०२] नितम्ब आस्फालन,[१०३] सीत्कार,[१०४] नखक्षत,[१०५] दन्ताघात[१०६]

---

९५ कश्चित् करेण संरुध्य वामेनान्त्राणि सद्भटः।
तरसा खड्गमुद्यम्य ययौ प्रत्यरि भीषणः॥ पद्म० १२।२८५।

९६. कश्चिन्निजैः पुरीतद्भिर्बद्ध्वा परिकरं दृढम्।
दष्टोष्ठोऽमिययौ शत्रु दृष्टाशेषकनीनिकः॥ पद्म० १२।२८६।

९७. सकृदस्पष्टदृष्टत्वाच्चित्रकर्माणि कृच्छ्रतः।
लिखन्ती वेपथुग्रस्तहस्तप्रच्युतवर्तिका॥ पद्म० १६।६।

९८. संचारयन्ती कृच्छ्रेण वदन करतः करम्।
कृशीभूतसमस्ताङ्गश्लथरचनभूषणा॥ पद्म० १६।७।

९९. दीर्घोष्णतरनिश्वासदग्धपाणिकपोलिका।
अंशुकस्यापि भारेण खेदमङ्गेषु बिभ्रती॥ पद्म० १६।८।

१००. पद्म० १६।१८३।
१०१. पद्म० १६।१८७।
१०२. वही, १६।१८९।
१०३. वही, १६।१९४।
१०४. वही, १६।१९६।
१०५. वही, १६।१९७।
१०६. वही, १६।२०२।

आदि कामकलायें चित्रित की गई हैं। रविषेण के इस चित्रण पर वात्स्यायन का प्रभाव स्पष्ट रूप से है। शृङ्गार प्रधान कविता के लेखकों के लिए प्राचीन-काल में कामशास्त्र का ज्ञाता होना अत्यावश्यक समझा जाता था, अतः जो कवि बनना चाहते थे वे व्याकरण, अलंकार और कोष के समान ही इस कामसूत्र का भी अध्ययन करते थे।[१०७] कुछ लोगों[१०८] ने पद्मचरित के उपर्युक्त वर्णन को अश्लील कहा है। पर यह भी न भूलना चाहिए कि सुरुचि तथा कुरुचि और औचित्य के मानदण्ड प्रत्येक देश तथा जाति मे एक से नही होते। एक ही देश और जाति मे भी वे समय-समय पर बदलते रहते हैं। ऐसे साहित्य का अध्ययन मनोवैज्ञानिक या किसी समस्या के समाधान की दृष्टि से करना चाहिए। शरीर के जिन अंगों का खुला प्रदर्शन समाज मे शोभन नही माना जाता, एक कलाकार के कला भवन और शवच्छेदन की टेबल पर उन्हें क्रमशः सुन्दर और आवश्यक समझा जाता है। यह भी जान पड़ता है कि बीसवीं सदी के बहुत से साहित्य-कारों पर फ्रॉयड की छाप की तरह किसी युग मे संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियो पर वात्स्यायन के कामसूत्र का गहरा प्रभाव पड़ गया था। साथ ही सदा से काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार ज्ञान भी माना जाता रहा है, इसीलिए कालिदास तथा उसके परवर्ती भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवि अपनी रचनाओं में इस विषय को अधिकाधिक महत्त्व देते चले गये।[१०९] रविषेण भी इसका अपवाद कैसे हो सकते थे। अतः उनकी रचना मे भी ये तत्त्व समाहित हैं।

करुण रस का चित्रण करने में भी कवि ने यथेष्ट सफलता पाई है। सप्तदश पर्व मे सास-ससुर द्वारा परित्यक्ता अंजना की करुण स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

"अंजना सहारा पाने की इच्छा से सखी के कन्धे पर हाथ रखकर चल रही थी पर उसका हाथ सखी के कन्धे से खिसककर बार-बार नीचे आ जाता था। चलते-चलते जब कभी डाभ की अनी पैर में चुभ जाती थी तब बेचारी आँख मीचकर खड़ी रह जाती थी।[११०] वह जहाँ से पैर उठाती थी दुःख के भार से

---

१०७. कालिदास और उसकी काव्यकला, पृ० १११।
१०८. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ९१। (नाथूराम प्रेमी)
१०९. कालिदास और उसकी काव्यकला, पृ० १५३।
११०. ततः सख्यं सविन्यस्तविस्रंसिकरपल्लवा।
दर्भसूचीमुखस्पर्शकूणितेक्षणकोणिका ॥ पद्म० १७।९९।

चीखती हुई वहीं फिर पैर रख देती थी।[१११] वह अपना शरीर बडी कठिनता से धारण कर रही थी।[१११] वह कभी अपनी निन्दा करती थी तो कभी भाग्य को बार-बार दोष देती थी। लतायें उसके शरीर में चिपट जाती थीं। अतः ऐसा मालूम पड़ता था कि दया से वशीभूत होकर मानो उसका आलिंगन ही करने लगती थीं।[११२] उसके नेत्र भयभीत हरिणी के समान चंचल थे। थकावट के कारण उसके शरीर में पसीना निकल आता था, काँटेदार वृक्षों में वस्त्र उलझ जाता था तो देर तक उसे ही सुलझाती खडी रहती थी। उसके पैर रुधिर से लाल-लाल हो गये थे, अतः ऐसे जान पडते थे मानो लाख का महावर ही उसमें लगाया गया हो। शोकरूपी अग्नि की दाह से उसका शरीर अत्यन्त साँवला हो गया था। पत्ता भी हिलता तो वह भयभीत हो जाती थी। उसका शरीर काँपने लगता था, भय के कारण उसकी दोनों जाँघें अकड़ जाती थी और खेद के कारण उनका उठाना कठिन हो जाता था। अत्यन्त प्रिय वचन बोलने वाली सखी उसे बार-बार बैठाकर विश्राम कराती थी। इस प्रकार दुःख से भरी अंजना धीरे-धीरे पहाड के समीप पहुँची। वहाँ तक पहुँचने मे इतनी अधिक थक गई थी कि शरीर सम्भालना भी दूभर हो गया। उसके नेत्र से आँसू बहने लगे और वह भारी खेद के कारण सखी की बात सुनकर बैठ गई। कहने लगी अब तो मैं एक डग भी चलने के लिए समर्थ नही हूँ, अतः यहीं ठहरी जाती हूँ। यदि यहाँ मरण भी हो जाय तो अच्छा है।''[११२]।

---

१११. तत्र तत्रैव भूदेशे न्यस्यन्ती चरणौ पुनः।
स्तनन्ती दुःखसंभाराद्देहं कृच्छ्रेण बिभ्रती ॥ पद्म० १७।१००।

११२. निन्दन्ती स्वमुपालम्भं प्रयच्छन्ती मुहुर्विधेः।
कारुण्यादिव वल्लीभिः श्लिष्यमाणाखिलाङ्गिका ॥ पद्म० १७।१०२।

११३. त्रस्तसारङ्गजायाक्षी श्रमजस्वेदवाहिनी।
कारुण्यादिव वल्लीभिः श्लिष्यमाणाखिलाङ्गिका ॥
क्षतजेनाचितौ पादौ लाक्षिताविव बिभ्रती।
शोकाग्निदाहसंभूतां श्यामतां दधती पराम् ॥
मुहुर्विश्रम्यमानाल्या नितान्तप्रियवाक्यया।
गिरेः प्रापांजना मूलं शनकैरिति दुःखिता ॥
तत्र धारयितुं देहमसक्ता साश्रुलोचना।
अपकर्ण्य सखीवाक्यं महाखेदादुपाविशत् ॥
जगाद च न शक्नोमि प्रयातुं पदमप्यतः।
तिष्ठाम्यत्रैव देशेऽहं प्राप्नोमि मरणं वरम् ॥
—पद्म० १७।१०२-१०८।

शान्तरस के वर्णनों से पूरा पद्मचरित भरा पड़ा है। भोग से त्याग की और मनुष्य की वृत्तियों को उन्मुख कराने के लिए ही यह पूरा ग्रन्थ लिखा गया है। आत्मशुद्धि ही जीवन का मूलमन्त्र और मूललक्ष्य होना चाहिए। जिस प्रकार ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती और जल से समुद्र तृप्त नहीं होता उसी प्रकार जब तक संसार है तब तक सेवन किये हुए विषयों से यह प्राणी तृप्त नहीं होता।[११३] इसी भावना के वशीभूत हुआ भरत सुन्दर स्थानों में भी धैर्य को प्राप्त नहीं होता हुआ इस प्रकार चिन्तन करता है—

मनुष्य पर्याय बड़े दुःख से प्राप्त होती है, फिर भी पानी की बूँद के समान चंचल है, यौवन फेन के समान भँगुर तथा अनेक दोषों से संकटपूर्ण है।[११४] भोग अन्तिम काल मे रस से रहित हैं, जीवन स्वप्न के समान है और भाई बन्धुओं का सम्बन्ध पक्षियों के समागम के समान है।[११५] जो मूर्ख मनुष्यों को प्रिय हैं, अपवाद अर्थात् निन्दा का कुलभवन है एवं सन्ध्या के प्रकाश के समान विनश्वर है ऐसे नवयौवन मे क्या राग करना है ?[११६] जो अवश्य ही छोड़ने योग्य है, अनेक व्याधियों का कुलभवन है और रजवीर्य जिसका मूलकारण है ऐसे इस शरीर रूपी यन्त्र मे क्या प्रीति करना है ?[११७] जिनका आकार गलगण्ड के समान है तथा जिनसे निरन्तर पसीना झरता रहता है ऐसे स्तन नामक माँस के घृणित पिण्डों मे क्या प्रेम करना है ?[११८] जिनका शरीर अपवित्र वस्तुओ से तन्मय है तथा जो केवल चमड़े से आच्छादित हैं ऐसे स्त्रियो से उनकी सेवा करने वाले पुरुष को क्या सुख होता है ?[११९] मूर्खमना प्राणी मलभृत घट के समान

---

११३. पद्म० ८३।५२।

११४. लभ्यं दुःखेन मानुष्यं चपलं जलबिन्दुवत्।
यौवनं फेनपुञ्जेन सदृशं दोषसङ्कटम् ॥ पद्म० ८३।४७।

११५. समाप्तिविरसा भोगा जीवितं स्वप्नसन्निभम्।
सम्बन्धो बन्धुभिः सार्द्धं पक्षिसङ्गमनोपमः ॥ पद्म० ८३।४८।

११६. यौवनेऽभिनवे रागः कोऽस्मिन् मूढकवल्लभे।
अपवादकुलावासे सन्ध्योद्योतविनश्वरे ॥ पद्म० ८३।५०।

११७. अवश्यं त्यजनीये च नानाव्याधिकुलालये।
शुक्रशोणितसम्भूते देहयन्त्रेऽपि का रतिः ॥ पद्म० ८३।५१।

११८. गलगण्डसमानेषु क्लेदक्षरणकारिषु।
स्तनाख्यमांसपिण्डेषु बीभत्सेषु कथं रतिः ॥ पद्म० ८३।५४।

११९. पद्म० ८३।५८।

अत्यन्त लज्जाकारी संयोग को प्राप्त हो, मुझे सुख हुआ है, ऐसा मानता है।[१२०]

पद्मचरित : एक महाकाव्य

महाकाव्य की सबसे अधिक स्पष्ट और सुव्यवस्थित परिभाषा १५वीं शताब्दी मे विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण[१२१] में दी है। तदनुसार पद्य-बन्ध के प्रकारों में जो सर्गबन्धात्मक काव्य प्रकार है वह महाकाव्य कहलाता है।

---

१२० विट्कुम्भद्वितयं नीत्वा संयोगमतिलज्जनम्।
विमूढमानसः लोकः सुखमित्यभिमन्यते ॥ पद्म० ८३।५९।

१२१. सर्गबद्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपा. कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धय।
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेक च फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुणकीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमय क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥
संभोगविप्रलम्भां च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः ॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु।
सन्ध्यङ्गानि यथालाभमत्र विधेयानि ॥
अवमानोऽन्यवृत्तकैः इति बहुवचनमविवक्षितम्।
सांगोपांगा इति जलकेलिमधुपानादयः ॥

—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, ३१५।३१६-३२४।

(चरित्रवर्णन की दृष्टि से) इस सर्गबन्ध रूप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित चित्रित किया जाता है। यह नायक कोई देवविशेष या प्रख्यात वंश का राजा होता है। यह धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होता है। किसी-किसी महाकाव्य मे एक राजवंश मे उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। (रसाभिव्यंजन की दृष्टि से) शृङ्गार, वीर और शांत रसों में से कोई एक रस प्रधान होता है। इन तीनों रसों में से जो रस भी प्रधान रखा जाय उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस अप्रधान रूप से अभिव्यक्त किये जा सकते हैं। (संस्थान रचना की दृष्टि से) नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में आवश्यक मानी गई है। (इतिवृत्त योजना की दृष्टि से) कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रिय वृत्त यहाँ वर्णित होता है। (उपयोगिता की दृष्टि से) महाकाव्य मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण होता है, किन्तु उत्कृष्ट फल के रूप में किसी एक का ही सर्वतोभद्रनिबन्ध युक्तियुक्त माना जाता है। महाकाव्य का आरम्भ मंगलात्मक होता है। यह मंगल नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक होता है। किसी-किसी महाकाव्य मे खलनिन्दा और सज्जन प्रशंसा भी उपनिबद्ध होती है। इसमे न बहुत छोटे, न बहुत बडे आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द होता है किन्तु (सर्ग का) अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमे सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से, अथवा चरित्र नायक के नाम से होना चाहिए। सर्ग का वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम लिखा जाता है। संधियों के अंग यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। जलक्रीड़ा, मधुपानादि सांगोपांग होने चाहिए।

महाकाव्य के ये उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रूप में पद्मचरित में घटित होते हैं। इसे पर्वों में विभाजित किया गया है जोकि सर्ग का ही दूसरा नाम है। काव्य के प्रारम्भ में ऋषभजिनेन्द्र से लेकर मुनिसुव्रत जिनेन्द्र को नमस्कार करने के साथ-साथ गणधरों सहित अन्यान्य मुनिराजों को मन, वचन, काय से नमस्कार किया गया है।[१२२] इसके बाद कवि ने 'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये' अर्थात् राम का

१२२. पद्म० १।१-१५।

चरित्र कहूँगा, ऐसा कहकर वस्तुनिर्देश किया है।[१२३] इसकी रचना राम जैसे उत्कृष्ट महापुरुष की कथा के आधार पर हुई है, जिनके विषय मे कवि ने स्वयं कहा है कि अनन्त गुणों के गृहस्वरूप, उदार चेष्टाओं के धारक उनका चरित्र कहने मे श्रुतकेवली ही समर्थ हैं।[१२४] यह काव्य शान्त रस प्रधान है। आवश्यकतानुसार इसमें शृंगार,[१२५] वीर,[१२६] करुण[१२७] आदि रसों का परिपाक हुआ है।

इस कथा से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि होती है, जिसकी ओर रविषेण ने १२३वें पर्व में स्वयं सकेत किया है।[१२८] इस कथा का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति की ओर उन्मुख होना ही है। जैसा कि कहा गया है— हे विद्वज्जनो! यत्नपूर्वक एक प्रमुख आत्मपद को तथा नाना प्रकार के विपाक से परिपूर्ण कर्मों के स्वरूप को भली प्रकार जानकर सदा उसी की प्राप्ति में रमण करो। हमने (रविषेणाचार्य ने) इस ग्रन्थ मे परमार्थ की प्राप्ति के उपाय कहे है, उन्हें काम में शक्तिपूर्वक लाओ जिससे संसार रूपी सागर से पार हो सको।'[१२९] ग्रन्थ के आरम्भ मे सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा की गई है—'जिस प्रकार दूध और पानी के समूह मे से हंस समस्त दूध को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार सत्पुरुष गुण और दोषों के समूह में से गुणों को ही ग्रहण करते है। जिस प्रकार काक हाथियों के गण्डस्थल से मुक्ताफलों को छोड़कर केवल माँस ही ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दुर्जन गुण और दोषों के समूह मे से केवल दोषों को ही ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार उलूक पक्षी सूर्य की मूर्ति को तमाल पत्र के समान काली-काली देखते हैं उसी प्रकार दुष्ट पुरुष

---

१२३. पद्म० १।१६।

१२४. अनन्तगुणगेहस्य तस्योदारविचेष्टिनः।
गदितुं चरितं शक्तः केवलं श्रुतकेवली ॥ पद्म० १।७।

१२५. पद्म० ३।१०६-११०, १५।१४१-१४५।

१२६. वही, १२।२६५, २९२, २९३, २८५, २८६।

१२७. वही, १७।९९-१०८।

१२८. वही, १२३।१५७-१६५।

१२९. बहुधा गदितेन किन्त्वनेन पदमेकं सुबुधा निबुध्य यत्नात्।
बहुभेदविपाककर्मसूक्तं तदुपायाप्तिविधौ सदा रमध्वम् ॥
—पद्म० १२३।१७९।
उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः।
सेव्यन्तां शक्तितो येन निष्क्रामत भवार्णवात् ॥ पद्म० १२३।१८०।

निर्दोष रचना को भी दोषयुक्त देखते हैं। जिस प्रकार किसी सरोवर में जल आने के द्वार पर लगी हुई जाली जल को तो नहीं रोकती किन्तु कूड़ा कर्कट को रोक लेती है उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य गुणों को तो रोक नही पाते किन्तु कूड़ा कर्कट के समान दोषों को हो रोककर धारण करते हैं।'[१३०]

पद्मचरित में १२३ पर्व (सर्ग) हैं। प्रत्येक पर्व में अनुष्टुप् छंद का प्रयोग किया गया है, किन्तु पर्व के अन्त मे अनुष्टुप् से भिन्न अन्य छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रकरणानुसार इस काव्य में रात्रि,[१३१] विवाह,[१३२] नदी,[१३३] युद्ध,[१३४] नगर,[१३५] ऋतु,[१३६] वन,[१३७] पर्वत,[१३८] अभ्युदय,[१३९] पुत्र,[१४०] यात्रा,[१४१] संयो।,[१४२] वियोग,[१४३] मुनि,[१४४] स्वर्ग,[१४४] प्रात.काल,[१४५] तथा यज्ञ[१४६] आदि का सांगोपांग वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त जल क्रीड़ा[१४७] तथा मधुपानादिक[१४८] का भी इस काव्य में सागोपांग निरूपण किया गया है।

---

१३०. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधव.।
क्षीरवारिसमाहारे हंसः क्षीरमिवाखिलम् ।। पद्म० १।३५।
गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः।
मुक्ताफलानि सन्त्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ।। पद्म० १।३६।
अदोषामपि दोषाक्ता पश्यन्ति रचनां खलाः।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ।। पद्म० १।३७।
सरो जलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः।
धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ।। पद्म० १।३८।

१३१. पद्म० २।२००-२१८।
१३२. पद्म० अष्टम पर्व।
१३३. वही, १०।५९-६४, ४२।६१-७४।
१३४. वही, १२।१८१-२१९, ५०।१४-३३।
१३५. वही, ३५।४५-६५।
१३६. वही, ३५।३५-३८, ४३।१-१५।
१३७. वही, ४१।३-४, ४२।९-५१।
१३८. पद्म० ४२।६०।
१३९. वही, ७।१९-३२।
१४०. वही, २०९।३८५।
१४१. वही, पर्व २३, २४, दशरथ और जनक की यात्रा।
१४२. वही, १६।१०७-२१३।
१४३. वही, १२३वां पर्व, ८७।९-१४।
१४४. पद्म० १०९।२०-२५।
१४५. वही, ३।१४२-१४८।
१४६. वही, ११।१०६-११०।
१४७. वही, ४०।१९-२३, ८।९०-१००।
१४८. वही, ७३।१३९, १३६-१४५।

इन सब विशेषताओं के कारण पद्मचरित की गणना संस्कृत के उत्कृष्ट महाकाव्यों में की जा सकती है। सातवीं शती ई० के आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, पद्मचरित उन लक्षणों के आधार पर भी महाकाव्य सिद्ध होता है।

जैन कथा साहित्य और पद्मचरित

जैनकथा साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं मे इस प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा गया।[१४९] इनमें पद्मचरित का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत जैन कथा साहित्य का यह आद्यग्रथ है।[१५०] सं० १८१८ मे दौलतराम ने इसका भाषा (पुरानी हिन्दी) मे अनुवाद किया था।[१५१] हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होने से यह जैनों के घर-घर मे पढा जाता है। उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर पद्मचरित विमलसूरि की प्राकृत रचना पउमचरिय के आधार पर लिखा गया सिद्ध होता है, लेकिन रविषेण ने अपनी नैसर्गिक काव्यात्मक प्रतिभा के द्वारा इसको खूब पल्लवित किया है, इस कारण इसका आकार प्राकृत पउमचरिय से ड्योढा हो गया। बाद में इसके आधार पर अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। डॉ० रेवरेंड फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध प्रबन्ध 'रामकथा' (उत्पत्ति और विकास) में 'पउमचरिय' के आधार पर रचे गये ग्रंथो की सूची[१५२] प्रस्तुत की है। चूंकि पद्मचरित भी इसी परम्परा का है अतः इसका भी इन सब पर अमिट प्रभाव है।

बारहवी सदी ईस्वी मे हेमचन्द्र ने त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित ग्रंथ लिखा। इसके अन्तर्गत दी गई रामकथा का रूप रविषेण के पद्मचरित से मिलता-जुलता है। हेमचन्द्र द्वारा की गई योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत दिया गया 'सीता रावण कथानकम्' भी पद्मचरित के आधार पर लिखा गया। १५वीं सदी ई० मे इसके आधार पर जिनदास ने रामायण अथवा रामदेव पुराण की रचना की। सोलहवी सदी ई० में पद्मदेव विजयगणि ने रामचरित लिखा। इसी समय सोमसेन ने रामचरित नामक ग्रन्थ की रचना की। आचार्य सोमप्रभ के लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित में तथा विजयगणिवर (१७वी सदी ई०) कृत

---

१४९. इस प्रकार के ग्रन्थों की बहुत कुछ जानकारी डॉ० हीरालाल जैन ने अपने भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान नामक ग्रंथ में दी है। विशेष जिज्ञासु को वहीं से देख लेना चाहिए।

१५०. वाचस्पति गैहरोला : संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७१।

१५१. रामकथा (बुल्के), पृ० ६८।

१५२. वही, पृ० ६८, ६९।

लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित की रामकथा भी रविषेण से मिलती है। इन रचनाओं के अतिरिक्त जिनरत्नकोष में धर्मकीर्ति चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाथ आदि द्वारा रचित विभिन्न पद्मपुराण अथवा रामचरित्र नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। सीता चरित्र के तीन रचयिताओं के नाम मिलते हैं—ब्रह्म नेमिदत्त, शांतिसूरि तथा अमरदास। अधिकांश सामग्री अप्रकाशित है। दसवी शताब्दी के हरिषेणकृत कथाकोष में रामायणकथानकम् तथा सीता कथानकम् पाया जाता है। इस अन्तिम रचना में विमलसूरि तथा रविषेण के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा वर्णित है, लेकिन रामायणकथानकम् अधिकांश मे बाल्मीकीय कथा पर निर्भर है। पुण्याश्रव कथाकोष मे लव कुश की जो कथा मिलती है वह भी विमलसूरि की परम्परा पर निर्भर है। हरिभद्रकृत धूर्ताख्यान (८वी सदी ई०) तथा अमितगति कृत धर्मपरीक्षा (११वी सदी ई०) मे बाल्मीकि रामायण मे वर्णित हनुमान् के समुद्रलंघन जैसी घटनाओं को हास्यास्पद बताया गया है। शत्रुञ्जय माहात्म्य (१२वी सदी ई०) के नवें सर्ग मे रामकथा विमल-सूरि तथा रविषेण के अनुसार है, किन्तु कैकयी, राम और लक्ष्मण दोनों के वनवास का वर माँग लेती है।

अपभ्रंश साहित्य मे सर्वप्रथम स्वयंभूदेव ने पउमचरिउ की रचना की। इसकी रचना पूरी तरह से रविषेण के पद्मचरित के आधार पर की गई। अपने ग्रन्थ की पढमो संधि (प्रथम सधि) में स्वयम्भूदेव ने रविषेणाचार्य द्वारा दी गई आचार्य परम्परा के अन्त मे रविषेण का नाम जोड़कर उनका नाम स्मरण करने के साथ-साथ उनके ग्रन्थ के आधार पर अपनी ग्रन्थ रचना करने की बात कही[१५३] है। स्वयम्भू को महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने विश्व का महाकवि माना है। उनके मतानुसार तुलसी रामायण स्वयम्भू रामायण से बहुत प्रभावित रही है। स्वयम्भू और उनकी रामायण के विषय मे एक जगह वे लिखते हैं—स्वयम्भू कविराज कहे गये हैं किन्तु इतने से स्वयम्भू की महत्ता को नहीं समझा जा सकता। मैं समझता हूँ ८वी शताब्दी से लेकर २०वी शताब्दी तक की १३ शताब्दियो मे जितने कवियों की अपनी अमर कृतियो से हिन्दी कविता साहित्य को पूरा किया है, उनमे स्वयम्भू सबसे बड़े कवि हैं।[१५४] राहुल जी ने यह भी अनुमान लगाया कि तुलसी बाबा ने स्वयम्भू रामायण को जरूर देखा होगा। तुलसीदास जी के 'ते प्राकृत कवि परम सयाने। जिन भाषा हरिचरित बखाने' उक्ति से यह प्रमाणित होता है। राहुल जी की समझ मे तुलसी बाबा ने

---

१५३. पउमचरिउ—पढमो संधि ६-११।

१५४. महावीर जयन्ती स्मारिका, पृ० २१ (अप्रैल, १९६४)।

'क्वचिदन्यतोऽपि' से स्वयम्भू रामायण की ओर संकेत किया है।[१५५] राहुल जी के कथन का इतना प्रभाव अवश्य हुआ कि तुलसीदास के मानस का अध्ययन करने वाले विद्वान् सीधे वाल्मीकि की ओर न देखकर स्वयम्भू के 'पउमचरिउ' की ओर देखने लगे। मानस के अध्ययन के लिए पण्डितों को संस्कृत रामायण की अपेक्षा अपभ्रंश की इस रचना में भाषा, भाव, काव्य, रूप कथानक, रूढ़ि और अभिप्राय (मोटिफ्स) आदि की दृष्टि से अधिक निकटता का अनुभव हुआ।[१५६] रामचरित मानस पर स्वयम्भू के इस प्रभाव को देखते हुए अप्रत्यक्ष रूप से 'पद्मचरित' का भी प्रभाव पड़ा कहा जा सकता है, क्योंकि स्वयम्भू ने पद्मचरित के आधार पर ही पउमचरिउ की रचना की थी। १५वीं सदी में महाकवि रइधू ने पद्मपुराण अथवा बलभद्र पुराण की रचना की। रइधू की इस रचना पर स्वयम्भू का प्रभाव पड़ा।

पद्मचरित में संकेतित ब्राह्मण धर्म

पद्मचरित के अध्ययन से पता चलता है कि रविषेण को ब्राह्मण धर्म का गम्भीर ज्ञान था। पद्मचरित में समय-समय पर संकेतित पौराणिक आख्यानों, वृत्तों, घटनाओं तथा पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थापित दार्शनिक सिद्धान्तों से रविषेण का ब्राह्मण धर्म तथा दर्शन सम्बन्धी गम्भीरतम ज्ञान प्रकट होता है। पद्मचरित की रचना ही इसलिए हुई कि ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थो (रामायण आदि) में राक्षस आदि का जो स्वरूप तथा कार्यकलाप आदि निर्धारित किया गया था वह रविषेण को अपनी धार्मिक और पौराणिक मान्यता के अनुसार अभीष्ट नहीं था।[१५७] अभीष्ट न होने का कारण रविषेण के अनुसार इस कथानक का युक्ति-पूर्ण न होना ही था।[१५८] रामायण की इस मान्यता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लोगों ने कान तक खोचकर छोड़े हुए बाणों से देव के अधिपति इन्द्र को पराजित किया था, रविषेण आलोचना करते हुए कहते हैं कि कहाँ तो देव का स्वामी इन्द्र और कहाँ यह तुच्छ मनुष्य जो कि इन्द्र की चिन्तामात्र से भस्म की राशि हो सकता था।[१५९] जिसके ऐरावत हाथी था और वज्र जैसा महान् शस्त्र था एवं जो सुमेरु पर्वत और समुद्रों से सुशोभित पृथ्वी को अनायास ही उठा सकता था ऐसा इन्द्र अल्पशक्ति के धारक विद्याधर के द्वारा, जोकि एक साधारण मनुष्य ही था कैसे पराजित हो सकता था।[१६०] रामायण में यह भी

---

१५५. काव्यधारा अवतरणिका, पृ० ५२।

१५६. महावीर जयन्ती स्मारिका, पृ० ४७ (अप्रैल, सन् १९६२)।

१५७. पद्म० २।२३०-२४९।

१५८. पद्म० २।२४९।

१५९. वही, २।२४१-२४३।

१६०. वही, २।२४४-२४५।

लिखा है कि राक्षसों के राजा रावण ने इन्द्र को अपने बन्दीगृह में पकड़कर रखा था और उसने बन्धन से बद्ध होकर चिरकाल तक लंका के बन्दीगृह में निवास किया था। ऐसा कहना मृगों के द्वारा सिंह का वध होना, तिलों के द्वारा शिलाओं का पीसा जाना, पनियां सांप के द्वारा नाग का मारा जाना और कुत्ता के द्वारा गजराज का दमन होने के समान है।[१६१] व्रत के धारक राम ने स्वर्ण-मृग को मारा था और स्त्री के पीछे सुग्रीव के बड़े भाई बालि को जोकि उसके पिता के समान था, मारा था। यह सब कथानक युक्तियों से रहित होने के कारण श्रद्धान के योग्य नहीं हैं।[१६२]

ब्राह्मणों की मान्यता के विषय में अश्रद्धा का भाव होते हुए भी काव्य में अलंकार आदि के द्वारा रसात्मकता उत्पन्न करने के लिए रविषेण ने पौराणिक ब्राह्मण आख्यानों और मान्यताओं का निर्देश पर्याप्त रूप से किया है, यह उनकी सहिष्णुता का परिचायक है। द्वितीय पर्व में राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

राजगृह नगर धर्म अर्थात् यमराज के अन्तःपुर के समान सदा मन को अपनी ओर खींचता रहता है क्योंकि जिस प्रकार यमराज का अन्तःपुर के शर से युक्त शरीर को धारण करने वाली हजारों महिषियों अर्थात् भैंसों से युक्त होता है उसी प्रकार राजगृह नगर भी केशर से लिप्त शरीर को धारण करने वाली हजारों महिषियों अर्थात् रानियों से सुशोभित है।[१६३]

राजगृह नगर की स्त्रियों का वर्णन करता हुआ कवि "गौर्यश्च विभवा-श्रया."[१६४] पद का प्रयोग करता है जिसका तात्पर्य यह है कि उस नगर की स्त्रियाँ "गौरी" अर्थात् पार्वती होकर भी 'विभवाश्रया' अर्थात् महादेव के आश्रय से रहित थीं (पक्ष में—गौर्यः अर्थात् गौर वर्ण होकर विभवाश्रयाः अर्थात् सम्पदाओं से सम्पन्न थीं)।

एक स्थान पर राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"वह नगर (राजगृह) मानों त्रिपुर'नगर को ही जीतना चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगर के निवासी मनुष्य 'ईश्वरमार्गणैः' अर्थात् महादेव के बाणों के द्वारा किये हुए सन्ताप को प्राप्त हैं उस प्रकार उस नगर के मनुष्य

---

१६१. पद्म० २।२४६-२४७। १६२. पद्म० २।२४८-२४९।

१६३. महिषीणां सहस्रैर्यत्कुङ्कुमाञ्चितविग्रहैः।
धर्मान्तःपुरनिर्भासं धत्ते मानसकर्षणम्॥ पद्म २।३४।

१६४. पद्म० २।४५।

'ईश्वरमार्गणै:' अर्थात् धनिकवर्ग की याचना से प्राप्त सन्ताप को प्राप्त नहीं थे—[१६५] सभी सुखी थे।"

राजा श्रेणिक का वर्णन करते हुए रविषेण विष्णु, महादेव, इन्द्र और यमराज की चेष्टाओं का उल्लेख करते हैं—

'हरि अर्थात् विष्णु की चेष्टायें तो वृषघाती अर्थात् वृषासुर को नष्ट करने वाली थी, पर (राजा श्रेणिक की) चेष्टायें वृषघाती अर्थात् धर्म का घात करने वाली नही थी। महादेव जी का वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् राजा दक्ष के परिवार को सन्ताप पहुँचाने वाला था परन्तु उसका वैभव दक्षवर्गतापि अर्थात् चतुर मनुष्यों के समूह को सन्ताप पहुँचाने वाला नहीं था।[१६६]

"जिस प्रकार इन्द्र की चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् पर्वतों का नाश करने वाली थी उसी प्रकार उसकी चेष्टा गोत्रनाशकारी अर्थात् वंश का नाश करने वाली नही थी और जिस प्रकार दक्षिण दिशा के अधिपति यमराज के अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् दण्ड धारण करने में अधिक प्रीति रहती है उसी प्रकार उसके अतिदण्डग्रहप्रीति अर्थात् बहुत भारी सजा देने में प्रीति नहीं रहती थी।"[१६७]

यज्ञ का जैन परम्परा मे निषेध किया गया है। इसी की पुष्टि करते हुए रविषेण कहते है—यज्ञ की कल्पना मे कोई प्रयोजन नही है (यज्ञ की कल्पना करना ही व्यर्थ है) यदि कल्पना करना ही है तो हिंसायज्ञ की कल्पना नही करना चाहिए।[१६८] बल्कि धर्मयज्ञ की कल्पना करनी चाहिए। इस धर्मयज्ञ का जो स्वरूप रविषेण ने निर्धारित किया उसे वास्तव में वैदिक यज्ञ का जैनीकरण ही किया जाना कहना चाहिए। तदनुसार आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तक के बाल कुशा हैं, प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान (उत्कृष्टध्यान) प्राणायाम है, सिद्धपद की प्राप्ति होना फल है, सत्य बोलना स्तम्भ है, तप अग्नि है, चंचल मन पशु है और इन्द्रियाँ समिधायें हैं। इन सबमे यज्ञ करना चाहिए, यही धर्मयज्ञ कहलाता

---

१६५. सन्तापमपरिप्राप्तैः कृतमीश्वरमार्गणैः।
मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम्॥ पद्म० २।३६।

१६६. वृषघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव।
नैश्वर्यचेष्टितं दक्षवर्गतापि पिनाकिवत्॥ पद्म० २।६१।

१६७. गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव।
नातिदण्डग्रहप्रीतिर्दक्षिणाशा विभोरिव॥ पद्म० २।६२।

१६८. वही, ११।२४१।

है।[१६९] ज्ञानाग्नि दर्शनाग्नि और जठराग्नि शरीर में सदा विद्यमान रहती हैं, विद्वानों को उन्हीं में दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीन अग्नियों की स्थापना करनी चाहिए।[१७०]

७६वें पर्व में लक्ष्मण के द्वारा छोड़े गये चक्र को रोकने में उद्यत रावण की उपमा हिरण्यकशिपु से की गई है—

"जिस तरह पूर्व में नारायण के द्वारा चलाए हुए चक्र को रोकने के लिए हिरण्यकशिपु उद्यत हुआ था, उसी प्रकार क्रोध से भरा रावण बाणों के द्वारा चक्र को रोकने के लिए उद्यत हुआ।"[१७१]

८२वें पर्व में साहसगति विद्याधर को वृत्र का नाती कहा गया है।[१७२]

९७वें पर्व में सीता के रथ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस पर राम रूपी इन्द्र की प्रिया—इन्द्राणी आरूढ थी, जिसका वेग मनोरथ के समान तीव्र था और जिसके घोड़े कृतान्तवक्त्र रूपी मातलि के द्वारा प्रेरित थे ऐसा वह रथ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था।[१७३]

(सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है इस प्रकार) ब्रह्मतावाद में मूढ़ तथा पशुओं की हिंसा मे आसक्त रहने वाले दो ब्राह्मणों की (१०९वां पर्व में) हँसी उड़ाते हुए कहा गया है कि इन दोनों ब्राह्मणों ने सुख की इच्छुक समस्त प्रजा को लूट डाला है।[१७४] ब्राह्मणों का जैन दृष्टि से लक्षण देते हुए कहा गया है कि यथार्थ में वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं जो अहिंसाव्रत को धारण करते हैं।[१७५] जो महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, जो क्षमा रूपी यज्ञोपवीत से सहित हैं, जो ध्यान रूपी अग्नि में होम करने वाले हैं, शान्त हैं तथा मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर

---

१६९. यजमानो भवेदात्मा शरीरं तु वितर्दिका।
पुरोडाशस्तु संतोषः परित्यागस्तथा हविः॥
मूर्धजा एव दर्भाणि दक्षिणा प्राणिरक्षणम्।
प्राणायामः सितं ध्यानं यस्य सिद्धपदं फलम्॥
सत्यं यूपस्तपो वह्निर्मनिसंचपलं पशुः।
समिधश्च हृषीकाणि धर्मयज्ञोऽयमुच्यते॥ पद्म० ११।२४२-२४४।

१७०. पद्म० ११।२४८।

१७१. हिरण्यकशिपुक्षिप्तं हरिणेव तदायुधम्।
निवारयितुमुद्युक्तः संरब्धो रावणः शरैः॥ पद्म० ७६।३०।

१७२. पद्म० ८२।४५।
१७३. पद्म० ९७।८०।

१७४. वही, १०९।७९।
१७५. वही, १०९।८०।

हैं वे ही ब्राह्मण कहलाते हैं।[१७६] इसके विपरीत जो सब प्रकार के आरम्भ में प्रवृत्त हैं तथा निरन्तर कुशील में लीन रहते हैं वे केवल यह कहते हैं कि हम ब्राह्मण हैं, परन्तु क्रिया से ब्राह्मण नहीं हैं।[१७७] जिस प्रकार कितने ही लोग सिंह, देव अथवा अग्नि नाम के धारक हैं उसी प्रकार व्रत से भ्रष्ट रहने वाले ये लोग भी ब्राह्मण नाम के धारक हैं, इनमें वास्तविक ब्राह्मणत्व कुछ भी नहीं है।[१७८] जो ऋषि, संयत, धीर, क्षान्त, दान्त और जितेन्द्रिय हैं ऐसे ये मुनि ही धन्य हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण है।[१७९]

सामान्यतः परिव्राजक शब्द से ब्राह्मण धर्म के अनुयायी विशेष प्रकार के साधुओं का ही बोध होता है लेकिन पद्मचरित के अनुसार जो परिग्रह को संसार का कारण समझ उसे छोड़ मुक्ति को प्राप्त करते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं। यथार्थ मे निर्ग्रन्थ मुनि ही परिव्राजक हैं, ऐसा जानना चाहिए।[१८०]

८५वें पर्व में वैदिक धर्म द्वारा उपदिष्ट पशुहिंसा के संकल्प का दुष्परिणाम बतलाया गया है।[१८१]

चतुर्थ पर्व मे ब्राह्मणों की उत्पत्ति का वर्णन कर दीक्षा से च्युत भृगु, अगिंशिरस, वन्हि, कपिल, अत्रि, विद आदि अनेक साधुओं का निर्देश किया गया है, जो अज्ञानवश वल्कलों को धारण करने वाले तापसी हुए थे।[१८२] इन सबके नाम वैदिक ऋषियों की परम्परा में मिलते हैं। सप्तम पर्व मे इस प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं के विषय में कहा गया है कि भले ही पृथ्वी पर सोवे, चिरकाल तक भोजन का त्याग रखे, रात-दिन पानी मे डूबा रहे, पहाड़ की चोटी से गिरे और जिससे मरण भी हो जाये ऐसी शरीर सुखाने वाली क्रियाये करे तो भी पुण्यरहित जीव अपना मनोरथ सिद्ध नही कर सकता।[१८३]

एकादश पर्व दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है इसमें हिंसामय यज्ञ की उत्पत्ति, अनेक यज्ञों तथा उनमे की जाने वाली क्रियाओं का उल्लेख, यज्ञों का खण्डन, सर्वज्ञ नही है, इसका उपस्थापन पूर्वक सर्वज्ञ सिद्धि, ब्राह्मणादि चार वर्णों के विषय मे जन्मना मान्यता का विरोध, सृष्टि कर्तृत्व के विषय मे पूर्वपक्ष की स्थापना तथा उसका खण्डन आदि महत्त्वपूर्ण विषय वर्णित है। इसके माध्यम से जैनधर्म और ब्राह्मण धर्म की मान्यतायें तथा उनके विभेद को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

०

---

१७६. पद्म० १०९।८१।
१७७. पद्म० १०९।८२।
१७८. वही, १०९।८३।
१७९. वही, १०९।८४।
१८०. वही, १०९।८६।
१८१. वही, ८५।५७-६२।
१८२. वही, ४।१२६।
१८३. वही, ७।३१९-३२०।

अध्याय २

सामाजिक व्यवस्था

सर्वप्रथम भरत क्षेत्र में भोगभूमि थी। स्त्री पुरुष का जोड़ा साथ ही साथ उत्पन्न होता था और साथ ही साथ उनकी मृत्यु होती थी।[1] उस समय बड़े-बड़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभाग से सहित महल, शयन, आसन, मद्य, इष्ट और मधुर पेय, भोजन, वस्त्र, अनुलेपन, तुरही के मनोहर शब्द, दूर-दूर तक फैलने वाली सुन्दर गन्ध तथा अन्य अनेक प्रकार की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी। इस प्रकार वहाँ के दम्पती दस प्रकार के सुन्दर कल्पवृक्षों के नीचे देव दम्पती के समान दिन-रात क्रीडा किया करते थे।[2] स्त्री पुरुषों के परस्पर निकट रहने के साथ ही सामाजिक जीवन का प्रारम्भ माना जा सकता है। तृतीय काल का अन्त होने के कारण जब कल्पवृक्षों का समूह नष्ट होने लगा तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए।[3] कुलकरों के कार्य के सम्बन्ध मे इन्हें 'व्यवस्थानां प्रदेशकः'[4] अर्थात् व्यवस्थाओं का निर्देश करने वाले कहा गया है। अतः सामाजिक व्यवस्था का विशेष आरम्भ यहाँ मानना चाहिए। प्रजाओं के कुलों की वृद्धि करने के कारण (या वृद्धि का निर्देश देने के कारण) ये पिता के समान कहे गये हैं।[5] इस समय इक्षुरस जो कि लोगों का प्रमुख आहार था अपने आप निकलना बन्द हो गया। लोग यन्त्रों के द्वारा ईख पेलने[6] तथा उसके संस्कार[7] करने की विधि नहो जानते थे इसलिए भूख से पीड़ित होकर व्याकुल होने लगे तब ऋषभदेव ने प्रजा को सैकड़ों प्रकार की शिल्पकलाओं का उपदेश दिया। उन्होंने नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना और मकान आदि बनाने की कला प्रजा को सिखाई। इन सबके सहयोग से सामाजिक जीवन का विकास होता गया।

परिवार

परिवार सामाजिक जीवन की रीढ़ है। परिवार में पति और पत्नी के अतिरिक्त माता-पिता, भ्राता-भगिनी, पुत्र-पुत्री आदि रहते हैं। साधारणतया

---

१. पद्मचरित ३।५१।
२. पद्म० ३।६१-६३।
३. वही, ३।७४।
४. वही, ३।७६।
५. वही, ३।८८।
६. वही, ३।२३४।
७. वही, ३।२३५।

परिवार के सदस्यों के पारिवारिक सम्बन्ध अच्छे होते थे। परिवार का स्वामी वयोवृद्ध सदस्य या पिता होता था। पिता की कीर्ति का बहुत ध्यान रखा जाता था। कैकेयी जब वन में जाकर राम को लौटाने का यत्न करती है तब राम कहते हैं कि पिता जी ने जो वचन कहे थे उनकी पूर्ति मुझे, तुम्हें तथा भरत सभी को करना चाहिए। पिता की अपकीर्ति जगत्त्रय में न फैले इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है।[८] पिता के समान ही माता को भी सम्मान दिया जाता था। पिता दशरथ कैकेयी को वर देते समय जब द्विविधा में फँस जाते हैं तब रामचन्द्र जी उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि पुत्र को वही कार्य करना चाहिए जिससे माता-पिता किंचित् भी शोक को प्राप्त न हो। माता-पिता को पवित्र करना अथवा शोक से उनकी रक्षा करना ही पुत्र का पुत्रत्व है।[९] भाई का भाई के प्रति अनूठे प्रेम का उदाहरण लक्ष्मण के चरित्र में मिलता है जो बिना ऊहापोह किये भाई के साथ चलने की तैयारी करते हुए कहते हैं—मुझे इस अनुचित विचार करने से क्या प्रयोजन? क्योंकि बड़े भाई राम तथा पिता ही यह कार्य उचित है अथवा अनुचित, यह अच्छी तरह जानते हैं। अतः मैं उत्तम कार्य करने वाले भाई के साथ जाता हूँ।[१०] कहीं-कहीं पर अहंकारवश अथवा स्वार्थवश इसके अपवाद भी मिल जाते हैं जैसे—भरत तथा बाहुबलि का युद्ध। ऐसे समय हम दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं ऐसा मानकर दो भाई विरुद्ध भी हो जाते थे।[११]

पत्नी पति को ही सब कुछ समझती थी। अनुचित व्यवहार किये जाने पर भी पति को दोष न देकर वह इसे अपने कर्मों का ही फल मानकर पति की कल्याणकामना के साथ उसे उचित सलाह देने का यत्न करती थी। पति द्वारा परित्यक्ता सीता राम के प्रति कहती है—हे राम! आप उत्कृष्ट चेष्टा के धारक हैं, सद्गुणों से सहित हैं और पुरुषता से युक्त हैं। मेरे त्यागने में आपको लेशमात्र भी दोष नहीं है।[१२] जब मेरा अपना कर्म उदय में आ रहा है तब पति, पुत्र, पिता, नारायण अथवा अन्य परिवार के लोग क्या कर सकते हैं।[१३] लेकिन इस तरह आप सम्यग्दर्शन को न छोड़ें, क्योंकि मेरे साथ वियोग को प्राप्त

---

८. पद्म० ३२।१३१।

९. जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृहैषिणा।
येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः॥
पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ पद्म० ३१।१२६-१२७।

१०. वही, ३१।१९८-१९९।

११. वही, ४।६७।

१२. वही, ९७।१५५।

१३. वही, ९७।१५७।

हुए आपको इसी भव में दुःख होगा। परन्तु सम्यग्दर्शन के छूट जाने पर तो भव-भव में दुःख होगा।[१४] कृतान्तवक्त्र सेनापति सीता को छोड़कर राम के पास आकर कहता है—"सीता देवी ने कहा है कि यदि अपना हित चाहते हो तो आपने जिस प्रकार मुझे छोड़ दिया है उस प्रकार जिनेन्द्रदेव में भक्ति को नहीं छोड़ना।"[१५]

नारी की स्थिति

पद्मचरित में प्रतिपादित पारिवारिक संगठन पितृसत्तात्मक होने पर भी समाज में नारियों की प्रतिष्ठा थी। पति के प्रत्येक कार्य में वे सहयोग दिया करती थी। किसी प्रकार की शंका या कार्य उपस्थित होने पर पत्नी निःसंकोच पति के पास जाकर शिष्टाचारपूर्वक निवेदन करती थी। सोलह स्वप्न दिखाई देने पर मरुदेवी पति के पास जाकर नीचे आसन पर बैठी और उत्तम सिंहासन पर आरूढ़ हृदयवल्लभ को हाथ जोड़कर क्रम से स्वप्नों का निवेदन किया।[१६]

माता के रूप में नारी अपरिमित श्रद्धा का भाजन थी। विजयाभिगमन के अवसर पर लव और कुश माता को प्रणाम कर मंगलाचार पूर्वक घर से निकले।[१७] पत्नी के रूप में नारी पति को कुमार्ग में भटकने से बचाने का सदैव प्रयत्न करती थी। सीता की प्राप्ति हेतु युद्ध में प्रवृत्त रावण को समझाती हुई मन्दोदरी कहती है—"आपका यह मनोरथ अत्यन्त संकट में प्रवृत्त हुआ है, इसलिए इन-इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को शीघ्र रोक लीजिए। आप तो विवेक रूपी सुदृढ़ लगाम को धारण करने वाले हैं। आपकी उत्कृष्ट धीरता, गम्भीरता और विचारकता उस सीता के लिए जिस कुमार्ग से गई है हे नाथ! जान पड़ता है आप भी किसी के द्वारा उसी कुमार्ग से ले जाये जा रहे है।"[१८] पिता के घर पुत्री का लालन-पालन बड़े स्नेह से होता था।[१९] परन्तु पुत्री के यौवन अवस्था प्राप्त कर लेने पर पिता को यह चिन्ता लग जाती थी कि कन्या उत्तम पति को प्राप्त होगी या नहीं।[२०] कन्याओं की शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाता था। वे गन्धर्व आदि विद्याओं में निपुण होती थी।[२१] आभूषण धारण करने की प्रथा स्त्रियों में प्रचलित थी।[२२] चँवर ढोने, शय्या बिछाने, बुहारने, पुष्प

---

१४. पद्म० ९९।४०, ४१।
१५. पद्म० ९९।३६।
१६. वही, ३।१५२।
१७. वही, १०१।३७।
१८. वही, ७३।५१, ५२।
१९. वही, ६४।६१।
२०. वही, १५।२४।
२१. वही, १५।२०, २४।५।
२२. वही, ७१।६, ३।१०२।

विकीर्ण करने, सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाने, भोजन पान बनाने आदि कार्यों में उनकी निपुणता का उल्लेख मिलता है।[२३]

विवाह प्रथा

गृहस्थ जीवन में प्रवेश के निमित्त युवा और युवती को एक सूत्र में बाँधने के लिए विवाह होता था। भोगभूमि के समय स्त्री-पुरुष का जोड़ा साथ ही उत्पन्न होता था और प्रेमबन्धन बद्ध हुए साथ ही उनकी मृत्यु हो जाती थी।[२४] बाद में विवाह सम्बन्धी कई प्रथायें प्रचलित हुईं। किसी शुभ दिन जबकि सौम्यग्रह सामने स्थित होते थे, क्रूर ग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी, तब स्त्रियों के मंगलगीत, तुरही की ध्वनि आदि क्रियाओं के साथ कन्या को लेकर पिता वर के घर पर ही विवाह कार्य सम्पन्न करा देते थे।[२५] कभी-कभी वर के किसी सुन्दर रूप और गुणों वाली कन्या पर आसक्त हो जाने पर वह स्वयं अथवा उसका पिता कन्या के पिता से कन्या की प्राप्ति हेतु याचना करता था। पिता उसके कुल, रूप, गुण तथा आयु आदि का विचार कर स्वीकृति या अस्वीकृति देते थे।[२६] अस्वीकृति देने पर कभी-कभी युद्ध होता था और युद्ध मे यदि वर पक्ष जीत जाता था तो उसके बल और पौरुष से प्रभावित होकर या विवशता के कारण उसे कन्या देनी पड़ती थी।[२७] यहाँ प्रेम विवाह के बहुत से उदाहरण मिलते है। प्रेम का प्रारम्भ कभी कन्या[२८] की ओर से होता था कभी वर[२९] की ओर से। कभी-कभी दोनों एक दूसरे को देखकर प्रेमपाश मे बँध जाते थे।[३०] गान्धर्व विवाह[३१] के साथ स्वयंवर प्रथा के भी उल्लेख मिलते हैं। स्वयवर पद्धति मे पुत्री का पिता अनेक लोगों को आमन्त्रित करता था। सुसज्जित मंच के ऊपर राजाओं को बैठाकर प्रतिहारी क्रम-क्रम से कन्या को राजाओं का परिचय देती जाती थी।[३२] अन्त में जिस वर को कन्या चाहती थी उसके गले मे वरमाला डाल देती थी।[३३] तदनन्तर लोगों के द्वारा विभिन्न प्रकार के कौतुक और मंगलाचार के साथ कन्या का पाणिग्रहण होता था।[३४] कभी-कभी

२३. पद्म० ३।११८-१२०।
२४. पद्म० ३।५१।
२५. पद्म० अष्टम पर्व में मन्दोदरी का दशानन के साथ विवाह।
२६. वही, १०।४-१०।
२७. वही, ९३ पर्व का श्रीराम का श्रीदामा और मनोरमा कन्या की प्राप्ति का वर्णन।
२८. वही, ८।१०७, ८।१०१।
२९. वही, ९३।१८।
३०. वही, ६।१९।
३१. वही, ८।१०८।
३२. वही, २४।८९।
३३. वही, २४।९०।
३४. वही, २४।१२१।

पिता द्वारा कन्या के लिए विशेष वर का निर्धारण हो जाने पर भी किसी विशेष कारणवश कोई आवश्यक शर्त रख दी जाती थी कि जो उस शर्त को पूरा करेगा उसे ही कन्या दी जायगी। उदाहरणस्वरूप विद्याधरों ने राजा जनक के सामने यह शर्त रखी कि वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर ही राम सीता को ग्रहण कर सकते हैं।[३५] राम उस शर्त को पूरा कर देते हैं और उनका सीता के साथ विवाह होता है। कभी-कभी वर की धीरता, वीरता तथा कुल और शील का परिचय प्राप्त करने के लिए युद्ध की आवश्यकता पड़ती थी।[३६] वर में जितने गुण होने चाहिए उनमें शुद्धवंश में जन्म लेना प्रमुख माना जाता था।[३७] कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्यागम ये नौ वर के गुण कहे गये हैं। उनमें भी कुल को श्रेष्ठ माना गया है।[३८] कुल नामका प्रथम गुण जिस वर में न हो उसे कन्या नही दी जाती थी।[३९]

स्नान—पद्मचरित से उस समय के राजवर्ग की ही स्नानविधि का विशेष रूप से पता चलता है। सामान्य लोगों की स्नानविधि क्या थी इसके विषय में यहाँ कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। स्नान करने से पूर्व सुगन्धित हितकारी तथा मनोहरवर्ण वाले तेल का मर्दन किया जाता था, पश्चात् प्राण और शरीर के अनुकूल पदार्थो का उद्वर्तन (उपटन) किया जाता था।[४०] उद्वर्तन के बाद फैलती हुई कान्ति से युक्त उत्तम आसन पर स्नान करने वाले व्यक्ति पूर्व दिशा की ओर मुख कर विराजमान होता था।[४१] पश्चात् स्नान की विधि प्रारम्भ होती थी। उस समय मन को हरण करने वाले तथा सब प्रकार की साज सामग्री से युक्त बाजे बजाये जाते थे।[४२] स्नान कराने का कार्य प्रायः नव यौवनवती स्त्रियाँ करती थी।[४३] राज्याभिषेक के समय उपस्थित लोग राजा की जयजयकार करते थे।[४४] राजा के अभिषेक के बाद पटरानी का भी अभिषेक होता था।[४५]

स्नान में प्रयुक्त पात्र—स्नान कराने के लिए चाँदी,[४६] स्वर्ण,[४७] मरकत

---

३५. पद्म० २८।१७१।
३६. पद्म० १०१।६०।
३७. वही, ६।४९।
३८. वही, १०१।१४, १५।
३९. वही, १०१।१६।
४०. वही, ८०।७२।
४१. वही, ७२।१६, ८०।७३।
४२. वही, ८०।७४।
४३. वही, ७२।१३, १४।
४४. वही, ८८।३२।
४५. वही, ८८।३३।
४६. वही, ७२।१२।
४७. वही, ७२।१३।

मणि,[४८] हीरा,[४९] स्फटिक मणि,[५०] इन्द्रनील मणि[५१] तथा रत्न[५२] के कलशों के उपयोग करने का उल्लेख मिलता है। रंग की दृष्टि से प्रातःकालीन धूप के समान लालवर्ण[५३] के कलश तथा कदली वृक्ष के भीतरी भाग के समान सफेद रंग के कलशों के प्रयोग की बात कही गई है। कई कलश ऐसे भी होते थे जो सुगन्धि के द्वारा भ्रमर समूह को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।[५४]

भोजन-पान—पद्मचरित की संस्कृति कृषि प्रधान संस्कृति है। इस कारण भोजन-पान का निर्धारण मुख्यतः अहिंसा की कसौटी पर किया गया। यद्यपि मांसाहार के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु उसे सामाजिक और धार्मिक[५५] दृष्टि से निन्दित और गर्हित स्वीकार किया गया है। सूर्य की किरणों से प्रकाशित, अतिशय पवित्र, मनोहर, पुण्य को बढ़ाने वाला, आरोग्यदायक और दिन में ही ग्रहण किये जाने योग्य भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है।[५६] रात्रि भोजन की यहाँ अत्यधिक निन्दा की गई है।[५७] भोजन के लिए एक विशेष प्रकार के वातावरण पर अधिक ध्यान दिया जाता था। मन, प्राण और नेत्रों के लिए अभीष्ट जो भी वस्तुएँ वनों से उत्पन्न होती थी उन्हे लाकर भोजन भूमि में एकत्रित करने का प्रयत्न किया जाता था।[५८] षट्रस[५९] भोजन का यहाँ उल्लेख हुआ है। षट्रस के अन्तर्गत कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर, कषाय और लवण आते है। पद्मचरित में प्रमुख रूप से चार प्रकार की भोजन सामग्री का उल्लेख है—

१. अन्न भोजन।
२. फल भोजन।
३ पक्वान्न भोजन।
४. शाक भोजन।

अन्न भोजन—इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के अन्न थे—

शालि[६०]—हेमन्त ऋतु में होने वाला एक विशेष प्रकार का चावल, जिसका पौधा रोपा जाता है।

---

४८. पद्म० ८०।७५।
४९. पद्म० ८०।७५।
५०. वही, ८०।७५।
५१. वही, ८०।७५।
५२. वही, ८८।३०।
५३. वही, ७२।१५।
५४. वही, ७२।१५।
५५. वही, १४।२६६।
५६. वही, ५३।१४१।
५७. वही, १४।२७२-२७४, १०६।३२, ३३।
५८. वही, ८०।७८।
५९. वही, ५३।१३६।
६०. वही, ५३।१३५।

गोधूम[६१]—गेहूँ, जिसकी उपज उत्तर पश्चिमी भारत में विशेष रूप से होती है।

राजमाष[६२]—एक विशेष प्रकार का उड़द जिसे हिन्दी मे बर्वटी या रोंसा कहते हैं।

मुद्‌ग[६३]—मूँग। इसकी दाल बनाई जाती है। अन्य प्रकार से भी इसका उपयोग होता है।

कोशीपुट[६४]—मौठ। यह मूँग की तरह प्रयोग में लाया जाने वाला खाद्यान्न है।

जीरक[६५]—जीरा। यह भोजन को रुचिकर बनाने में प्रयुक्त गर्म मसाला है।

सूप[६६]—दाल।

माष[६७]—अर्थात् उड़द। इसकी दाल बनाई जाती है।

पायस[६८]—खीर का व्यवहार प्राचीन काल से होता आया है। वाल्मीकि रामायण मे भी इसका उल्लेख हुआ है। पद्‌मचरित में कौशल्या पताका के शिखर पर बैठे हुए काक से कहती है—रे वायस! उड़-उड़। यदि मेरा पुत्र राम आयगा तो मै तुझे खीर देऊँगी। १२१वें पर्व में उत्तम गन्ध रस और रूप से युक्त खीर का आहार मुनिराज को समर्पित करने का उल्लेख आया है।[६९]

कोद्रव[७०]—कोदों।

व्यंजन—'व्यंजनं येनान्नं रुचिमापद्यते तद्दधिघृतशाकसूपादिः' अर्थात् जिन पदार्थों के मिलाने से या खाने से खाद्य पदार्थ में रुचि अथवा स्वाद उत्पन्न होता है वे दधि, घृत, शाक और दाल आदि पदार्थ व्यंजन कहलाते हैं।[७१] पद्‌मचरित में पिण्ड बाँधने योग्य तथा रस से भरे हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजनों का उल्लेख आया है।[७२]

फल भोजन—फल भोजन के अर्न्तगत पिण्डखर्जूर,[७३] दाडिम[७४] (अनार),

---

६१. पद्‌म० १०२।१०९, २।९। ६२. पद्‌म० २।८।
६३. वही, २।७। ६४. वही, २।७।
६५. वही, २।६। ६६. वही, ५३।१३५।
६७. वही, ३३।४७। ६८. वही, ८८।५।
६९. वही, १२१।१६, १७। ७०. वही, १३।६८।
७१. नेमिचन्द्र शास्त्री : आदि पुराण में प्रतिपादित भारत।
७२. पद्‌म० ५३।१३६। ७३. पद्‌म० २।१९।
७४. वही, २।१६।

मातुलिंगी[७५] (बिजौरा), द्राक्षा[७६] (दाख), नालिकेर[७७] (नारियल), आमलक[७८] (आँवला), नीप,[७९] कपित्थ[८०] (कैथा), कदली[८१] (केला), पूग[८२] (सुपाड़ी), कंकोल,[८३] लवंग,[८४] खर्जूर,[८५] इंगुद,[८६] आम्र[८७] (आम) रसदार बेर,[८८] जम्बु[८९] (जामुन), विभीतक[९०] (बहेड़ा), अक्षोट[९१] (अखरोट), नारिंग[९२] (नारंगी), एला[९३] (इलायची), स्पन्दनबिल्व[९४] (तेंदू), चिरबिल्व[९५] (बेल) तथा कर्कन्धु[९६] (बेर) के नाम आये हैं।

पक्वान्न भोजन

अपूप[९७]—पुआ भारत का पुराना पक्वान्न है। गेहूँ के आटे को चीनी और पानी में मिलाकर घी में मन्दमन्द आँच मे उतारे हुए माल पूए अपूप कहलाते थे। अपूप कई प्रकार के बनाये जाते थे। गुडापूप गुड डालकर बनाये जाते थे और तिलापूप तिल डालकर तैयार किये जाते थे। ये आजकल के अँदरसे के तुल्य होते थे। भ्रष्टा अपूप आजकल की नानखटाई या खोरी हैं। भाड में रखकर इनको सेका जाता था। चीनी मे मिलाकर बनाये हुए भ्रष्टा अपूप वर्तमान बिस्कुट के पूर्वज हैं। चूर्णिन अपूप गूझे या गुझिया है। ये कसार या आटा भीतर रखकर बनाये जाते थे।[९८]

घनबन्ध[९९]—घेवर।

शर्करा मोदक[१००]—शक्कर से बने हुए लड्डू।

---

७५. पद्म० २।१७। ७६. पद्म० २।१८।
७७. वही, २।१५। ७८. वही, ६।९१।
७९. वही, ६।९१। ८०. वही, ६।९१।
८१. वही, ६।९१। ८२. वही, ६।९२।
८३. वही, ६।९२। ८४. वही, ६।९२।
८५. वही, ४१।२६। ८६. वही, ४१।२६।
८७. वही, ४१।२६। ८८. वही, ४१।२६।
८९. वही, ३।४८। ९०. वही, ४२।११।
९१. वही, ४२।११। ९२. वही, ४२।१६।
९३. वही, ४२।१९। ९४. वही, ४२।२०।
९५. वही, ४२।२०। ९६. वही, ९९।४८।
९७. वही, ३४।१३।
९८. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत।
९९. पद्म० ३४।१३। १००. पद्म० ३४।१४।

कर्करा[१०१]—मिश्री।
खंडमोदक[१०२]—खाँड के लड्डू।
शष्कुली[१०३]—कचौड़ी।
पूरिका[१०४]—पूड़ियाँ।
गुडपूर्णिकापूरिका[१०५]—गुड़मिश्रित पूड़ी।

शाक भोजन—शाक भोजन के अन्तर्गत मैथिक[१०६] (मेंथी), शाल्मली[१०७] (सेम), पनस[१०८] (कटहल), चित्रभृत[१०९] (ककड़ी) तथा कूष्माण्ड[११०] (काशीफल) के नाम आते हैं।

पेय पदार्थ

मदिरा[१११]—पद्मचरित में प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर मदिरापान के उल्लेख मिलते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों मदिरापान करते थे। कामक्रीडा के सहायक द्रव्यों में इसकी प्रमुखता बतलाई है। ७३वें पर्व में इसका सांगोपांग वर्णन है। रात्रि मे होने वाली क्रीड़ाओं का उल्लेख करते हुए कवि कहता है—"उस समय कितने ही लोग ताम्बूल, गन्धमाला आदि देवोपम उपभोग से मदिरा पीते हुए अपनी वल्लभाओं के साथ क्रोड़ा करते थे। नशा में निमग्न कोई एक स्त्री मदिरा के प्याले में प्रतिबिम्बित अपना ही मुख देख ईर्ष्यावश नीलकमल से पति को पीट रही थी। स्त्रियों ने मदिरा में अपने मुख की सुगन्धि छोड़ी थी और मदिरा ने उसके बदले स्त्रियों के नेत्रों में अपनी लालिमा छोड़ी थी। कोई एक स्त्री मदिरा मे पड़ी हुई अपने नेत्रों को कान्ति को नीलकमल समझ ग्रहण कर रही थी अतएव पति ने उसकी चिरकाल तक हँसी की। कोई एक स्त्री यद्यपि प्रौढ़ नहीं थी तथापि धीरे-धीरे उसे इतनी अधिक मदिरा पिला दी गई कि वह काम के योग्य कार्य मे प्रौढ़ता को प्राप्त हो गई अर्थात् प्रौढ़ा स्त्री के समान कामभोग के योग्य हो गई। उस मदिरा रूपी सखी ने लज्जा रूपी सखी को दूर कर उन स्त्रियों को पति के विषय में ऐसी क्रीड़ा कराई जो उन्हें अत्यन्त इष्ट थी अर्थात् स्त्रियाँ मदिरा के कारण लज्जा छोड़ पतियों के साथ इच्छानुकूल क्रीड़ा करने लगी। जिसमें नेत्र घूम रहे थे तथा बार-बार मधुर अधकटे शब्दों

---

१०१. पद्म० १२०।२३।
१०२. पद्म० ३४।१४।
१०३. वही, ३४।१४।
१०४. वही, ३४।१४, १२०।२३।
१०५. वही।
१०६. वही, ४२।२०।
१०७. वही, ४२।२१।
१०८. वही, ५३।१९७।
१०९. वही, ८०।१५४।
११०. वही, ८०।१५४।
१११. वही, ११८।१५।

का उच्चारण हो रहा था ऐसी स्त्रियाँ और पुरुषों की मन को हरण करने वाली चेष्टा होने लगी। पीते-पीते जो मदिरा शेष बच रही थी उसे भी दम्पति पी लेना चाहते थे। इसलिए तुम पिओ, तुम पिओ, इस प्रकार जोर से शब्द करते हुए प्याले को एक दूसरे की ओर बढ़ा रहे थे।[११२] किसी सुन्दर पुरुष की प्रीति प्याले में समाप्त हो गई थी इसलिए वह वल्लभा का आलिंगन कर नेत्र बन्द करता हुआ उसके मुख के भीतर स्थित कुरले की मदिरा का पान कर रहा था।"[११३] मृत लक्ष्मण को मोहवश रामचन्द्र जी जीवित समझकर कहते हैं कि हे लक्ष्मीधर (लक्ष्मण) तुम्हें यह उत्तम मदिरा निरन्तर प्रिय रहती थी सो खिले हुए नीलकमल से सुशोभित पानपात्र मे रखी हुई इस मदिरा को पिओ।[११४]

मधु[११५]—पेय पदार्थों मे मधु का भी नाम आता है। सैनिकों मे मधुपान प्रचलित था। स्त्री-पुरुष की कामक्रीडा के बीच मधु सहायक द्रव्य का काम देता था।[११६]

दूध[११७] और दूध के बने पदार्थ—पेय पदार्थों में दूध और दूध से बने पदार्थ दही,[११८] रबड़ी,[११९] घी[१२०] आदि का उल्लेख आता है। उपमा के प्रसंग मे भी दूध, दही का नामोल्लेख हुआ है। ५१वें पर्व मे दधिमुख द्वीप का वर्णन करते हुए रविषेण कहते है—"उस दधिमुख द्वीप में एक दधिमुख नाम का नगर था जो दही के समान सफेद महलों से सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्ण के सुन्दर तोरणो से युक्त था।[१२१] मगध देश के पौड़ों और ईखों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इनकी शोभा ऐसी है कि दूध के सिंचन से ही मानों उत्पन्न हुए हैं।"[१२२]

इक्षुरस—इक्षुरस का प्रयोग भारत मे प्राचीन काल से हो चला आ रहा है। भोगभूमि के समय इक्षुरस ही प्रजा का उत्तम आहार था। उस समय यह छहों रसों से सहित, बल-वीर्य करने में समर्थ तथा स्वयं झड़ने वाला था।[१२३] राजा श्रेयांस ने ऋषभदेव को सर्वप्रथम इक्षुरस का आहार दिया था।[१२४] इक्षुरस से गुड़, खांड़, चीनी, मिश्री तथा तरह-तरह की मिठाइयाँ आदि बनाई

---

११२. पद्म० ७३।१३६-१४४।
११३. वही, ७३।१४५।
११४. वही, ११८।१५।
११५. वही, १०२।१०५।
११६. वही, ७३।१३९।
११७. वही, ५३।१३७।
११८. वही, ५३।१३७।
११९. वही, ५३।१३७।
१२०. वही, ८०।७७।
१२१. वही, ५१।२।
१२२. वही, २।४।
१२३. वही, ३।२३३।
१२४. वही, ४।१६।

जाती थीं।[125] ईख की ही एक जाति विशेष पुण्ड्र[126] (पौड़ा) है। पद्मचरित में पौड़ों के वनों का उल्लेख आया है। इस श्रेणी के गन्ने में अधिक रस निकलता है और यह अधिक मधुर भी होता है।

भोजन सम्बन्धी पदार्थों का वर्गीकरण पद्मचरित में एक अन्य प्रकार से भी किया गया है। भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य के भेद से यहाँ भोजन सम्बन्धी पदार्थ पाँच प्रकार के कहे गये हैं।[127] रविषेण ने इन सबके ज्ञान होने को 'आस्वाद्य विज्ञान' कहा है। यह आस्वाद्यविज्ञान पाचन (पकाना), छेदन (तोड़ना), उष्णत्वकरण (गर्म करना) आदि भेदों से युक्त हैं।[128]

भक्ष्य—जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे भक्ष्य कहते है। यह कृत्रिम तथा अकृत्रिम के भेद से दो प्रकार का है।[129]

भोज्य—जो क्षुधा निवृत्ति के लिए खाया जाता है उसे भोज्य कहते हैं। इसके भी मुख्य और साधक की अपेक्षा दो भेद हैं। ओदन, रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और लप्सी, दाल, शाक आदि साधक भोज्य है।[130]

पेय—शीतयोग (शर्बत), जल और मद्य के भेद से पेय तीन प्रकार का कहा गया है।[131]

लेह्य—वे पदार्थ जिनको चाटकर आनन्द लिया जाता है।

चूष्य—वे पदार्थ जिन्हे चूसकर रस लिया जाता है।

भोजन करने के बाद लवंग (लौंग) तथा उससे युक्त पान का भी व्यवहार होता था।[132]

भोजन शाला में प्रयुक्त पात्र—पद्मचरित में भोजन बनाने के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले निम्नलिखित पात्रों के नाम आये हैं—

स्थाली[133]—थाली।

कलश[134]—जल भरने का घड़ा।

जाम्बूनदमयी पात्री—स्वर्ण की थाली।

चषक[135]—प्याला।

घट[136]—घड़ा।

---

१२५. पद्म० १२०।२३। १२६. पद्म० २।४।
१२७. वही, २४।५३। १२८. वही, २४।५६।
१२९. वही, २४।५३। १३०. वही, २४।५४।
१३१. वही, २४।५५। १३२. वही, ४०।१७।
१३३. वही, ५३।१३४, १२०।२१। १३४. वही, ६०।२१, १२०।२४।
१३५. वही, ७३।१३७। १३६. वही, ३३।१८०।

पिठर[१३७]—मटका या बटलोई ।

सूर्प[१३८]—अनाज से कूड़ा करकट अलग करने का पात्र ।

इसके अतिरिक्त मिट्टी, बाँस तथा पलाश के पत्तों से सब प्रकार के बर्तन तथा उपयोगी सामान बनाने का उल्लेख हुआ है ।[१३९] अनाज रखने के लिए पल्योघ (खत्तियाँ) बनाई जाती थीं ।

विद्या

पद्मचरित के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय विद्या मौखिक और लिखित दोनों प्रकार से दी जाती थी । प्रारम्भ में वर्णमाला सीखना आवश्यक था । एक स्थान पर चक्रपुर के राजा चक्रध्वज और उसकी मनस्विनी नामक स्त्री से उत्पन्न चित्तोत्सवा नामक कन्या का गुरु के घर जाकर खड़िया मिट्टी के टुकड़ों से वर्णमाला लिखने का कथन किया गया है ।[१४०]

विद्या प्राप्ति के लिए आवश्यक बातें—विद्या प्राप्ति के लिए स्थिर चित्त होना आवश्यक माना जाता था ।[१४१] यदि शिष्य शक्ति से युक्त होता था तो वह गुरु के लिए प्रसन्नता का विषय होता था । जिस प्रकार सूर्य के द्वारा नेत्रवान् (अर्थात् नेत्र शक्ति से युक्त) पुरुष को समस्त पदार्थ सुख से दिखाई देते हैं । नेत्रहीन पुरुष को सूर्य का प्रकाश होने पर भी कुछ भी नहीं दिखाई देता उसी प्रकार शक्ति रहित अथवा अल्पशक्ति वाले शिष्य को भी विद्या प्राप्ति होने मे कठिनाई होती है ।[१४२] पात्र अपात्र का अधिक ध्यान रखा जाता था । पात्र के लिए उपदेश देने वाला गुरु कृतकृत्यता को प्राप्त हो जाता है । जिस प्रकार उल्लू के लिए किया हुआ सूर्य का प्रकाश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार अपात्र के लिए दिया हुआ उपदेश व्यर्थ होता है ।[१४३] कर्म के प्रभाव से ही शीघ्र से या देर से विद्या की सिद्धि होती है । किसी को दस वर्ष में, किसी को एक माह मे और किसी को एक ही क्षण मे विद्यायें सिद्ध हो जाती हैं, यह सब कर्मों का प्रभाव है ।[१४४]

गुरु का महत्त्व—गुरु का उस समय अधिक महत्त्व था । शिष्य कितना ही निपुण क्यों न हो वह गुरु या आचार्य की मर्यादा का सदा ध्यान रखता था । विद्युत्केश विद्याधर ने एक मुनिराज से पूछा कि हे देव ! मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ? इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि चार ज्ञान के धारी हमारे

---

१३७. पद्म० ३३।१८० ।
१३८. पद्म० ३३।१८० ।
१३९. वही, ४१।११ ।
१४०. वही, २६।७ ।
१४१. वही, २६।७ ।
१४२. वही, १००।५० ।
१४३. वही, १००।५२ ।
१४४. वही, ६।२६२-२६४ ।

गुरु पास ही विद्यमान हैं अतः हम लोग उन्हीं के पास चलें, यही सनातन धर्म है। आचार्य के समीप रहने पर भी जो उनके पास नहीं जाता है और स्वयं उपदेशादि देकर आचार्य का काम करता है वह मूर्ख शिष्यपना को ही छोड़ देता है।[१४५] शिष्य और गुरु का बडा आत्मिक सम्बन्ध होता है। अपनी विशेष बातों को गुरु से निवेदन कर शिष्य बड़े भारी दुःख से छूट जाता है।[१४६] सामान्य शिष्य से लेकर राजपुत्र तक गुरु की सेवा में तत्पर रहते थे।[१४७] गुरु के समक्ष लिया हुआ व्रत भंग करना बहुत दुःखकर माना जाता था। राम द्वारा परित्यक्ता सीता कहती है कि निश्चित ही मैंने अन्य जन्म में गुरु के समक्ष व्रत लेकर भंग किया होगा, जिसका यह फल प्राप्त हुआ है।[१४८] शिष्य के अभिभावक भी गुरु का यथायोग्य सम्मान करते थे।[१४९]

विद्या प्राप्ति का स्थान—विद्या प्राप्ति कुछ लोग गुरु के घर पर करते थे।[१५०] कहीं-कहीं विशिष्ट विद्वानों को राजा लोग अपने घर पर ही रख लिया करते थे।[१५१] उस समय के विद्यालय भी विद्या प्राप्ति के उत्तम स्थान थे।[१५२] तापसी लोगों के बड़े-बडे आश्रमों का भी उल्लेख मिलता है, जिनके घर बहुत से शिष्य विद्याध्ययन करते थे।[१५३]

लिपि—लेखन कला का उस समय विकास हो गया था। पद्मचरित मे चार प्रकार की लिपि कही गई है।

अनुवृत्त[१५४]—जो लिपि अपने देश में आमतौर से चलती है उसे अनुवृत्त कहते है।

विकृत[१५५]—लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते हैं, उसे विकृत कहते हैं।

सामयिक[१५६]—प्रत्यंग आदि वर्णो में जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक कहते हैं।

नैमित्तिक[१५७]—वर्णों के बदले पुष्पादि पदार्थ रखकर जो लिपि का ज्ञान

---

१४५. पद्म० ६।२६२-२६४।
१४६. पद्म० १५।१२२-१२३।
१४७. वही, १००।८१।
१४८. वही, ९७।१६०।
१४९. वही, ३९।१६३।
१५०. वही, २६।५, ६।
१५१. वही, ३९।१६०।
१५२. वही, ३९।१६२।
१५३. वही, ८।३३३, ३३४।
१५४. वही, २४।२४।
१५५. वही, २४।२४।
१५६. वही, २४।२५।
१५७. वही, २४।२५, २६।

कराया जाता है, उसे नैमित्तिक कहते हैं। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय, समाद्र आदि देशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद होते हैं।

विद्या प्रदाता—विद्या प्रदाताओं की श्रेणी में गुरु,[१५८] उपाध्याय,[१५९] विद्वान्,[१६०] यति,[१६१] आचार्य[१६२] तथा मुनि नाम आये हैं।

विद्या प्रदाता के गुण—विद्या प्रदाता को महाविद्याओं से युक्त, पराक्रमी, प्रशान्तमुख, धीरवीर, सुन्दर आकृति का धारक, शुद्ध भावनाओं से युक्त, अल्प परिग्रह का धारी, उत्तम व्रतों से युक्त, धर्म के रहस्य को जानने वाला, कला रूपी समुद्र का पारगामी, शिष्य की शक्ति को जानने वाला तथा पात्र अपात्र का विचार करने वाला होना चाहिए।[१६३]

विद्याओं के प्रकार—पद्मचरित से व्याकरण, गणितशास्त्र, धनुर्वेद, अस्त्रशास्त्र विद्या, आरण्यक शास्त्र, ज्योतिष विद्या, जैनदर्शन, वेद, वेदान्त, बौद्धदर्शन, निमित्तविद्या, शकुन विद्या, आरोग्यशास्त्र, कामशास्त्र, संस्कृत, प्राकृत शौरसेनी आदि भाषायें, लोकज्ञता, संगीतविद्या, नृत्यविद्या, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र आदि विद्याओं के संकेत मिलते हैं।

व्याकरण विद्या—व्याकरण विद्या का उस समय तक अधिक विकास हो गया था, ऐसा पद्मचरित के अध्ययन से विदित होता है। नवम सर्ग में कैलाश पर्वत की उपमा व्याकरण से देते हुए रविषेण कहते हैं—जिस प्रकार व्याकरण अनेक धातुओं से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत अनेक धातुओं (चाँदी सोने आदि) से युक्त था, जिस प्रकार व्याकरण हजारों गणों (शब्द समूहों) से युक्त था उसी प्रकार वह पर्वत भी हजारों गणों अर्थात् साधु समूहों से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण सुवर्ण अर्थात् उत्तमोत्तम वर्णों की घटना से मनोहर है उसी प्रकार वह पर्वत भी सुवर्ण अर्थात् स्वर्ण की घटना से मनोहर था। जिस प्रकार व्याकरण पदों अर्थात् सुबन्त तिङन्त रूप शब्द समुदाय से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक पदों अर्थात् स्थानों या प्रत्यन्त पर्वतों अथवा चरण चिह्नों से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण प्रकृति अर्थात् मूल शब्दों के अनुरूप विकारों अर्थात् प्रत्ययादिजन्य विकारों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक रचना के अनुरूप विचारों से युक्त था जिस प्रकार व्याकरण बिल अर्थात् मूलसूत्रों से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी बिल अर्थात् ऊषर पृथ्वी

---

१५८. पद्म० २६।६।
१५९. पद्म० ३९।१६३।
१६०. वही, ३९।१६०।
१६१. वही, ३९।३०३।
१६२. वही, २५।५३।
१६३. वही, १००।३२,३३,३४, १००।५०,५२।

अथवा गर्त आदि से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि) अनेक प्रकार के स्वरों से पूर्ण है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक प्रकार के स्वरों अर्थात् प्राणियों के शब्दों से पूर्ण था।[१६४] इस उपमा में आए धातु, गण, सुवर्ण पद, प्रकृति, बिल तथा स्वर शब्द व्याकरण के विकास का द्योतन करते हैं। व्याकरण शास्त्र के नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात जैसे पारिभाषिक शब्दों का भी यहाँ प्रयोग हुआ है।[१६५]

गणितशास्त्र—पद्मचरित मे इसे सांख्यिकी कहा है। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के पद्मक नगर के रम्भ नामक पुरुष को गणित शास्त्र का पाठी कहा गया है।[१६६]

धनुर्वेद—राजा सहस्ररश्मि के ऊपर जब रावण ने बाण छोड़े तब सहस्ररश्मि ने कहा कि हे रावण! तुम तो बड़े धनुर्धारी मालूम होते हो। यह उपदेश तुम्हें किस गुरु से प्राप्त हुआ है? अरे छोकड़े! पहले धनुर्वेद पढ़ और अभ्यास कर, पश्चात् मेरे साथ युद्ध करना।[१६७] पच्चीसवें पर्व में राजगृह नगर के वैवस्वत नामक एक विद्वान् का उल्लेख किया गया है जो धनुर्विद्या मे निपुण था और विद्याभ्यास में श्रम करने वाले एक हजार शिष्यों सहित था। काम्पिल्यनगर के शिखी नामक ब्राह्मण का लड़का ऐर उसी के पास विधिपूर्वक विद्या सीखने लगा और कुछ ही समय में उसके हजार शिष्यों से भी अधिक निपुण हो गया।[१६८] इससे धनुर्वेद के सीखने-सिखाने का प्रचलन सूचित होता है।

आरण्यक शास्त्र—पद्मचरित के ११वें पर्व मे क्षीरकदम्बक द्वारा नारद आदि शिष्यों को आरण्यक शास्त्र[१६९] पढ़ाने का उल्लेख है।

---

१६४. नानाधातु समाकीर्णं गणैर्युक्तं सहस्रशः।
सुवर्णघटनारम्यं पदपंक्तिभिराजितम् ॥ पद्म० ९।११२।
प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैर्विलसंयुतम्।
स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लब्धव्याकरणोपमम् ॥ पद्म० ९।११३।

१६५. नामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता।
प्राकृती शौरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृता ॥ पद्म० २४।११।

१६६. पद्म० ५।११४।

१६७. अहो रावण धानुष्को महानसि कुतस्तव।
उपदेशो यमायातो गुरोः परमकौशलात् ॥ पद्म० १०।१२७।
वत्स तावद्धनुर्वेदमधीष्व कुरु च श्रमम्।
ततो मया समं युद्धं करिष्यसि नयोज्झितः ॥ पद्म० १०।१२८।

१६८. पद्म० २५।४६, ४७।

१६९. पद्म० ११।१५।

ज्योतिष विद्या—ज्योतिष विद्या बहुत प्राचीन है। मंगल कार्य से पूर्व ज्योतिषी द्वारा ग्रहों आदि की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर शुभाशुभ मुहूर्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता था। विवाह की तिथि ज्योतिषी निश्चित करते थे।[१७०] किसी शुभ दिन जब सौम्यग्रह सामने स्थित होते थे, क्रूरग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी तब प्रस्थान किया जाता था।[१७१] अंजना ने मामा से अपने पुत्र के ग्रहों के विषय मे जानना चाहा। तब उसके मामा के पाश्वंग नामक ज्योतिषी ने पुत्र के जन्म का समय पूछकर संक्षेप से उसके जीवन के विषय में बतलाया—'यह चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, सूर्य दिन का स्वामी है। सूर्य मेष का है अतः उच्च स्थान मे बैठा है। चन्द्रमा मकर का है अत मध्यगृह मे स्थित है। मंगल वृष का है अतः मध्यस्थान मे बैठा है। बुध मीन का है वह भी मध्यस्थान मे स्थित है। शुक्र और शनि दोनों ही मीन के हैं तथा उच्च स्थान मे आरूढ है। उस समय मीन का ही उदय था। सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनि को देखता है और मगल सूर्य को अर्धदृष्टि से देखता है। बृहस्पति चन्द्रमा को पूर्ण दृष्टि मे देखता है और चन्द्रमा भी अर्ध दृष्टि मे बृहस्पति को देखता है। बृहस्पति शनि को पौन दृष्टि से देखता है और शनि बृहस्पति को अर्ध दृष्टि से देखता है। बृहस्पति शुक्र को पौन दृष्टि से देखता है और शुक्र भी बृहस्पति पर पौन दृष्टि डालता है। अवशिष्ट ग्रहों की पारस्परिक अपेक्षा नही है। उस समय इसके ग्रहो के उदय क्षेत्र काल का अत्यधिक बल है। सूर्य, मगल और बृहस्पति इसके राज्ययोग को सूचित कर रहे है और शनि मुक्तिदायी योग को प्रकट कर रहा है। यदि एक बृहस्पति ही उच्च स्थान में स्थित हो तो समस्त कल्याण की प्राप्ति का कारण होता है। इसके तो समस्त ग्रह उच्च स्थान मे स्थित है। उस समय ब्राह्म नाम का योग और शुभ नाम का मुहूर्त था अतः ये दोनों हो ब्राह्म स्थान अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी सुख के समागम को सूचित करते हैं। इस प्रकार इस पुत्र का यह ज्योतिश्चक्र सर्व वस्तु को दोषों से रहित सूचित करता है।[१७२]

वेद—पद्मचरित के ११वें पर्व में सर्वज्ञसिद्धि के प्रसंग में वेद के दोष दिखाये गये हैं।[१७३] वेद का कोई कर्त्ता नहीं है इस बात को अयुक्तिसंगत सिद्ध कर वेद का कोई कर्ता है, इस पक्ष मे अनेक प्रमाण दिये गये हैं। इसमें प्रमुख युक्ति यह है कि चूंकि वेद पद और वाक्यादि रूप है तथा विधेय और प्रतिषेध्य अर्थ से युक्त है अतः किसी कर्ता द्वारा बनाया गया है। जिस प्रकार मैत्र का

---

१७०. पद्म० १५।९३।
१७१. पद्म० ८।१८, १९।
१७२. वही, १७।३६४-३७७।
१७३. वही, ११।१८४।

काव्य पद वाक्यादि रूप होने से किसी के द्वारा बनाया गया है।[१७४] यहाँ वेद शास्त्र हैं इसी बात को असिद्ध ठहराया गया है क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माता के समान समस्त संसार के लिए हितकर उपदेश दे। जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नहीं। परन्तु याज्ञिक हिंसा में प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है।[१७५] प्रायश्चित्त के भी यहाँ कुछ उदाहरण दिये गये हैं।[१७६]

वेदान्त—पद्मचरित में अग्निभूत तथा वायुभूत नामक दो ब्राह्मणों की हँसी उड़ाते हुए लोगों के मुख से यह कहलाया गया है कि ब्रह्मतावाद में मूढ एवं पशुओं की हिंसा में आसक्त रहने वाले इन दोनों ब्राह्मणों ने सुख की इच्छुक प्रजा को लूट डाला है।[१७७]

बौद्धदर्शन—पद्मचरित के दूसरे पर्व में राजा श्रेणिक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार बुद्ध का दर्शन अर्थवाद (वास्तविकतावाद) से रहित होता है उसी प्रकार उसका दर्शन (साक्षात्कार) अर्थवाद (धनप्राप्ति) से रहित नहीं होता था।[१७८]

निमित्त विद्या—निमित्त विद्या के अन्तर्गत पद्मचरित में अष्टांगनिमित्त के ज्ञाता मुनिराज[१७९] और क्षुल्लक[१८०] का उल्लेख हुआ है। लोगों ने उनसे अपने मनोनुकूल प्रश्न पूछे।

शकुन विद्या—ऐसी आकस्मिक घटना को, जिसे भावी शुभाशुभ का

---

१७४. पद्म० ११।१९०।

१७५. वेदागमस्य शास्त्रत्वमसिद्धं शास्त्रमुच्यते।
तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम्॥ पद्म० ११।२०९।
प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितम्।
अत्र तूक्तं ततो दुष्टं तच्चेदमभिधीयते॥ पद्म० ११।२१०।

१७६. पद्म० ११।२११-२१५।

१७७. एताभ्यां ब्रह्मतावादे विमूढाभ्यां सुखार्थिनी।
प्रजेयं मुषिता सर्वा सक्ताभ्यां पशुहिंसने॥ पद्म० १०९।७९।

१७८. बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम्।
न श्रीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव॥ पद्म० २।६४।

१७९. पद्म० ५१।२९।

१८०. वही० १००।४४।

द्योतक समझा जाता है, शकुन कहते हैं ।[१८१] अथवा भावी शुभ या अशुभ फल की द्योतक किसी घटना, अद्भुत दृश्य या संयोग को शकुन कहते हैं ।[१८२] सूचक संकेत एवं भावी घटना मे कार्यकारण नहीं होता । शकुन वस्तुतः ऐसा संकेत है जो कारणान्तर से उत्पन्न होने वाले कार्य की सूचना मात्र देता है, स्वयं उस भावी घटना का कारण नहीं होता ।[१८३] वराहमिहिर के अनुसार शकुन जन्मान्तर में कृत कर्म के भावी फल की सूचना देता है ।[१८४] पद्मचरित में प्राप्त शकुनों को हम निम्नलिखित भागों मे विभाजित कर सकते हैं—

प्राणियों के शुभाशुभ सूचक दर्शन एवं क्रियाओ से प्राप्त शकुन ।

प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त शकुन ।

शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन ।

स्वप्नों से प्राप्त शकुन ।

ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शकुन ।

प्राणियों के शुभाशुभसूचक दर्शन एवं क्रियाओं से प्राप्त शकुन—समीप हो मयूर का मनोहर शब्द करना, उत्तमोत्तम अलंकारों से युक्त स्त्री का सामने खड़ा होना,[१८५] निर्ग्रन्थ मुनिराज का सामने से आना, घोड़ों की गम्भीर हिनहिनाहट होना,[१८६] बायी ओर नवीन गोबर को बिखेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए काक का मधुर शब्द करना,[१८७] सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान हो तथा बिना विघ्न बाधा के शीघ्र प्रस्थान करो इत्यादि मंगल शब्द होना,[१८८] ये लक्षण शुभ माने गये हैं ।

---

१८१. 'A casual event of occurance supposed to protend good or evil'

The century dictionary vol. V. P. 4105

१८२. An occurrance phenomenon or incident regarded as an indication of a favourable or unfavourable issue.

Funk & wagnall's new stand and dictionary of the English language vol. III P. 1722.

१८३. संस्कृत काव्य में शकुन, पृ० ३ ।

१८४. अस्य जन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् ।
यत् तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥

—वराहमिहिर : बृहत्संहिता, पृ० ५००, अध्याय ८६।५ ।

१८५. पद्म० ५४।५० ।

१८६. पद्म० ५४।५१ ।

१८७. वही, ५४।५३ ।

१८८. वही, ५४।५३ ।

घोड़े का ग्रीवा को कँपाना तथा प्रखर शब्द करते हुए हींसना,[१८९] हाथी का कठोर शब्द करते हुए पृथ्वी को ताड़ित करना।[१९०] सूर्य के सम्मुख हुए कौए का अत्यन्त तीक्ष्ण शब्द करना तथा अपने झुण्ड को छोड़कर अलग बैठ जाना,[१९१] कौए के पंख ढीले पड़ना तथा अत्यन्त व्याकुल दिखाई पड़ना,[१९२] दाहिनी ओर कौए का काँव-काँव करना,[१९३] शृगाल का नीरस शब्द करना,[१९४] कौए का सूखा काठ चोंच मे दबाकर सूर्य की ओर देखते हुए क्रूर शब्द करना,[१९५] रीक्ष का महाभयंकर शब्द करना,[१९६] प्रयाण के रोकने में तत्पर होना, मण्डलाकार बाँधकर खड़े होना, दक्षिण की ओर दिखाई पड़ना, गीधों का पंखों द्वारा गाढ़ अन्धकार उत्पन्न करना,[१९७] विकृत शब्द करना, शृगाली[१९८] का दक्षिण दिशा में रोमाच धारण करते हुए भयकर शब्द करना, गधे[१९९] का दाहिनी ओर मुख उठाकर आकाश को बड़ी तीक्ष्णता से मुखरित करना, खुर के अग्रभाग से पृथ्वी को खोदते हुए भयंकर शब्द करना, महानाग का मार्ग काट जाना, ऐसा लगने लगना जैसे लोग उससे कह रहे हों कि हा, ही, तुझे धिक्कार है, कहाँ जा रहा है ?[२००] पीछे की ओर छीक होना[२०१] आदि लक्षण अशुभ सूचक माने गये है, दक्षिण दिशा में भालू का अत्यन्त भयंकर शब्द करना,[२०२] आकाश मे सूर्य को आच्छादित करते हुए गीध का मँडराना[२०३] ये अपशकुन मरण के सूचक है।

सामान्यतः काक की चेष्टायें अशुभ मानी जाती हैं किन्तु काक का किसी विशेष स्थिति में होना तथा मधुर शब्द करना कही-कहीं शुभ माना गया है। चन्द्रप्रभ चरित महाकाव्य (तेरहवी शती) में युवराज सहित राजा पृथ्वीपाल के साथ युद्ध के लिए जाते समय मार्ग में क्षीरी (खिरनी) के वृक्ष पर स्थित काक द्वारा मधुर शब्द करना शुभ[२०४] किन्तु पृथ्वीपाल के रणभूमि को जाते समय

---

१८९. पद्म० ७२।८१।
१९०. पद्म० ७२।८१।
१९१. वही, ७२।८१।
१९२. वही, ७२।८३।
१९३. वही, ७३।१९।
१९४. वही, ७२।८०।
१९५. वही, ७।४४।
१९६. वही, ५७।६९।
१९७. वही, ५७।७०।
१९८. वही, ७।४५।
१९९. वही, ७।८।
२००. वही, ७३।१८।
२०१. वही, ७३।१९।
२०२. वही, ७४।१५।
२०३. वही, ७३।१५।
२०४. वीरनन्दी : चन्द्रप्रभचरित १७।२८।

मार्ग में काँटेदार वृक्ष पर स्थित काक द्वारा कठोर शब्द करना उसकी मृत्यु का द्योतक होने के कारण अशुभ माना गया है।[२०५] यहाँ पद्मचरित में बायीं ओर नवीन गोबर को बिखेरते हुए तथा पखों को फैलाते हुए काक को मधुर शब्द करते हुए चित्रित किया गया है, अतः शुभ माना गया है।

प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त शकुन—गमन के योग्य मन्द वायु का चलना,[२०६] वृक्षों का सब ऋतु के फल-फूल धारण करना, पृथ्वी का निर्मल होना,[२०७] भूमि का सुगन्धित पवन द्वारा धूलि, पाषाण और कण्टक से रहित होना,[२०८] दुर्भिक्ष का न होना,[२०९] निर्धूम अग्नि की ज्वाला दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना[२१०] तथा सुगन्धि को फैलाती हुई वायु का बहना[२११] शुभ माना गया है।

बड़े-बड़े तालाबों का सूख जाना, पहाड़ों की चोटियाँ नीचे गिरना तथा आकाश से रुधिर की वर्षा होना[२१२] थोड़े ही दिन में स्वामी के मरण की सूचना देने वाले हैं। परिवेष से युक्त सूर्य के बिम्ब में भयंकर कबन्ध दिखाई देना और उससे खून की बूँदों का बरसना,[२१३] समस्त पर्वतों को कम्पित करने वाले भयंकर वज्र गिरना,[२१४] सूर्य के चारों ओर शस्त्र के समान अत्यन्त रूक्ष परिवेष (परिमण्डल) रहना,[२१५] पूरी रात्रि चन्द्रमा का छिपा रहना,[२१६] भयंकर वज्रपात होना,[२१७] अत्यधिक भूकम्प होना,[२१८-२२०] पूर्व दिशा में काँपती हुई रुधिर के समान उल्का गिरना[२२१] तथा देवताओं की प्रतिमाओं का अश्रुजल की वर्षा के लिए दुर्दिन स्वरूप बनना[२२२] अशुभ माना गया है।

शारीरिक लक्षणों से प्राप्त शकुन—निर्मल कान्ति वाला शरीर होना, शरीर का छाया रहित होना अर्थात् परछाई पड़ने से रहित होना,[२२३] नेत्रों का

---

२०५. पद्म० १५।३२।
२०६. पद्म० २।९४।
२०७. वही, २।९५।
२०८. वही, २।९६।
२०९. वही, २।९१।
२१०. वही, ५४।५०।
२११. वही, ५४।५१।
२१२. वही, ७२।८४-८५।
२१३. वही, ७।४६।
२१४. वही, ७।४७।
२१५. वही, ७२।७८।
२१६. वही, ७२।७९।
२१७. वही, ७२।७९।
२१८. वही, ७२।७९।
२१९. वही, ७२।८०।
२२०. वही, ७३।१९।
२२१. वही, ७२।८२।
२२२. वही, ७२।८२।
२२३. वही, २।९२।

टिमकार रहित होना,[२२४] नाखून और बालों का नहीं बढ़ना,[२२५] मल और पसीना से रहित शरीर होना, शरीर में दूध के समान रुधिर होना, शरीर का उत्तम संस्थान, उत्तम गंध और उत्तम संहनन तथा अनन्त बल से युक्त होना,[२२६] हित मित प्रिय वचन बोलना,[२२७] परोपकार युक्त होना,[२२८] असाधारण कार्य करना,[२२९] बालक होने पर भी अबालकोचित कार्य करना,[२३०] बालकों जैसी चेष्टा करना तथा मनोहर विनय का धारक होना ये शुभ शकुन माने गये हैं।

स्त्रियों की दाहिनी आँख फड़कना[२३१] तथा पीछे की ओर छींक आना[२३२] अशुभ माना गया है।

स्वप्नों से प्राप्त शकुन—पद्मचरित के तीसरे पर्व में मरुदेवी सोलह स्वप्न देखती है जो इस प्रकार हैं—हाथी, बैल, सिंह, हाथी द्वारा सोने तथा चाँदी के कलशों से अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, (पुन्नाग, मालती कुन्द तथा चम्पा आदि के) पुष्पों से निर्मित मालायें, सूर्य, चन्द्र, मीन युगल, फूलों की मालाओं से सुसज्जित पंचवर्ण के मणियों से भरा हुआ कलश, सरोवर, विशाल सागर, ऊँचा सिंहासन, विमान, सुसज्जित अनेक खण्डों वाला भवन, रत्नों की राशि तथा दक्षिणावर्त निर्धूम अग्नि देखी। मरुदेवी ने इन स्वप्नों का फल जब अपने पति नाभिराय से पूछा तः उन्होंने कहा कि हे देवी ! तुम्हारे गर्भ में त्रिलोकीनाथ ने अवतार लिया है।[२३३]

---

२२४ पद्म० २।९३।
२२५. पद्म० २।९३।
२२६. वही, २।८९।
२२७. वही, २।९०।
२२८. वही, २।८८।
२२९. वही, २।७६, ७।२१५, २१६।
२३०. वही, २।७७।
२३१. वही, ९६।२।
२३२. वही, ७३।१८।
२३३. पद्म० ३।१२४-१५३ चन्द्रप्रभचरित महाकाव्य (यह ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दी का है) में इन सोलह स्वप्नों में से गजेन्द्र का दर्शन तीनों लोकों के एक मात्र अधिपति होने, नरेन्द्र का दर्शन गम्भीरता, सिंह का दर्शन अद्वितीय वीरता, लक्ष्मी का दर्शन इन्द्र पदवी, माला युगल का दर्शन अनन्तकीर्ति, चन्द्रमा का दर्शन प्रसन्नता, सूर्य का दर्शन अज्ञानान्धकार से मुक्ति, मीन युगल का दर्शन सर्व शोकों से मुक्ति, कुम्भ का दर्शन शरीर की शुभ चिह्नों से सम्पन्नता, तालाब का दर्शन तृष्णाहीनता, समुद्र का दर्शन केवलज्ञान प्राप्ति, हेमसिंहासन का दर्शन सिद्धि प्राप्ति, दिव्यविमान का दर्शन स्वर्ग प्राप्ति, रत्नराशि का दर्शन गुणों की प्राप्ति और वह्नि का दर्शन उग्र कर्मों के दहन का सूचक माना गया है।

९५वें पर्व में सीता ने ऐसे दो अष्टापद देखे जिनकी कान्ति शरदऋतु के चन्द्रमा के समान थी, क्षोभ को प्राप्त हुए सागर के समान जिनका शब्द था, कैलासपर्वत के शिखर के समान जिनका आकार था, जो सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थे, जिनकी उत्तम दाढ़ें कान्तियुक्त एवं सफेद थी और जिनकी गर्दन की उत्तम जटायें सुशोभित हो रही थी।[२३३*] यह स्वप्न देखने के बाद दूसरे स्वप्न में उन्होंने देखा कि वे पुष्पक विमान के शिखर से गिरकर पृथ्वी पर आ पड़ी हैं।[२३४] इन स्वप्नों का फल पूछने पर राम ने कहा कि अष्टापद युगल देखने से तू शीघ्र ही दो पुत्र प्राप्त करेगी।[२३५] पुष्पक-विमान से गिरने को यहाँ अनिष्टकारक बतलाया गया है।[२३६]

ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शकुन—ग्रहोपग्रहों से प्राप्त शुभाशुभ स्वप्नों पर अधिक ध्यान दिया जाता था। विवाह की तिथि ज्योतिषी निश्चित करते थे। किसी दिन जबकि सौम्यग्रह सामने स्थित होते, क्रूरग्रह विमुख होते थे और लग्न मंगलकारी होती थी तब प्रस्थान किया जाता था।[२३७] ज्योतिश्चक्र के अनुसार ही जन्म और जीवन के सुख दुःखों का अनुमान होता था।[२३८] एक स्थान मे सूर्य के बिम्ब में कबन्ध (धड़) दिखाई पड़ना और उससे खून की वर्षा होना अत्यन्त अशुभ माना गया है।[२३९]

विविध स्वप्न—आकाश में छत्र का फिरना,[२४०] घण्टा का मधुर शब्द होना,[२४१] भेरी और शंख का शब्द होना[२४२] तथा जीवों मे मैत्री भाव होना[२४३] शुभ माना गया है।

शकुन का कारण—शुभ या अशुभ शकुनों का कारण प्राणियों का पूर्वोपार्जित कर्म है, ऐसी पद्मचरित की मान्यता है। दाहिनी आँख फड़कने के कारण दुःख आगमन की कल्पना कर सीता कहती है कि प्राणियों ने निरन्तर जो कर्म स्वयं उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है, उसका निवारण करना शक्य नही है।[२४४] यहाँ अनुमती नाम की देवी सीता को समझाती हुई कहती है कि पूर्व पर्याय में जो अच्छा बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, देव अथवा ईश्वर कहलाता है। मैं पृथक् रहने वाले कृतान्त के द्वारा इस अवस्था

२३३.* पद्म० ९५।६,७।
२३४. पद्म० ९५।८।
२३५. वही, ९५।९।
२३६. वही, ९५।१०।
२३७. वही, ८।१८, १९।
२३८. वही, १७।३६४-३७७।
२३९. वही, ७।४६।
२४०. वही, ५४।५१।
२४१ वही, ५४।५१।
२४२. वही, ५४।५३।
२४३. वही, २।९४।
२४४. वही, ९६।५।

को प्राप्त कराई गई हूँ (या कराया गया हूँ), ऐसा जो मनुष्य निरूपण करता है वह अज्ञानमूलक है।[२४५]

अपशकुनों की निवृत्ति के उपाय—जिस प्रकार मानव प्रकृति ने शकुनों में विश्वास को जन्म दिया है उसी प्रकार उसने अपशकुनों को निवृत्ति के लिए उपायों की खोज की। पद्मचरित में भी इस प्रकृति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। सीता द्वारा अपशकुन का फल जानने की चेष्टा करने पर कुछ देवियाँ कहती हैं कि अधिक तर्कवितर्क करने से क्या लाभ है? शान्ति कर्म करना चाहिए।[२४६] जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक, अत्युदार पूजन और किमिच्छक दान के द्वारा अशुभ कर्म को दूर हटाना चाहिए।[२४७] देवियों की सलाह पर सीता ऐसा ही करती है।[२४८] कहीं-कहीं पर ऐसे भी उदाहरण आए हैं जहाँ इन अपशकुनों की उपेक्षा दिखलाई गई है। ५७वें पर्व में शूरवीरता के अतिगर्व से मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्धत राक्षसों के समूह अशुभस्वप्नों के दृष्टिगत होते हुए भी युद्ध के लिए बराबर नगरी से बाहर निकलते दिखाये गये हैं।[२४९] सप्तम पर्व में सुमाली अशुभ शकुनों को देखकर माली से युद्ध से वापिस चलने को कहता है तब माली उत्तर देता है कि शत्रु के वध का संकल्प कर तथा विजयी हाथी पर सवार हो जो पुरुषार्थ का धारी युद्ध के लिए चल पडा है वह वापिस कैसे लौट सकता है।[२५०]

आरोग्यशास्त्र—पद्मचरित में विकसित आरोग्य कला के दर्शन होते हैं। एक स्थान पर कहा गया है कि जब रोग उत्पन्न होता है तब उसका सुख से विनाश किया जाता है पर जब वह रोग जड़ बाँधकर व्याप्त हो जाता है तब मरने के बाद ही उसका प्रतीकार हो सकता है।[२५१] एक अन्य स्थान पर औषधि कड़वी होने पर भी उसे ग्रहण करने योग्य बतलाया गया है।[२५२] उस समय के होने वाले रोगों में से कुछ रोगों[२५३] के नाम प्रसंगवश पद्मचरित में आये हैं। जैसे उरोघात (जिसमे वक्षःस्थल, पसली आदि में दर्द होने लगता है) महादाहज्वर (जिसमें महादाह उत्पन्न होता है) लाल परिस्राव (जिसमें मुँह से लार बहने लगती है) सर्वशूल (जिसमें सर्वाङ्ग में पीड़ा होती है), अरुचि (जिसमें भोजनादि की रुचि नष्ट हो जाती है), छर्दि (जिसमें वमन होने लगता

---

२४५. पद्म० ९६।१०।
२४६. पद्म० ९६।१४।
२४७. वही, ९६।१५।
२४८. वही, ९६।१६।
२४९. वही, ५७।७१।
२५०. वही, ७।५०।
२५१. वही, १२।१६१।
२५२. वही, ७३।४८।
२५३. वही, ६४।३५।

है), श्वयथु (जिसमें शरीर पर सूजन आ जाती है), स्फोटक (जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं) तथा वायु रोग ।[२५४]

कामशास्त्र—पद्मचरित के १५वें पर्व मे दस काम वेगो को आधार मानकर अंजना की प्राप्ति के लिए पवनंजय की दशा का वर्णन है। चिन्ता, आकृति देखने की इच्छा, मन्द लम्बी और गरम साँसें निकलना, ज्वर, बेचैनी, अरति (विषयद्वेष), विप्रलाप (बकवाद), उन्मत्तता, मूर्च्छा तथा दुःखसंभार (दुःख का भार) इस प्रकार काम की दस अवस्थायें[२५५] यहाँ गिनाई गई है। बाण ने दस कामदशाओं को आधार मानकर कादम्बरी की विरहावस्था का वर्णन किया है।[२५६] एक अन्य स्थान पर चक्षुःप्रीति, मनःसंग, संकल्प, रात्रिजागरण, कृशता, अरति (विषयद्वेष), लज्जा, त्याग, उन्माद, मूर्छा तथा मरण ये दस कामदशायें निरूपित की गई है।[२५७] जहाँ तक स्त्री पुरुष के प्रेम का सम्बन्ध है रविषेण ने प्रेम की उत्पत्ति पाँच कारणों से कही है। पहले स्त्री पुरुष का संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति से रति उत्पन्न होती है, रति से विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वास से प्रणय उत्पन्न होता है।[२५८]

संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी आदि भाषायें—२४वें पर्व में राजकुमारी केकया के संगीत ज्ञान के प्रसंग मे प्रातिपदिक, उपसर्ग और निपातो मे संस्कार को प्राप्त प्राकृत, संस्कृत और शौरसेनी भाषाओं की स्थिति का संकेत किया गया है।[२५९]

संगीत विद्या—पद्मचरित मे संगीत विद्या सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द आये हैं। इसका विशेष विवरण कला वाले अध्याय में दिया गया है।

नृत्य विद्या—पद्मचरित से नृत्यविद्या की स्थिति पर जो प्रकाश पड़ता है उसका विशेष निरुपण कला वाले अध्याय में किया गया है।

काव्यशास्त्र—पद्मचरित में शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स और शान्त ये ९ रस कहे गये हैं।[२६०] लक्षण, अलंकार,

---

२५४. पद्म० ३७।४१।
२५५. पद्म० १५।९६-१००।
२५६. वासुदेव शरण अग्रवाल : कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३५।
२५७. मल्लिनाथ : मेघदूतटीका, २।३१ (कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३५)
२५८. पद्म० २६।८।
२५९. पद्म० २४।१२।
२६०. वही, २४।२२, २३।

वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इनका भी अवसर के अनुसार यहाँ वर्णन हुआ है।[२६१]

अर्थशास्त्र[२६२]—पद्मचरित के ७३वें पर्व में अर्थशास्त्र का नाम निर्देश हुआ है।

नीतिशास्त्र—सीताहरण के बाद शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियों को बुलाकर मन्दोदरी कहती है कि आप लोग राजा (रावण) से समस्त हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं। रावण समस्त अर्थशास्त्र और सम्पूर्ण नीतिशास्त्र को जानते हैं तो भी मोह के द्वारा क्यों पीड़ित हो रहे हैं।[२६३]

नाट्यशास्त्र—गीत, नृत्य और वादित्र इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है।[२६४]

मान विद्या—मेय, देश, तुला और काल के भेद से मान चार[२६५] प्रकार का होता है।

मेय—प्रस्थ आदि के भेद से जिसके अनेक भेद हैं, उसे मेय कहते हैं।[२६६]

देश—वितस्ति (हाथ से नापना) आदि देशमान कहलाता है।[२६७]

तुलामान—पल आदि (छटाक सेर आदि से नापना) तुलामान कहलाता है।[२६८]

काल मान—समय (घड़ी घण्टा आदि से नापना) कालमान कहलाता है।[२६९]

मान की उत्पत्ति—उपर्युक्त मान आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है।[२७०]

अश्वविद्या—२८वें पर्व में एक मायामयी अश्व के वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मन को अपनी ओर खींचने वाला था, उसके शरीर में अच्छे-अच्छे लक्षण देदीप्यमान हो रहे थे, दक्षिण अंग में महान् आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान था, टापों के

---

२६१. पद्म० १२३।१८६। २६२. पद्म० ७३।२८।

२६३. वही, ७३।२८। २६४. वही, २४।२२।

२६५. 'मेयदेशतुलाकालभेदान्मानं चतुर्विधं'।। पद्म० ४२।६०।

२६६. 'तत्र प्रस्थादिभिर्भिन्नं मेयमानं प्रकीर्तितम् ॥' पद्म० २४।६०।

२६७. 'देशमानं वितस्त्यादि ॥' पद्म० २४।६१।

२६८. 'तुलामानं पलादिकम् ॥' पद्म० २४।६१।

२६९. 'समयादि तु यन्मानं तत्कालस्य प्रकीर्तितम् ॥' पद्म० २४।६१।

२७०. पद्म० २४।६२।

अग्रभाग से वह पृथ्वी को ताडित कर रहा था, उससे ऐसा जान पड़ता था, मानों मृदंग ही बजा रहा हो। साधारण व्यक्ति उस पर चढ़ने में असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था।

उपर्युक्त वर्णन से श्रेष्ठ घोड़े के लक्षणों पर बहुत प्रकाश पड़ता है। इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि उस समय के अश्वपरीक्षक कतिपय लक्षणों को देखकर अश्व की श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता का ज्ञान करते थे। इसका अर्थ यह है कि उस समय अश्वविद्या विकसित अवस्था मे थी।

लोकज्ञता—इसी लोक में जीव की नाना पर्यायों (अवस्थाओं) की उत्पत्ति हुई है, उसी मे यह (जीव) स्थित है और उसी में इसका नाश होता है यह सब जानना लोकज्ञता है। यह लोकज्ञता प्राप्त होना कठिन है।[२७१] लोक की अवस्थिति के विषय मे कहा गया है कि पूर्वापर, पर्वत, पृथ्वी, द्वीप, देश आदि भेदों मे यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है।[२७२]

लोक के प्रकार—आश्रित और आश्रय के भेद से लोक दो प्रकार का है। इनमे से जीव और अजीव तो आश्रित हैं तथा पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं।[२७३]

मन्त्र शक्ति से प्राप्त विद्यायें—लक्ष्मी और बल की वृद्धि के लिए मन्त्र शक्ति से भी अनेक विद्याओं को सिद्ध किया जाता था। इनमें से अनेक युद्ध कार्य में सहायक होती थी। मन्त्र जपने के बाद या दृढ़ निश्चय के कारण उससे पहले ही ये विद्यायें शरीरधारिणी के रूप में हाथ जोड़ कर उपस्थित हो जाया करती थी।[२७४] पश्चात् समय पड़ने पर स्वामी के स्मरण मात्र से अपनी शक्ति के अनुसार यथेष्ट कार्य करती थी। पद्मचरित में इस प्रकार की निम्नलिखित विद्याओं के नाम आये हैं—

सर्वकामान्नदा ७।२६४	नभःसंचारिणी ७।३२५
कामदायिनी (कामदामिनी) ७।३२५	दुर्निवारा ७।३२५
जगत्कम्पा ७।३२५	प्रज्ञप्ति ७।३२५
भानुमालिनी ७।३२५	अणिमा ७।३२६
लघिमा ७।३२६	क्षोभ्या ७।३२६

२७१. तत्र नानाभवोत्पत्तिः स्थितिर्नश्वरता तथा।
ज्ञायते यदिदं प्रोक्तं लोकज्ञत्वं सुदुर्गमम्॥ पद्म० २४।७१।

२७२. पद्म० २४।७२।

२७३. पद्म० २४।७०।

२७४. वही, ७।३१५।

मनःस्तम्भनकारिणी ७।३२६
सुरध्वंसी ७।३२६
वधकारिणी ७।३२६
तपोरूपा ७।३२७
विपुलोदरी ७।३२७
रजोरूपा ७।३२७
वज्रोदरी ७।३२८
अदर्शनी ७।३२८
अमरा ७।३२८
तोयस्तम्भिनी ७।३२८
अवलोकिनी ७।३२९
घोरा ७।३२९
भुजंगिनी ७।३२९
भुवना ७।३२९
दारुणा ७।३२९
भास्करी ७।३३०
ऐशानी ७।३३०
जया ७।३३०
मोचनी ७।३३०
कुटिलाकृति ७।३३०
शान्ति ७।३३१
वशकारिणी ७।३३१
बलोत्सादी ७।३३१
भीति ७।३३१
सर्वाहा ७।३३३
जृम्भिणी ७।३३३
निद्राणी ७।३३३
शत्रुघ्मनी ७।३३४
खगामिनी ७।३३४
प्रतिबोधिनी ६०।६२
उल्का विद्या ५०।३४
सिंहवाहिनी ६८।१३५
बहुरूपिणी ६०।१३५

संवाहिनी ७।३२६
कौमारी ७।३२६
सुविधाना ७।३२७
दहनी ७।३२७
शुभप्रदा ७।३२७
दिनरात्रिविधायिनी ७।३२७
समाकृष्टि ७।३२८
अजरा ७।३२८
अनलस्तम्भिनी ७।३२८
गिरिदारिणी ७।३२८
अरिध्वंसी ७।३२९
धीरा ७।३२९
वारुणी ७।३२९
अवध्या ७।३२९
मदनांशिनी ७।३२९
भयसंभूति ७।३३०
विजया ७।३३०
बन्धनी ७।३३०
वाराही ७।३३०
चित्तोद्भवकरी ७।३३१
कौबेरी ७।३३१
योगेश्वरी ७।३३१
चण्डा ७।३३१
प्रवर्षिणी ७।३३१
रतिसंवृद्धि ७।३३३
व्योमगामिनी ७।३३३
सिद्धार्था ७।३३४
निर्व्याघाता ७।३३४
स्तम्भिनी ५२।६९
अमोघविजया ९।२१०
स्तम्भिनी विद्या ५२।६९
गरुडवाहिनी ६०।१३५

इस प्रकार की विद्याओं को धारण करने वाले विद्याधर कहे गये हैं। इनकी उत्पत्ति नमि विनमि के वंश में कही गई है।[२७५]

अन्य विद्याएँ–उपर्युक्त विद्याओं के अतिरिक्त वज्र (हीरा), मोती (मौक्तिक), वैडूर्य (नीलम), सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र शस्त्रादि रत्नों को उनके लक्षण आदि से अच्छी तरह जानना,[२७६] वस्त्र पर धागे से कढाई का काम करना तथा वस्त्र को अनेक रंगों मे रँगना,[२७७] लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणों को बनाना,[२७८] मूतिकर्म (बेलबूटा खीचना), निधिज्ञान (गड़े हुए धन का ज्ञान), वणिग्विधि (व्यापार कला), जीवविज्ञान,[२७९] मनुष्य घोड़ा आदि की निदान सहित चिकित्सा करना,[२८०] विमोहन[२८१] अर्थात् मूर्च्छा तथा नाना प्रकार के कल्पित मत[२८२] (सांख्य आदि) विद्याओं का उल्लेख पद्मचरित मे किया गया है।

वर्ण व्यवस्था

पद्मचरित के अनुसार कृतयुग के प्रारम्भ में कल्पवृक्षों का अभाव होने पर प्रजा क्षुधा से पीड़ित हो भगवान् ऋषभदेव के पिता नाभिराय के पास गई।[२८३] प्रजा के दुःख को सुनकर नाभिराय ने कहा कि महान् अतिशयों से सम्पन्न ऋषभदेव के पास चलकर हमलोग उनसे आजीविका का उपाय पूछें,[२८४] क्योंकि इस संसार मे उनके समान मनुष्य नहीं है। ऐसा सुनकर प्रजा नाभिराय को साथ लेकर ऋषभदेव के पास गई। प्रजा की प्रार्थना पर ऋषभदेव ने सैकड़ों प्रकार

---

२७५. पद्म० ६।२१० ।

२७६. पद्म० २४।५७ ।

२७७. वही, २४।५८ ।
ललितविस्तर मे 'वस्त्र रागः' अर्थात् कपड़े रंगने को ८६ कलाओं के अन्तर्गत स्थान दिया गया है—हजारी प्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १५६

२७८. पद्म० २४।५९ ।

२७९. वही, २४।६३ ।

२८०. वही, २४।६४ ।

२८१. पद्मचरित में मूर्च्छा के तीन भेद—मायाकृत, पीडा अथवा इन्द्रजालकृत और मन्त्र तथा औषधि आदि द्वारा कृत गिनाये है। पद्म० २५।६५ ।

२८२. पद्म० २४।६६ ।

२८३. पद्म० ३।२३६ ।

२८४. वही, ५।२४५-२४६ ।

की शिल्प कलाओं का उपदेश दिया। उन्होंने नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना और मकान आदि के निर्माण की कला प्रजा को सिखाई।[२८५]

क्षत्रियादि त्रिवर्ण की प्रसिद्धि—भगवान् ऋषभदेव ने जिन पुरुषों को विपत्तिग्रस्त मनुष्य की रक्षा करने में नियुक्त किया था वे अपने गुणों के कारण लोक में क्षत्रिय इस नाम से प्रसिद्ध हुए।[२८६] वाणिज्य, खेती, गोरक्षा आदि के व्यापार में जो लगाये गये थे वे लोक में वैश्य कहलाये।[२८७] जो नीच कार्य करते थे तथा शास्त्र से दूर भागते थे, उन्हें शूद्र संज्ञा प्राप्त हुई। शूद्रों के प्रेष्य आदि अनेक भेद थे।[२८८]

ब्राह्मण वर्ण और उसका इतिहास—एक बार अयोध्या नगरी के समीप भगवान् ऋषभदेव पधारे। उन्हें आया जानकर भरत, मुनियों के उद्देश्य से बनवाया हुआ नाना प्रकार का उत्तमोत्तम भोजन नौकरों से लिवाकर भगवान् के पास पहुँचे। आहार के लिए प्रार्थना करने पर ऋषभदेव ने कहा कि जो भिक्षा मुनियों के उद्देश्य से तैयार की जाती है वह उनके (ऋषभदेव के) योग्य नहीं है, मुनिजन उद्दिष्ट (विशेष उद्देश्य पूर्वक तैयार किया हुआ) भोजन ग्रहण नहीं करते। ऋषभदेव के ऐसा कहने पर भरत ने इस भोजन सामग्री से गृहस्थ का व्रत धारण करने वाले पुरुषों को भोजन कराना चाहा। सम्राट् ने आंगन में बोए हुए जौ, धान, मूँग, उड़द आदि के अंकुरों से सम्यग्दृष्टि पुरुषों की छांट कर ली तथा उन (सम्यग्दृष्टि) पुरुषों को, जिनमें रत्न पिरोया गया था ऐसे सुवर्णमय सुन्दर सूत्र के चिन्ह से चिन्हित कर भवन के भीतर प्रविष्ट करा लिया और उन्हें इच्छानुसार दान दिया। भरत के द्वारा सत्कार पाकर वे ब्राह्मण गर्वयुक्त हो समस्त पृथ्वी पर फैल गए। एक बार भगवान् ऋषभदेव ने अपने समवसरण में कहा कि भरत ने जिन ब्राह्मणों की रचना की है वे वर्द्धमान तीर्थंकर के बाद पाखण्डी एवं उद्धत हो जावेगे। ऐसा सुनकर भरत कुपित होकर उनको मारने के लिए उद्यत हुए। वे सब ब्राह्मण भयभीत होकर ऋषभ-

---

२८५. शिल्पानां शतमुद्दिष्टं नगराणां च कल्पनम्।
ग्रामादिसन्निवेशाश्च तथा वेश्मादिकारणम्॥ पद्म०, ३।२५५

२८६. क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः।
क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धिं गुणतो गताः॥ पद्म० ३।२५६

२८७. वाणिज्यकृषि गोरक्षाप्रभृतौ ये निवेशिताः।
व्यापारे वैश्यशब्देन ते लोके परिकीर्तिताः॥ ३।२५७

२८८. ये तु श्रुताद् द्रुतिं प्राप्ता नीचकर्मविधायिनः।
शूद्रसंज्ञामवापुस्ते भेदैः प्रेष्यादिभिस्तथा॥ पद्म० ३।२५८

देव की शरण में गये।[२८९] भगवान् ऋषभदेव ने हे पुत्र ! इनका हनन मत करो (मां हननं कार्षीः) यह शब्द कहकर इनकी रक्षा की थी इसलिए आगे चलकर ये माहन (ब्राह्मण) इस प्रसिद्धि को प्राप्त हो गये।[२९०]

वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं—ब्राह्मणादि की उपर्युक्त व्युत्पत्ति के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आधार जन्मना नहीं, प्रत्युत् कर्मणा है, ऐसा सिद्ध होता है। रविषेण के अनुसार कोई भी जाति निन्दनीय नही है, गुण ही कल्याण करने वाले है। यही कारण है कि व्रत धारण करने वाले चाण्डाल को भी गणधरादि देव ब्राह्मण कहते हैं।[२९१] विद्या और विनय ने सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल के विषय में पण्डित जन समदर्शी होते हैं।[२९२] ब्राह्मणादि चार वर्ण और चाण्डाल आदि विशेषणों का जितना वर्णन है वह सब आचार भेद से ही ससार मे प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है।[२९३]

जातिवाद का खण्डन—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप मे जाति के जो चार भेद कहे हैं वे अयुक्तिपूर्ण और अहेतुक है। यदि कहा जाय कि वेद वाक्य और अग्नि के संस्कार से दूसरा जन्म होता है, यह भी ठीक नही है।[२९४]

---

२८९. पद्म० ४।१९१-१२१

२९०. वही, ४।१२२। माहण (ब्राह्मण) की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो कथा यहाँ दी गई है उससे पद्मचरित के प्राकृत स्रोत का अनुमान होता है, क्योंकि माहण शब्द प्राकृत का है और उसी की एक व्युत्पत्ति प्राकृत उक्ति माहण (मत मारो) से सार्थक बैठ सकती है जैसा कि प्राकृत पउमचरिय में पाया जाता है। संस्कृत में माहण शब्द को कहीं स्वीकार नहीं किया गया है और न रविषेण के सम्प्रदाय व परम्परा में इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। इसके विपरीत प्राकृत जैन आगम ग्रन्थों में इस शब्द का बहुत अधिक प्रयोग पाया जाता है। पद्मपुराण (सम्पादकीय पृ० ६) भारतीय ज्ञानपीठ।

२९१. पद्म० ११।२०३। २९२. वही, ११।२०४।

२९३. वही, ११।२०५।

२९४. पद्म० ११।१९४।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौंजिबन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्॥ मनु० २।१६९
तत्र यद् ब्राह्मण जन्मास्य माजीबन्धनचिन्हितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥ मनु० २।१७०

इसके लिए युक्ति यह है कि जहाँ-जहाँ जाति भेद देखा जाता है वहाँ-वहाँ शरीर की विशेषता अवश्य पायी जाती है जिस प्रकार कि मनुष्य, हाथी, गधा, गाय, घोड़ा आदि में पाई जाती है।[२९५] इसके अतिरिक्त अन्य जातीय पुरुष के द्वारा अन्य जातीय स्त्री में गर्भोत्पत्ति देखी जाती है इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणादि में जाति वैचित्र्य नहीं है।[२९६] इसके उत्तर में यदि कहा जाय कि गधे के द्वारा घोड़ी में गर्भोत्पत्ति देखी जाती है, इसलिए उक्त युक्ति ठीक नहीं है ? तो ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि एक खुर आदि की अपेक्षा उनमें समानता पाई जाती है अथवा दोनों में भिन्न जातीयता ही है यदि ऐसा पक्ष है तो दोनों की जो सन्तान होगी वह विसदृश ही होगी जैसे कि गधा और घोड़ी के समागम से जो सन्तान होगी वह न घोड़ा ही कहलावेगी और न गधा ही किन्तु खच्चर नाम की धारक होगी। किन्तु इस प्रकार की सन्तान की विसदृशता ब्राह्मणादि में नहीं देखी जाती। इससे सिद्ध होता है कि वर्ण व्यवस्था गुणों के आधीन है, जाति के आधीन नहीं है।[२९७]

जो यह कहा गया है कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति, भुजा से क्षत्रिय की उत्पत्ति, जंघा से वैश्य की उत्पत्ति और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई, [२९८] वह कथन ठीक नहीं है। यथार्थ में समस्त गुणों के वृद्धिंगत होने के कारण ऋषभदेव ब्रह्मा कहलाते हैं, और जो सत्पुरुष उनके भक्त हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं। क्षत अर्थात् विनाश से त्राण अर्थात् रक्षा करने के कारण क्षत्रिय कहलाते हैं, शिल्प मे प्रवेश करने से वैश्य कहे जाते हैं और श्रुत अर्थात् प्रशस्त आगम से जो दूर रहते हैं वे शूद्र कहलाते हैं।[२९९]

ब्राह्मण कौन ?—पद्मचरित के अध्ययन से विदित होता है कि उस काल तक ब्राह्मण लोग अपने वास्तविक ब्राह्मणत्व को भूल चुके थे। यही कारण है कि ब्राह्मणत्व के प्रति आदर भाव दिखाते हुए भी, जो कर्म से ब्राह्मण नहीं हैं उनकी रविषेण ने पर्याप्त भर्त्सना की है। उनके अनुसार ब्राह्मण वे हैं जो

श्रुति की आज्ञा से द्विज के प्रथम माता से जन्म, दूसरे मौञ्जीबन्धन, तीसरे यज्ञ की दीक्षा में ये तीन जन्म होते हैं। इन पूर्वोक्त तीन जन्मों मे वेद-ग्रहणार्थ उपनयन संस्काररूप जो जन्म होता है उस जन्म मे उस बालक का माता सावित्री और पिता आचार्य कहलाते हैं।

'शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदेन जायते ।।' मनुस्मृति २।१७२

२९५. पद्म० ११।१९५। २९६. पद्म० ११।१९६।

२९७. वही, ११।१९७-१९८। २९८. वही, ११।१९९। पुरुषसूक्त १२

२९९. वही, ११।२०१, २०२।

अहिंसा व्रत धारण करते हैं,[300] महाव्रत रूपी लम्बी चोटी धारण करते हैं, ध्यान रूपी अग्नि में होम करते हैं तथा शान्त हैं और मुक्ति के सिद्ध करने में तत्पर रहते हैं।[301] इसके विपरीत जो सब प्रकार के आरम्भ में प्रवृत्त हैं, निरन्तर कुशील में लीन रहते हैं तथा क्रियाहीन हैं[302] वे केवल ब्राह्मण नामधारी ही हैं, वास्तविक ब्राह्मणत्व उनमें कुछ भी नहीं है।[302*] ऋषि, संयत, धीर, क्षान्त, दान्त और जितेन्द्रिय मुनि ही वास्तविक ब्राह्मण हैं।[303]

भृत्यवृत्ति और उसकी निन्दा—पद्मचरित के अध्ययन से ऐसा विदित होता है कि उस समय तक भृत्यवृत्ति बहुत ही निन्दित, गर्हित और दुःखकारक मानी जाने लगी थी। यही कारण है कि नीलांजना के नृत्य को देखने के बाद ऋषभदेव के वैराग्य में इस भावना को मूल बतलाया गया है। वे कहते हैं कि इस संसार में कोई तो पराधीन होकर दासवृत्ति को प्राप्त होता है और कोई गर्व से स्खलित वचन होता हुआ उसे आज्ञा प्रदान करता है।[304] शूद्रों की भी उस समय ठीक स्थिति नहीं थी इसी कारण उन्हें नीच कार्य करने वाला बतलाकर उनके प्रेष्य आदि अनेक भेद किए गये।[305] हिंसक जीवों से भरे हुए वन में छोड़कर सीता को दयनीय अवस्था में देख कृतान्तवक्र सेनापति भृत्यवृत्ति की बहुत अधिक निन्दा करता है। उसके अनुसार जिसमें इच्छा के विरुद्ध चाहे जो करना पड़ता है, आत्मा परतंत्र हो जाती है और क्षुद्र मनुष्य हो जिसकी सेवा करते हैं ऐसी लोकनिन्द्य भृत्यवृत्ति (दासवृत्ति) को धिक्कार है।[306] जो यन्त्र की चेष्टाओं के समान है तथा जिसकी आत्मा निरन्तर दुःख उठाती है ऐसे सेवक की अपेक्षा कुक्कुर का जीवन बहुत अच्छा है।[307] सेवक कचड़ाघर के समान है जिस प्रकार लोग कचड़ाघर मे कचड़ा डालकर पीछे उससे अपना चित्त हटा लेते है उसी प्रकार लोग सेवक से काम लेकर पीछे उससे चित्त हटा लेते हैं। जिस प्रकार कचड़ाघर निर्माल्य अर्थात् उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता

---

३००. पद्म० १०९।८०।
३०१. पद्म० १०९।८१।
३०२. वही, १०९।८२।
३०२ * वही, १०९।८३।
३०३. वही, १०९।८४।
३०४. वही, ३।२६५।
३०५. वही, ३।२५८।
३०६. धिग् भृत्यतां जगन्निन्द्यां यत् किंचन विधायिनीम्।
परायत्ती कृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम्॥ पद्म० ९७।१४०।
३०७. यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः।
भृत्यस्य जीविताद् दूरं वरं कुक्कुरजीवितम्॥ पद्म० ९७।१४१।

है उसी प्रकार सेवक भी स्वामी की उपभुक्त वस्तुओं को धारण करता है।[३०८] जो अपने गौरव को पीछे कर देता है तथा पानी प्राप्त करने के लिए भी जिसे झुकना पड़ता है इस प्रकार तुला यन्त्र की उपमा धारण करने वाले भृत्य का जीवित रहना धिक्कारपूर्ण है।[३०९] जो उन्नति, लज्जा, दीप्ति और स्वयं निज की इच्छा से रहित है तथा जिसका स्वरूप मिट्टी के पुतले के समान क्रियाहीन है ऐसे सेवक का जीवन किसीको प्राप्त न हो।[३१०] जो स्वयं शक्ति से रहित है, अपना मांस भी बेचता है, सदा मद से शून्य है और परतन्त्र है ऐसे भृत्य के जीवन को धिक्कार है।[३११]

विभिन्न जातियाँ या वर्ग—पद्मचरित में विभिन्न जातियाँ या वर्गों के नाम आए हैं। ये जातियाँ या वर्ग निम्नलिखित हैं—

सेवक[३१२]—सेवा करने वाले को सेवक कहते थे।

धानुष्क[३१३]—धनुष धारण करने वाला धानुष्क कहलाता था।

क्षत्रिय[३१४]—जो पुरुष आपत्ति से ग्रस्त मनुष्य की रक्षा करते थे।

धार्मिक—धर्म सेवन करने वाला[३१५] व्यक्ति धार्मिक कहलाता था।

ब्राह्मण—ब्रह्मचर्य धारण करने वाला[३१६] ब्राह्मण कहलाता था।

श्रमण—जो राजा राज्य छोड़कर तप के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ते थे वे श्रमण कहलाते थे। क्योंकि श्रम करे सो श्रमण और तपश्चरण ही श्रम कहा जाता है।[३१७]

---

३०८. संकारकूटकस्यैव पश्चान्निर्वृत्त चेतसः।
निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम्॥ पद्म० ९७।१४४।

३०९. पश्चात्कृतगुरुत्वस्य तोयार्थमपि नामिनः।
तुलायन्त्रसमानस्य धिग्भृत्यस्याऽसुधारणम्॥ पद्म० ९७।१४५।

३१०. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्म समात्मनः॥ पद्म० ९७।१४६।

३११. निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्याऽसुधारणम्॥ पद्म० ९७।१४८।

३१२. सेवकः सेवया युक्तः॥ पद्म० ६।२०८।

३१३. धानुष्को धनुषो योगाद्॥ पद्म० ६।२०८।

३१४. पद्म० ३।२५६।

३१५. धार्मिको धर्मसेवनात्। पद्म० ६।२०९।

३१६. ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यतः। पद्म० ६।२०९।

३१७. परित्यज्य नृपो राज्यं श्रमणो जायते महान्।
तपसा प्राप्तसम्बन्धं तपो हि श्रम उच्यते॥ पद्म० ६।२११।

विद्याधर—नमि और विनमि के वंश में उत्पन्न हुए पुरुष विद्याधारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते थे।[३१८] इन्हें खेचर भी कहते थे।[३१९]

गोपाल[३२०]—जो गायों की रक्षा, देखरेख वगैरह करते थे।

पालक[३२१]—जो जिसका पालन करते थे उसके पालक कहे जाते थे। जैसे अश्वपालक (अश्वपाल) गोपालक (गोपाल) उष्ट्रपालक (उष्ट्रपाल)। इसीलिए रविषेण ने इनका सामान्य नाम पालक दिया है।

वेश्या[३२२]—जो रूप यौवन द्वारा जीविकोपार्जन करती थी।

लासक[३२३]—जो नृत्य द्वारा जीविकोपार्जन करते थे।

शस्त्रि[३२४]—जो शस्त्र धारण करते थे।

अर्थि[३२५]—जो दूसरे से याचना करते थे।

विद्यार्थी[३२६]—जो विद्योपार्जन करते थे।

धूर्त[३२७]—जो छल कपट और धूर्तता द्वारा अर्थ का अर्जन करते थे।

गीतशास्त्र कौशलकोविद[३२८]—जो संगीतशास्त्र के विद्वान् थे।

विज्ञान ग्रहणोद्युक्त[३२९]—जो कि ज्ञान के ग्रहण करने में उद्यत रहते थे।

शरणप्राप्त[३३०]—जो शरण मे आकर रहते थे।

सज्जन[३३१]—जो साधुओं का संग करते थे।

वार्तिक[३३२]—समाचार प्रेषक।

विदग्ध[३३३]—चतुर पुरुष।

विट[३३४]—वेश्याओं के साथ रहने वाले।

मार्गवर्ति[३३५]—सही मार्ग पर चलने वाले।

चारण[३३६]—जो राजसभा मे या जनता के सामने गीत गाया करते थे।

---

३१८. .... नमेश्च विनमेस्तथा।
कुले विद्याधरा जाता विद्याधरणयोगतः ॥ पद्म० ६।२१०।

३१९. पद्म० ८०।५०।
३२०. पद्म० २।१०।
३२१. वही, २।२४।
३२२. वही, २।३९।
३२३. वही, २।३९।
३२४. वही, २।४०।
३२५. वही, २।४०।
३२६. वही, २।४०।
३२७. वही, २।४०।
३२८. वही, २।४१।
३२९. वही, २।४१।
३३०. वही, २।४२।
३३१. वही, २।४२।
३३२. वही, २।४३।
३३३. वही, २।४३।
३३४. वही, २।४३।
३३५. वही, २।४३।
३३६. वही, २।४४।

कामुक[३३७]—कामी पुरुष।

सुखी[३३८]—जिनके समस्त सांसारिक कार्य सिद्ध हो जाया करते थे।

मातंग[३३९]—चाण्डाल को कहते थे। पद्मचरित में चाण्डाल[३४०] नाम भी आया है।

वन्दि[३४१]—जिनको किसी अपराध के कारण कारागार में बन्द रखा जाता था।

रजक[३४२]--जो अनेक प्रकार का शब्द करता हुआ शिलातल पर वस्त्र पछाड़ता था अर्थात् कपड़े साफ करने का कार्य करता था।

ऋत्विक्[३४३]--यज्ञ के लिए आमन्त्रित तथा तत्कार्य करने मे निष्णात ब्राह्मण ऋत्विज कहलाता था। ये चार होते थे और एक-एक वेद के साथ सम्बद्ध होकर उसकी सहायता से अपना यज्ञीय कर्म निष्पादन करते थे।

तापस—जो ब्राह्मण घरबार छोड़कर (तपस्या के हेतु) वन मे रहते थे और कन्दमूल आदि भक्षण करते थे। इनके साथ इनकी पत्नी भी रहती थी।[३४४]

पुरोहित[३४५]—जो राजा के धार्मिक कार्यों में योग देता था।

पुलिन्द[३४६]--एक प्रकार की असभ्य जंगली जाति को पुलिन्द कहते थे।

घोष[३४७]--अहीरों अथवा गोपालकों की बस्ती को घोष कहते हैं। घोष शब्द संस्कृत साहित्य मे कई स्थान पर आया है! गंगायां घोषः का उदाहरण तो सर्वत्र प्रसिद्ध है।

लुब्धक[३४८]—कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में शकुनि लुब्धक शब्द आया है, जिसका अर्थ चिड़ियों को मारने वाला शिकारी है। शकुनि लुब्धक का ही संक्षिप्त रूप लुब्धक हो गया। पद्मचरित मे लुब्धक शब्द का इसी अर्थ मे प्रयोग हुआ है। ये लुब्धक पक्षियों को पकड़कर बेचा भी करते थे।

श्रेष्ठि—महाजनों के चौधरी या अगुआ पुरुष को प्राचीन काल से ही श्रेष्ठि

---

३३७. पद्म० २।४४।
३३८. पद्म० २।४४।
३३९. वही, २।४५।
३४०. वही, १४।२७।
३४१. वही, ३।१४९।
३४२. वही, ११।१०१।
३४३. वही, ११।१०७।
३४४. वही, ११।११७, ११८।
३४५. वही, ४१।११५।
३४६. वही, ४१।३।
३४७. वही, ३३।५२।
३४८. वही, ३९।१३८।

कहते थे । इसका नगर में वही स्थान होता था जो मुगल काल में नगर सेठ का। राजदरबार में उसका बड़ा मान था । वह व्यापारियों का प्रतिनिधि होता था । जातकों के कथानुसार उसका पद पुश्तैनी होता था । वह अपने सरकारी पद से नित्य राजदरबार में उपस्थित होता था । भिक्षु (साधु) बनते समय अथवा अपना धन दूसरों को बाँटते समय उसे राजा की आज्ञा लेनी पड़ती थी । महाजन बहुधा रईस होते थे और उनके अधिकार में दास, घर और गोपालक होते थे ।[३४९]

गोप[३५०]—गायों के रक्षक को गोप कहा जाता था ।

सूद[३५१]—रसोइया ।

कैवर्त[३५२]—कहार ।

पीठमर्द[३५३]—पद्मचरित के चतुर्दश पर्व में दिन में भोजन करने का फल राजा तथा महामन्त्री होने के साथ-साथ पीठमर्द होना भी लिखा है ।[३५४] आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नायक के बहुदूरव्यापी प्रसङ्ग प्राप्त चरित में नायक के सामान्य गुणों से कुछ न्यून गुण वाले नायक के सहायक को पीठमर्द कहा है । साहित्य दर्पण ३।३९

लेखवाह[३५५]—जो पत्र ले जाने का कार्य करते थे । इस कार्य को कभी-कभी विद्याधर तक करते थे ।[३५६]

तक्ष (तक्षक)—बढ़ई का काम करने वाले को तक्ष कहते थे । यह शिल्पियों का अग्रणी था तथा युद्ध मे सवारी के लिए रथ, माल ढोने के लिए छकड़े बनाता था जिसकी छत छदिस् कहलाती थी । वह परशु और बसूले से काम करता था और सुन्दर नक्काशी का भी काम करता था ।[३५७]

नट[३५८]—जो तरह-तरह का वेष धारण [३५९] कर विचित्र प्रकार की चेष्टायें करता था ।[३६०] पद्मचरित में कहा गया है कि संसारी प्राणियों की अनेक जन्म धारण करने के कारण नट के समान विचित्र चेष्टायें होती हैं ।[३६१]

---

३४९. डॉ० मोतीचन्द्र : सार्थवाह पृ० ६५, ६६ ।
३५०. पद्म० ३४।६० ।
३५१. पद्म० २२।१३४ ।
३५२. वही, १४।२७ ।
३५३. वही, १४।२८७ ।
३५४. वही, १२।८२ ।
३५५. वही, १२।८२ ।
३५६. वही, १२।८१ ।
३५७. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० १४० ।
३५८. पद्म० ९१।३९ ।
३५९. पद्म० १२।३१० ।
३६०. वही, ८५।९२ ।
३६१. वही, ८५।९२ ।

उपाध्याय—यह बालकों को शिक्षा देता था।[३६२]

कुम्भकार[३६३]—यह मिट्टी के बर्तन (घड़े आदि) बनाने का काम करता था।

धात्री[३६४]—राजघराने में दाय या धाय का कार्य करने वाली स्त्री को धात्री कहते थे। इसका भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता था। राजकन्या के स्वयंवर के समय यह दाहिने हाथ में स्वर्ण की छड़ी लेकर कन्या के साथ चलती हुई क्रम-क्रम से उपस्थित कुमारों या राजाओं का परिचय देती थी।[३६५]

कंचुकी[३६६]—अन्तःपुर में रहने वाले वृद्ध, गुणवान् ब्राह्मण को जो सब कार्यों के करने में कुशल होता है, उसे कंचुकी कहते हैं।[३६७] पद्मचरित के अष्टम पर्व में जलक्रीडा के समय राजकन्याओं की रक्षा के लिए साथ मे कंचुकी के जाने का उल्लेख है।[३६८] अट्ठाईसवें पर्व में सीता स्वयंवर के अवसर पर कंचुकी आगत राजकुमारों या राजाओं का परिचय देता है।[३६९] उन्नीसवें पर्व में राजा दशरथ सुप्रभा के लिए कंचुकी के हाथ से जिनेन्द्र भगवान् का गंधोदक भेजते हैं।[३७०] इस पर दशरथ की अन्य रानियाँ सुप्रभा को बहुत सौभाग्यशाली मानती हैं, क्योंकि उन सबके लिए दशरथ ने दासियों के हाथ से गंधोदक भेजा था।[३७१]

भाण्डागारिक[३७२] (भण्डारी)—यह राजा के भण्डार का स्वामी होता था।

दासी—जो स्त्रियाँ राजा के अन्तःपुर में सेवा का कार्य करती थीं। पद्मचरित मे इनको निन्दनोय बतलाया गया है।[३७३]

विदूषक[३७४]—जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि

---

३६२. पद्म० २५।४१। ३६३. पद्म० ५।२८७।
३६४. वही, ६।३८१। ३६५. वही, ६।३८१-४२२।
३६६. वही, ८।१११।
३६७. अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते॥ (नाट्यशास्त्र)
३६८. पद्म० ८।१११।
३६९. वही, २८।२१०-२२३। ३७०. पद्म० २९।१२।
३७१. वही, २९।३५, ३६। ३७२. वही, २९।१७।
३७३. वही, २९।३५। ३७४. वही, १।२८।

के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है और हास्य आदि के कार्य को ठीक जानता है उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं।[३७५]

चोर[३७६]—जो दूसरे का धन चुराने का काम करते थे।

शबर[३७७]—जो जंगल मे रहते थे और शिकार आदि किया करते थे उन्हें शबर कहा जाता था। पद्मचरित के ३२वें पर्व में इनका शर्वरी नदी के किनारे रहने का उल्लेख मिलता है।[३७८] इसी आधार पर कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में इनका निवास शर्वरी नदी के किनारे रहा होगा, इस कारण इनका नाम शबर पड़ गया।

ताम्बूलिक[३७९]—पान बेचने वाले को ताम्बूलिक कहते थे।

सूपकारी[३८०]—रसोइन अथवा सूप (दाल) बनाने वाली।

निषाद[३८१]—जंगल मे रहने वाली और शिकार पर निर्भर करने वाली एक जाति विशेष को निषाद कहते थे। हरिण का शिकार इनमें विशेष प्रचलित था।

व्याध[३८२]—जंगल में रहने वाले शिकारियों की एक जाति विशेष।

भिषक्[३८३]—वैद्य।

कपाटजीवि[३८४]—जो कपाट (किवाड़) बनाकर जीविका करते थे।

द्राग्[३८५]—द्राग् के लिए पद्मचरित में कोषाध्यक्ष[३८६] शब्द भी आया है। राजकीय कोष की सुरक्षा का यह सबसे बड़ा अधिकारी होता था।

प्राग्रहर[३८७]—मुखिया या प्रमुख पुरुष को कहा जाता था।

म्लेच्छ—पद्मचरित के २७वें पर्व से म्लेच्छों के विषय में बहुत कुछ जानकारी मिलती है। इसमे कहा गया है कि विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण और कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर बीच-बीच में अन्तर देकर बहुत से देश स्थित हैं।[३८८]

---

३७५. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥ —साहित्यदर्पण ३।४२।

३७६. पद्म० २।१७६। ३७७. पद्म० २।१६९।
३७८. वही, ३२।२९। ३७९. वही, ८०।१७८।
३८०. वही, ८०।१९८। ३८१. वही, ८५।८०।
३८२. वही, ८५।७९। ३८३. वही, ८९।५३।
३८४. वही, ९१।२४। ३८५. वही, ९१।१०५।
३८६. वही, ९९।१०७। ३८७. वही, ९६।३६।
३८८. वही, २७।५।

उन देशों में एक अर्धवर्बर नाम का देश है जो असंयमी जनों के द्वारा मान्य है, धूर्तजनों का उसमें निवास है तथा वह अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगों से व्याप्त है।[३८९] उस देश में यमराज के नगर के समान मयूरमाल नाम का नगर है। उसमें आन्तरंगतम नाम का राजा राज्य करता था। पूर्व से लेकर पश्चिम तक की लम्बी भूमि में कपोत, शुक, काम्बोज, मंकन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकार के शस्त्र तथा अनेक प्रकार के भीषण अस्त्रों से युक्त हो आन्तरंगतम की उपासना करते थे।[३९०] दया से रहित हो आर्य देशों को उजाड़ते हुए वे जनक के देश को उजाड़ने के लिए उद्यत हुए।[३९१] तब जनक ने राजा दशरथ को बुलाया। दशरथ की आज्ञा से राम-लक्ष्मण ने उनको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। पराजित होकर जो कुछ म्लेच्छ बचे थे वे सह्य और विन्ध्य पर्वतों पर रहने लगे।[३९२] इन म्लेच्छों की वेषभूषा तथा आचार वगैरह के विषय में कहा गया है कि उनमें से कितने हो लाल रंग का शिरस्त्राण (साफा) धारण किए थे, कोई छुरी हाथ में लिए थे।[३९३] कोई मसले हुए अंजन के समान काले थे। कोई सूखे पत्तों के समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़ के समान थे और कोई लाल रंग के थे।[३९४] वे अधिकतर कटिसूत्र मे मणि बाँधे हुए थे, पत्तों के वस्त्र पहिने हुए थे, विभिन्न धातुओं से उनके शरीर लिप्त थे, फूल की मंजरियों से उन्होंने शेखर (सेहरा) बना रखा था।[३९५] कौड़ियों के समान उनके दांत थे, बड़े मटका (पिठर) के समान उनके पेट थे और सेना के बीच वे फूले हुए कुटज वृक्ष के समान लगते थे।[३९६] उनके हाथों में भयंकर शस्त्र थे, उनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे तथा वे असुर के समान जान पड़ते थे।[३९७] वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओं का मांस खाने वाले थे, मूढ थे, पापी थे, बिना बिचारे सहसा काम करने वाले थे।[३९८] वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कंक आदि के चिह्न उनकी पताकाओं मे थे। अनेक प्रकार के वाहन, चद्दर, छत्र आदि उनके साथ थे[३९९] युद्ध मे पराजय के बाद भयभीत होकर कन्द, मूल और फल खाकर वे अपना निर्वाह करने लगे और उन्होंने अपनी दुष्टता छोड़ दी।[४००]

---

३८९. पद्म० २७।६।
३९०. पद्म० २७।८-९।
३९१. वही, २७।१०-११।
३९२. वही, पर्व २७।
३९३. वही, २७।६७।
३९४. वही, २७।६८।
३९५. वही, २७।६९।
३९६. वही, २७।७०।
३९७. वही, २७।७१।
३९८. वही, २७।७२।
३९९. वही, २७।७३।
४००. वही, २७।२८।

वस्त्र और आभूषण

किसी भी देश की संस्कृति को भली भाँति समझने के लिए वहाँ की वेश-भूषा एवं आभूषण आदि का भी ज्ञान करना परमावश्यक है। पद्मचरित में इस दृष्टि से उपयोगी सामग्री मिलती है, जिसका विवरण निम्नलिखित है—

वस्त्र—पद्मचरित में प्रच्छदपट[४०१] (चादर), अम्बर[४०२], परिकर[४०३] (कमरबन्द), उत्तरीय[४०४] (दुपट्टा), अंशुक[४०५], पत्र[४०६] (वृक्ष के पत्ते), वल्कल[४०७] (छाल के बने वस्त्र), चर्मणिवास:[४०८] (चमड़े के वस्त्र), नाना चित्रों को धारण करने वाले बादली रंग के वस्त्र[४०९] (मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च), कुशा के वस्त्र (कुशचीवर)[४१०], पट्टांशुक[४११], कंचुक[४१२] (चोली), दुकूल पट,[४१३] गल्लक[४१४] (गद्दा), उपधान[४१५] (तकिया), वस्त्र,[४१६] स्वच्छ, लम्बे, विचित्र और जल की सदृशता को धारण करने वाले वस्त्र (स्वच्छायतविचित्रेण पयः-सादृश्यधारिणा अंशुकेन),[४१७] कुशल शिल्पी के द्वारा रँगा वस्त्र[४१८] (विशिष्ट शिल्पिना रक्तं वस्त्रं), काषाय वाससी[४१९] (गेरुआ वस्त्र), लाल रंग का साफा (रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः[४२०]), कटिसूत्र[४२१] तथा पत्र चीवर[४२२] आदि वस्त्रों का उल्लेख मिलता है।

अंशुक—बृहत् कल्पसूत्र भाष्य[४२३] की टीका में इसे कोमल और चमकीला रेशमी कपड़ा कहा गया है। निशीथ[४२४] में इस शब्द की लम्बी-चौड़ी व्याख्या

४०१. पद्म० १६।२४०। ४०२. पद्म० २।७, ३।२१३।
४०३. वही, २७।३१। ४०४. वही, ३।१९८।
४०५. वही, ३।१९८। ४०६. वही, ३।२९६।
४०७. वही, ३।२९६। ४०८. वही, ३।२९६।
४०९. वही, ४०।११। ४१०. वही, ३।२९७।
४११. वही, ३।१२२। ४१२. वही, २।४६।
४१३. वही, ७१।७१। ४१४. वही, ७१।७२।
४१५. वही, ७१।७२। ४१६. वही, १०२।१०३।
४१७. वही, ७३।३३। ४१८. वही, ४९।४५।
४१९. वही, ३।२९३ ४२०. वही, २७।६७।
४२१. वही, २७।६९। ४२२. वही, २७।६९।
४२३. बृहत् कल्पसूत्र भाष्य ४।३६-६१।
४२४. निशीथ ४ पृ० ४६७ निशीथ में दुकूल की कुछ और ही व्याख्या है। दुगुल्लो रुक्खो तस्स वागोघेत्तुं उदूखले कुट्टइज्जति पाणि एण ताव जाव भूसी भूतो ताहे कच्चति दुगुल्लो अर्थात् दुकूल वृक्ष की छाल लेकर पानी

है—'अंसुयाणि कणगकंतानि, कणगखसियानि, कणगचित्ताणि, कणगविचित्ताणि अर्थात् अंशुक में तारबीन का काम होता था, अलंकारों में जरदोजी (खचितानि) का काम तथा उसमें सोने के तार से चित्र विचित्र नक्काशियाँ बनी हुई थीं। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि अंशुक किमखाब अथवा पोत जैसा कोई कपड़ा था। आचारांग में भी इसका उल्लेख है।[४२५] नायाधम्म कहाओ[४२६] में राजकुमार गौतम को अंशुक की धोती और दुपट्टा जो रंगीन, महीन और मुलायम था और जिनके किनारों पर सुनहरा काम था, पहिले बतलाया गया है। बाण ने अंशुक वस्त्र को अत्यन्त ही झीना और स्वच्छ वस्त्र माना है।[४२७] पद्मचरित में उत्तरीय वस्त्र के प्रसङ्ग मे वस्त्र अर्थ का द्योतन कराने के लिए अंशुक शब्द का प्रयोग हुआ है।[४२८] यहाँ पर इसके ऊपर कसीदा के अनेक फूल बनाने (कृतपुष्पकम्) का उल्लेख है।[४२९]

पट्टांशुक—सफेद और सादा रेशमी वस्त्र को सम्भवतः पट्टांशुक कहा जाता था।[४३०]

कंचुक—पद्मचरित के द्वितीय पर्व मे मगध देश की स्त्रियों को कंचुक (चोली) पहने बतलाया गया है। गांधार कला में स्त्रियाँ साड़ी के ऊपर या नीचे कंचुक पहने दिखलाई गई है। ये कंचुक लम्बे और कसे हुए होते थे तथा उन पर सलवटें पड़ी रहती थीं।[४३१]

दुकूल—पद्मचरित के सातवें पर्व में केकशी की शय्या का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसकी शय्या दुकूल पट से कोमल थी। आचारांग में दुकूल को गौड विषय विशिष्ट कार्पासिकं अर्थात् गौड देश (बंगाल) मे उत्पन्न एक विशेष

के साथ तब तक ओखली में कूटते हैं जब तक उसके रेशे अलग नहीं हो जाते। बाद में वे रेशे कात लिए जाते हैं (निशीथ ७, पृ० ४६७।

४२५. आचारांग, ३, ५, १, ३ डॉ० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १४८।

४२६. नाया धम्म कहाओ १, १३ प्राचीन भारतीय वेशभूषा पृ० १५९।

४२७. सूक्ष्मविमलेन अंशुकेनाच्छादितशरीरा देवी सरस्वती (९) विषतन्तुमयेन अंशुकेन उन्नतस्तनमध्यबद्धगात्रिका ग्रन्थिः सावित्री (१०) वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७८।

४२८ उत्तरीयं च विन्यस्तमंशुकं कृतपुष्पकम् ॥ पद्म० ३।१९८।

४२९. वही, ३।१९८।

४३०. प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० ९५।

४३१. वही, पृ० १०९, ११०।

तरह की कपास से बना वस्त्र कहा गया है।[४३२]

वासस्[४३३]—ऋग्वेद[४३४] और बाद के साहित्य मे पहनने के कपड़ों के लिए साधारणतः वासस् शब्द का व्यवहार हुआ है। वसन और वस्त्र के भी वही माने होते हैं।[४३५] अमरकोश मे कपड़े के छः पर्यायवाची यथा—वस्त्र, आच्छादन, वास, चैल, वसन और अंशुक नाम आए हैं।[४३६] पद्मचरित में वासस्,[४३७]

---

४३२. आचारांग २।५. १, ३ अमरकोश में दुकूल क्षौम का पर्यायवाची है और उसके आवरणों को निवीत और प्रावृत कहते थे। ऐसा लगता है कि लोग जब दुकूल के अर्थ को भूल गए तब सभी महीन धुले वस्त्रों को दुगूल कहा जाने लगा। (अमरकोश २, ६, ११२, रघुवंश पर मल्लिनाथ की टीका १, ६५) हंस दुकूल गुप्तयुग की वस्त्र निर्माणकला का उत्कृष्ट नमूना था। आचारांग में एक जगह कहा गया है कि शक्र ने महावीर को जो हंस दुकूल का जोड़ा पहनाया था वह इतना हलका था कि हवा का मामूली झटका उसे उडा ले जा सकता था। इसकी बनावट की तारीफ कारीगर भी करते थे। वह कलाबत्तू के तार से मिलाकर बना था और उसमे हंस के अलंकार थे (आचारांग २, १५, २०)। नायाधम्म कहाओ के अनुसार यह जोडा वर्ण स्पर्श से युक्त, स्फटिक के समान निर्मल और बहुत ही कोमल होता था (नायाधम्म कहाओ १, १३)। मूल्यवान् कपड़ों के साथ दुकूल के जोड़े भी दिए जाते थे (अंतगड दसाओ पृ० ३२)। दुकूल के विषय में बाण ने लिखा है कि वह पुड्रदेश (पुड्रवर्धनभुक्ति या उत्तरी बंगाल) से बनकर आता था। उसके बड़े-बड़े थान मे से काटकर चादर धोती या अन्य वस्त्र बनाए जाते थे। बाण का पुस्तक वाचक सुदृष्टि इस प्रकार के कपड़े पहने था (दुगूलपट्टप्रभवे शिखंड्यपांगपांडुनी पांडु वाससी वसानः; ८५)। दुकूल से बने उत्तरीय, साड़ियाँ, पलंग की चादरें, तकियों के गिलाफ आदि नाना प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख बाण के ग्रन्थों में आया है। सावित्री को दुकूल का वस्त्र पहने हुए (दुकूलवल्कलवसाना, १०) और सरस्वती को दुकूल वल्कल का उत्तरीय ओढ़े हुए (हृदयमुत्तरीय दुकूलवल्कलैकदेशेन संछादयन्ती) कहा गया है।
वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७७।

४३३. पद्म० ३।२९३।

४३४. ऋग्वेद १।३४।१; १।११५।४, ८।३।२४प्राचीन भारत की वेशभूषा, पृ.१५।

४३५. ऋग्वेद १।९५।७।

४३६. अमरकोश २, ६, २१५।

४३७. पद्म० ३।२९३।

वसन,[४३८] तथा वस्त्र[४३९] का व्यवहार कपड़ों के लिए हुआ है।

वस्त्र रखने के पात्र—

पटल—पटल या वस्त्र रखने के पिटारे के विषय में पद्मचरित में एक प्रसंग आया है। जब दशरथ राम को बुलाकर राज्य देने को उद्यत हुए तब नूपुरों से सुन्दर शब्द करने वाली तथा उत्तम वेष से युक्त स्त्रियाँ पिटारों (पटलेषु) में वस्त्रालंकार लेकर आ गईं।[४४०]

आभूषण

आभूषणों की रमणीयता ने भारतीय हृदय को अत्यधिक विमोहित किया। यहाँ मनुष्य के अङ्ग-अङ्ग के लिए पृथक्-पृथक् आभूषण थे। पद्मचरित में उल्लिखित आभूषणों का विवरण इस प्रकार हैं—

शिरोभूषण—सिर पर किरीट[४४१] (मुकुट)[४४२], मूर्ध्निरत्न[४४३] (मस्तक का मणि), मौलि[४४४], सीमन्तमणि[४४५] (माँग में मणि), छत्र[४४६], शेखर[४४७] तथा चूणामणि[४४८] धारण किए जाते थे।

मौलि—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने केशों के ऊपर के गोल सुवर्णपट्ट के रूप मे मौलि की सम्भावना की है।[४४९] पद्मचरित मे मौलि को हेमसूत्र (स्वर्णसूत्र) से वेष्टित[४५०], रत्नो की किरणो से जगमगाने वाला[४५१] तथा श्रेष्ठ मालाओ से युक्त कहा गया है।[४५२]

शेखर—शेखर सिर के चारों ओर की एक माला होती थी।[४५३] डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने मौलि के ऊपर लगे हुए शिखंड के रूप में इसका अनुमान किया है।[४५४]

---

४३८. पद्म० ३।२२३। ४३९. पद्म० ४।७५।

४४०. चोरुनूपुरनिस्वाना दधानावेषमर्चितम्।
वस्त्रालंकारमादाय पटलेष्वागताः स्त्रियः॥ पद्म० २७।३२।

४४१. पद्म० ११८।४७। ४४२. पद्म० ८५।१०७।

४४३ वही, ७१।६५। ४४४. वही, ७१।७।

४४५. वही, ८।७०। ४४६. वही, २७।५७।

४४७. वही, ३।१९९। ४४८. वही, ३६।७।

४४९. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१९।

४५०. पद्म० ७१।७। ४५१. पद्म० ११।३२७।

४५२. वही, ३।३५३।

४५३. नरेन्द्रदेव शास्त्री : भारतीय संस्कृति का इतिहास।

४५४. वासुदेव शरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१९।

सीमन्तमणि—यह एक विशेष प्रकार की मणि थी जिसे स्त्रियाँ माँग में पहना करती थीं। इसकी कान्ति का समूह घूँघट का काम देता था।[४५५] ऐसा पद्मचरित में कहा गया है।

चूणामणि—चूणामणि प्राय: स्वर्ण की खोल में जटित पद्मराग (लालमणि) होती थी। यह मुकुट, साफे और नंगे सिर वालों के ऊपर भी पहिनी जाती थी। यह स्त्रियों और पुरुषों दोनों में समान रूप से प्रिय थी। राजा लोगों और सम्पन्न लोगों की चूणामणि विविध रत्नों से जटित होती थी।[४५६] पद्मचरित में यक्षाधिप द्वारा सीता को देदीप्यमान चूणामणि देने का उल्लेख किया गया है।[४५७] ७१वें पर्व में निर्दिष्ट मूर्ध्निरत्न[४५८] से तात्पर्य सम्भवतः चूणामणि से है।

कर्णाभूषण

कुण्डल—कान का सामान्य भूषण कुण्डल था, जो एक भारी-सा घुमावदार लटकने वाला गहना था और लेशमात्र शरीर संचालन से हिलने डुलने लगता था। पद्मचरित में 'चपलो मणिकुण्डल:' कहकर इसकी चंचलता का कथन किया गया है। कुण्डल शब्द संस्कृत के 'कुंडलिन्' (कुंडली मारने वाले साँप) से सम्बद्ध है, क्योंकि दोनों घुमावदार होते हैं। कुण्डल तपाए गए सोने के बने होते थे और रत्न या मणि जटित होने पर रत्नकुण्डल या मणिकुण्डल कहलाते थे।[४५९] पद्मचरित[४६०] में ऐसे मणिकुण्डलों का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।

अवतंस[४६१]—बाण में हर्षचरित में कान के दो आभूषणों का वर्णन किया है। एक अवतंस जो प्रायः फूलों के होते थे और दूसरे कुण्डलादि आभूषण।[४६२] पद्मचरित में अवतंस को चंचल (चलावतंसका) अर्थात् हिलने-डुलने वाला कहा है।[४६३]

बालिका—(बालियाँ) पद्मचरित के आठवें पर्व में रविषेण ने मन्दोदरी

---

४५५. पद्म० ८।७० ।

४५६. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास।

४५७. पद्म० ३६।७ । ४५८. वही, ७१।६५ ।

४५९. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति।

४६०. पद्म० ११८।४७, ११।३१७, ७१।१३ । ४६१. पद्म० ३।३ ।

४६२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४७ ।

४६३. पद्म० ७१।६ ।

का वर्णन करते हुए कहा है—उसने अपने कानों में बालियाँ पहन रखी थीं। उनकी प्रभा से वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सफेद सिन्दुवार (निर्गुण्डी) की मंजरी ही धारण कर रही हो।[४६४]

तलपत्रिका—कान में पहिनने का दाँत से निर्मित एक आभूषण जिसे पुरुष एक कान मे पहनता था। पद्मचरित में इसे महाकान्ति से कोमल (महाकान्ति कोमला) कहा गया है।[४६५]

इनके अतिरिक्त पद्मचरित में कर्णभूषण[४६६] तथा कर्णाभरण[४६७] शब्दों का भी प्रयोग कानों के आभूषण के अर्थ में हुआ है।

कण्ठाभूषण

हार—पद्मचरित में अनेक स्थलों पर हार[४६८] का उल्लेख किया गया है। रावण के पिता के पास ऐसा हार था जिसकी नागेन्द्र रक्षा करते थे।[४६९] वह हार अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशमान करता था।[४७०] उस हार में बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे थे। उन रत्नों में असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित होते थे। रावण का दशानन नाम इसलिए पड़ा, क्योकि उसके असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित होते थे।[४७१] इस हार की हजार नागकुमार रक्षा करते थे।[४७२] माला को भी हार कहते थे। मोतियों की बनाई हुई माला को मुक्ताहार[४७३] कहते थे। इसका दूसरा नाम मुक्तामाला[४७४] भी मिलता है। हार की दीप्ति से लोग बहुत आकर्षित थे। एक स्थान पर हार का नाम स्वयम्प्रभ[४७५] बतलाया गया है। इस हार को यक्षाधिप ने प्रसन्न होकर राम को दिया था। हार प्रायः रत्नों या मणियो से गूँथे जाते थे। रामायण मे हारों को चंद्ररश्मियों की-सी कान्तिवाला (चन्द्रांशु किरणाभा हाराः ५।९।४८) बतलाया गया है।[४७६]

---

४६४. कर्णयोर्बालिकालोकान्मुक्ताफलसमुत्थितात्।
सितस्य सिन्दुवारस्य मञ्जरीमिव बिभ्रतीम्॥ पद्म० ८।७१।

४६५. पद्म० ७१।१२। ४६६. पद्म० ३।१०२।

४६७. वही, १०३।९४।

४६८ वही, ८५।१०७, ८८।३१, १०३।९४, ७।२२१, ७।२१८, ७।२१५, ३।२७७। ४६९. पद्म० ७।२१९।

४७०. पद्म० ७।२२१। ४७१. वही, ७।२२२।

४७२. वही, ७।२१५। ४७३. वही, ३।२७७।

४७४. वही, ७१।२। ४७५. वही, ३६।६।

४७६. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६०।

स्रक्—[४७७] माला मे अनेक भारतीय भावनाओं ने ग्रथन प्राप्त किया था। प्रत्येक माङ्गलिक कार्य में माला को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। अधिकतर ये मालाएँ फूल की हुआ करती थीं। सोने, मोती आदि की भी मालायें हुआ करती थी। माला जिस विशेष वस्तु से निर्मित होती थी उसीके आधार पर उसका नाम पड़ जाता था।[४७८]

हाटक—पद्मचरित के प्रसङ्गानुसार हाटक का तात्पर्य सुवर्णमाला से लगाया जा सकता है। लव-कुश की बाल्यावस्था का वर्णन करते हुए रविषेण ने कहा है कि हाटक (सुवर्णमाला) मे खचित व्याघ्र सम्बन्धी नखों की बड़ी पंक्ति उनके हृदय मे ऐसी सुशोभित हो रही थी, मानों दर्प के अंकुरों का समूह ही हो।[४७९]

रत्नजटित स्वर्णसूत्र[४८०]—(रत्नसंयुक्तं कांचनसूत्रकम्)—सोने के धागे में पिरोया हुआ रत्नों का हार।

कराभूषण

केयूर[४८१]—बाँहों मे भुजबन्द (अंगद या केयूर) पहनने की परम्परा स्त्री और पुरुष दोनों मे थी।[४८२] केयूर सोने या चाँदी के बनते थे, जिनमे लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मणियाँ जड़ा लेते थे।[४८३] पद्मचरित मे एक स्थान पर स्वर्णनिर्मित केयूर (हेमकेयूर)[४८४] का उल्लेख मिलता है। चाँदी के केयूर का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। आधुनिक पहलवान के गंडों के समान लोग केयूरो को भुजदण्ड पर कुहनी से ऊपर बाँधा करते थे।[४८५] ग्यारहवें पर्व मे बाजूबन्दों की किरणों से कन्धों के देदीप्यमान होने का कथन किया गया है।[४८६]

कटक—हाथ मे सोने, चाँदी हाथीदाँत तथा शंख के कड़े पहनने की प्रथा प्राचीनकाल मे प्रचलित थी।[४८७] पद्मचरित से हमे बायें हाथ में स्वर्णनिर्मित

४७७. पद्म० ८८।३१, ३।२७७।
४७८. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११४।
४७९. पद्म० १००।२५। ४८०. पद्म०, ३३।१८३।
४८१. वही, ८५।१०७, ११।३२८, ८।४१५, ८८।३१, ३।२, ३।१९०।
४८२. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५।
४८३. पद्म०। ४८४. पद्म० ३।१९०।
४८५. भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५। ४८६. पद्म० ११।३२८।
४८७. नरेन्द्रदेव सिंह : भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ० ११५।

कड़े पहनने की जानकारी मिलती है।[४८८] कड़े की आभा से किरणें निकला करती थीं, जिनसे हाथों की हथेलियाँ आच्छादित हो जाती थीं।[४८९]

ऊर्मिका[४९०]—(अँगूठी)—अँगूठी के साथ भारतवासियों की पता नहीं कितनी मधुर भावनायें लिपटी हुई हैं। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में अँगूठी एक महत्त्वपूर्ण नाटकीय भूमिका अदा करती है। पद्मचरित के तैंतीसवें पर्व में एक वर्णन आता है कि वज्रकर्ण ने मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की प्रतिमा से युक्त एक स्वर्ण की अँगूठी (ऊर्मिका) बनवाई तथा उसीके सहारे जिनेन्द्रदेव के अतिरिक्त अन्य किसीको नमस्कार न करने की महत्त्वपूर्ण प्रतिज्ञा निभाई।[४९१]

कटि के आभूषण

काञ्ची—स्त्री की करधनी के लिए पद्मचरित में काञ्ची[४९२] और मेखला दो शब्द आए हैं। आभूषण के रूप में तो इनका आकर्षण था ही अधोवस्त्र को यथास्थान रखने में भी यह सहायक होती थी। काञ्ची घुँघरूदार सोने के कमर-बन्द को कहते थे।[४९३] पद्मचरित में एक स्थान पर इसे मणिसमूह से सुशोभित कहा है।[४९४] मणियों की दानेदार करधनी को मेखला भी कहते थे।[४९५]

पैरों के आभूषण

नूपुर—पैरों के आभूषण के रूप में पद्मचरित में एकमात्र नूपुर का उल्लेख हुआ है। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर स्त्रियाँ नूपुरों का शब्द करती हुई, उत्तम वस्त्र धारण कर तथा पिटारों में वस्त्रालङ्कार लेकर आ गईं।[४९६] नूपुर सादे या मणिजटित और मधुर झंकार करने वाले घुँघरुओं से युक्त होते थे। नूपुर जल्दी से पहनाया-उतारा जा सकता था।[४९७]

आर्थिक जीवन

पद्मचरित का समाज एक सुव्यवस्थित समाज है। सुव्यवस्थित समाज में जीविकोपार्जन अव्यवस्थित समाज की तरह कठिन नहीं होता है। अनेक प्रकार के कला-कौशल ऐसे समाज में विकसित हो जाते हैं। पद्मचरित में समाज को

---

४८८. पद्म० ३।३।
४८९. पद्म० ३।३।
४९०. वही, ३३।१३१।
४९१. वही, ३३।१३१-१३३।
४९२. वही, ८।७२।
४९३. वही, ७१।६५।
४९४. वही, ८।७२।
४९५. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६१।
४९६. पद्म० २७।३२।
४९७. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६१।

इस विकसित अवस्था के स्पष्ट दर्शन होते हैं, जैसा कि निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट है—

वाणिज्य—कृषि तथा औद्योगिक शिल्पों से उत्पन्न वस्तुओं का क्रय-विक्रय हुआ करता था। १४वें पर्व में बेर आदि को बेचने वाले भद्र नामक पुरुष की कथा आती है। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं एक दीनार का ही परिग्रह रखूँगा।[४९८] इससे ज्ञात होता है कि क्रय-विक्रय का माध्यम दीनारें थी।[४९९] काम्पिल्य नगर में बाईस करोड दीनारों का धनी एक वैश्य रहता था।[५००] इससे स्पष्ट है कि संचित धन के रूप में लोग दीनारों को रखते थे। धनोपार्जन के लिए लोग विदेशों में भी जाया करते थे। एक स्थान पर कहा गया है कि धन का उपार्जन करना, विद्याग्रहण करना और धर्म संचय करना ये तीनों कार्य यद्यपि मनुष्य के आधीन हैं फिर भी प्रायः इनकी सिद्धि विदेशों में होती है।[५०१] व्यापार करने के लिए व्यापारियों के बड़े-बड़े संघ विदेशों में जाया करते थे। द्वितीय पर्व में वर्द्धमान जिनेन्द्र की स्तुति में इन्द्र कहता है कि आप सार्थवह[५०२] हो, भव्य जीव रूपी व्यापारी आपके साथ निर्वाण धाम को प्राप्त करेंगे तथा दोष रूपी चोर उन्हें नहीं लूट सकेंगे। समुद्री मार्गों की दूरी तय करने के लिए नौकाओं (नौ)[५०३] से लेकर बड़े-बड़े जहाज तक प्रयुक्त किए जाते थे। जहाज के लिए पोत[५०४] तथा यानपत्र[५०५] शब्द प्रयुक्त किए जाते थे। व्यापार करने वाले को वणिज्[५०६], वणिक्[५०७], तथा वैश्य कहते थे। इनकी क्रिया वाणिज्य कहलाती थी। वाणिज्य विद्या की विधिवत् शिक्षा दी जाती थी। तैंतीसवें पर्व में विद्युदंग का व्यापार की विद्या से युक्त हो (युक्तो वाणिज्यविद्यया) उज्जयिनी नगरी जाने का उल्लेख हुआ है।[५०८] स्थल व्यापार में मार्ग की दूरी तय करने के लिए[५०९] शकट (गाड़ी) का उपयोग किया जाता था। आवश्यकता पड़ने पर

४९८. पद्म० १४।१९५। ४९९. पद्म० ७१।६४।

५००. वही, ८५।८५। ५०१. वही, २५।४४।

५०२. समान या सहयुक्त अर्थ (पूँजी) वाले व्यापारी जो बाहरी मण्डियों के साथ व्यापार करने के लिए टाँडा लादकर चलते थे वे सार्थ कहलाते थे। उनका नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता था। डॉ० मोतीचन्द्र : सार्थवाह (भूमिका), पृ० १०२।

५०३. पद्म० ११०।५६। ५०४. पद्म० १०।१७४, ८३।८०, ४५।६९।

५०५. वही, ११८।९९, ५५।६१। ५०६. वही, ५।४१, ६।१५४।

५०७. वही, ५५।६०। ५०८. वही, १३३।१४५।

५०९. वही, ३३।४६।

लोग एक-दूसरे का धन उधार ले लेते थे। इस प्रकार के लेनदेन के लिए व्यवहार शब्द आया है। कर्मभूमि के प्रारम्भ में प्रजा इस प्रकार के व्यवहार से रहित थी।[५१०]

कृषि—पद्मचरित में खेत के लिए क्षेत्र[५११] शब्द का प्रयोग किया गया है। खेत दो प्रकार के थे—उपजाऊ तथा अनुपजाऊ। अनुपजाऊ क्षेत्र या खेत के लिए खिल[५१२] (खल) तथा उपजाऊ खेत के लिए उर्वरा[५१३] (क्षेत्र) कहा जाता था। उस समय खेती हलों[५१४] (लांगल) से होती थी। जिस व्यक्ति के यहाँ जितने अधिक हल चलाये जाते थे वह व्यक्ति उतना अधिक समृद्ध माना जाता था। भरत चक्रवर्ती के यहाँ एक करोड़ हल थे।[५१५] राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के यहाँ पचास लाख थे।[५१६] खेती करने वाले को कर्षक कहते थे।[५१७] हलवाहक को कीनाश कहते थे।[५१८] खेतों में पुण्ड्र (पौंडा)[५१९] तथा इक्षु[५२०] (ईख) के अतिरिक्त, अनेक धान्यों[५२१] को बोया जाता था। शाक तथा कन्दमूल की खेती भी होती थी।[५२२] फलों के लिए नालिकेर[५२३] (नारियल), दाडिमी[५२४] (अनार), द्राक्षा[५२५] (दाख), पिण्डखर्जूर[५२६] आदि के वृक्ष लगाये जाते थे। बिना जोते-बोए उत्पन्न हुए धान को अकृष्टपच्यसस्य[५२७] कहते थे। कर्मभूमि के प्रारम्भ मे भरत क्षेत्र की भूमि अकृष्टपच्यसस्य से युक्त थी।[५२८]

सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था थी। कुँए से घटीयन्त्र (अरहट या रहट) के द्वारा सिंचाई होती थी।[५२९] पद्मचरित में अनेक तालाब[५३०] तथा नदियों का उल्लेख है। अतः इनसे भी सिंचाई की जाती होगी। अनाज पककर काटने के

---

५१०. पद्म० ३।३३२।
५११. पद्म० २।३।
५१२. वही, ३।७०।
५१३. वही, २।७।
५१४. वही, २।३।
५१५. वही, ४।६३।
५१६. वही, ८३।१५।
५१७. वही, ६।२०८।
५१८. वही, ३४।६०।
५१९. वही, २।४।
५२०. वही, २।४।
५२१. वही, २।५-९।
५२२. वही, २।१५।
५२३. वही, २।१५
५२४. वही, २।१६।
५२५. वही, २।१८।
५२६. वही, २।१९।
५२७. वही, ३।२३१।
५२८. वही, ३।२३१।
५२९. वही, २।६, ९।८२।
५३०. वही, २।२३, २।१००।

बाद जहाँ रखा जाता था उस स्थान को खलधाम[५३१] (खलिहान) कहा जाता था।

पशुपालन—पशुपालन जीविका का उत्तम साधन था। द्वितीय पर्व में मगध देश का वर्णन करते हुए कहा गया है—हितकारी पालक जिनकी रक्षा कर रहे थे ऐसे खेलते हुए सुन्दर शरीर के धारक भेड, ऊँट तथा गायों के बछड़ों से उस देश की समस्त दिशाओं में भीड़ लगी रहती थी।[५३२] इस उल्लेख से गायों, भेड़ों तथा ऊँटों की संख्या का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गोपाल के द्वारा रक्षित गायों का बड़ा ही सुन्दर चित्र रविषेण ने खींचा है—बड़े-बड़े भैंसों की पीठ पर बैठे गाते हुए ग्वाले जिनकी रक्षा कर रहे हैं, शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में लगे हुए कीड़ों के लोभ से ऊपर को गर्दन उठाकर चलने वाले बगुले मार्ग में जिनके पीछे लग रहे हैं, रंग-बिरंगे सूत्रों में बँधे हुए घटाओं के शब्द से जो बहुत मनोहर जान पड़ती हैं मानों पहले पिए हुए क्षीरोदक को अजीर्ण के भय से छोड़ती रहती हैं, मधुर रस से सम्पन्न तथा इतने कोमल कि मुँह की भाप मात्र से टूट जायें ऐसे सर्वत्र व्याप्त तृणों के द्वारा जो अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त होती थी ऐसी गायों के द्वारा उस देश (मगधदेश) के वन सफेद-सफेद हो रहे हैं।[५३३] कृषक समाज के लिए पशुओं की और उनमें भी विशेषकर गाय-बैलों की बहुत अधिक महत्ता रहती है, इस कारण गोपालन आदि की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। सवारी के लिए घोड़े,[५३४] हाथी[५३५] आदि की विशेष महत्ता थी। जो व्यक्ति जितने अधिक पशुओं का स्वामी होता था, वह उतना ही अधिक धनी माना जाता था। भरत चक्रवर्ती के यहाँ तीन करोड़ गायें, चौरासी लाख उत्तम हाथी तथा वायु के समान वेगशाली अठारह करोड़ घोड़े थे।[५३६] राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के एक करोड़ से अधिक अपने-आप दूध देने वाली गायें थीं।[५३७] सुन्दर गायों और भैंसों से युक्त कुटुम्बियों को

---

५३१. पद्म० २।५।

५३२. पद्म० २।२४।

५३३. महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितैः।
कीटातिलम्पटोद्ग्रीव बलाकानुगताध्वभिः॥ पद्म०, २।१०
विवर्णसूत्रसम्बद्धघण्टारटितहारिभिः।
क्षरद्भिरजरत्रासात् पीतक्षीरोदवत् पयः॥ पद्म० २।११
सुस्वादरससम्पन्नैर्बाष्पच्छेद्यैरनन्तरैः।
तृणैस्तृप्तिं परिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षभूः॥ पद्म० २।१२

५३४. पद्म० ४।८।

५३५. पद्म० ४।८।

५३६. वही, ४।६३-६४।

५३७. वही, ८३।१५।

अत्यधिक सुखी माना जाता था। एक स्थान पर ऐसे कुटुम्बियों को उत्तम देवों के समान सुशोभित कहा गया है।[५३८] दूध, दही, घी तथा घी से तैयार किए गए अनेक स्वादिष्ट व्यञ्जन उस समय का प्रमुख भोजन था।[५३९]

अन्य उद्यम—कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य के अतिरिक्त अन्य अनेक उद्यम थे। इन उद्यमों को करने वाले व्यक्ति विशेष नामों से पुकारे जाते थे। जैसे सेवक, धानुष्क, क्षत्रिय, ब्राह्मण, नृत्यकार, रजक, पुरोहित, शबर, पुलिन्द, लुब्धक, संगीतज्ञ तथा श्रेष्ठि आदि। इन सबका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

आर्थिक समृद्धि की पराकाष्ठा—आर्थिक समृद्धि की पराकाष्ठा का रूप यद्यपि तीर्थङ्कर की भोगोपभोग सामग्री में मिलता है, किन्तु तीर्थङ्कर के पुण्य-प्रकर्ष से यह सब देवोपनीत होने से यहाँ पर उसका विशेष कथन नहीं किया जाता है। भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त करने में दूसरा स्थान चक्रवर्ती का है। चक्रवर्ती की सम्पदा की गणना में भरत चक्रवर्ती की कृषि और पशु सम्पदा का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उनके पास नव रत्नों से भरी हुई अक्षय नौ निधियाँ थीं,[५४०] निन्यानबे हजार खानें थीं। खान को यहाँ आकर

---

५३८. पद्म० ८३।२०।   ५३९. पद्म० ३४।१३-१६।

५४०. आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में भरत चक्रवर्ती की नौ निधियों में १–काल, २–महाकाल, ३–पाण्डुक, ४–माणव, ५–नैसर्प, ६–सर्वरत्न, ७–शंख, ८–पद्म और ९–पिंगल को गिनाया है। ये सभी निधियाँ अविनाशी थीं, निधिपाल नामक देवों के द्वारा सुरक्षित थी और निरन्तर लोगों के उपकार मे आती थीं। ये गाड़ी के आकार की थी, चार-चार भौरों और आठ-आठ पहियों सहित थी। नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, आठ योजन गहरी और वक्षारगिरि के समान विशाल कुक्षि से सहित थीं। प्रत्येक की एक-एक हजार देव निरन्तर देखरेख करते थे।

इनमे से पहली कालनिधि मे ज्योतिःशास्त्र, निमित्तशास्त्र, न्याय-शास्त्र, कलाशास्त्र, व्याकरण शास्त्र एवं पुराण आदि का सद्भाव था अर्थात् कालनिधि से इन सबकी प्राप्ति होती थी। दूसरी महाकाल निधि मे विद्वानों के द्वारा निर्णय करने योग्य पंचलोह आदि नाना प्रकार के लोहों का सद्भाव था। तीसरी पाण्डुक निधि में शालि, व्रीहि, जौ आदि समस्त प्रकार की धान्य तथा कडुए, चरपरे आदि पदार्थों का सद्भाव था। चौथी माणवक निधि कवच, ढाल, तलवार, बाण, शक्ति, धनुष तथा चक्र आदि नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रों से परिपूर्ण थी। पाँचवीं

कहा गया है।[५४१] बत्तीस हजार महाप्रतापी राजा थे। नगरों से सुशोभित बत्तीस हजार देश थे, देव लोग सदा जिनकी रक्षा करते थे, ऐसे चौदह रत्न थे[५४२] और छियानबे हजार स्त्रियाँ थीं।[५४३]

चक्रवर्ती के बाद दूसरा स्थान नारायण तथा बलभद्र की सम्पदा का है। पद्मचरित में विशेष रूप से नारायण, लक्ष्मण और बलभद्र राम की सम्पदाओं और उनके कार्य-कलापों का वर्णन है। तदनुसार उनके अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरों से युक्त इन्द्रभवन के समान सुन्दर लक्ष्मी का निवासभूत **नन्द्यावर्त** नाम का भवन था।[५४४] किसी महागिरि की शिखरों के समान ऊँचा **चतु शाल** नाम का कोट था, **वैजयन्ती** नाम की सभा थी। चन्द्रकान्त मणियों से निर्मित **सुवीथी** नाम की मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा तथा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला **प्रासादकूट** था, विन्ध्यगिरि के समान ऊँचा **वर्द्धमानक** नाम का **प्रेक्षागृह** था, अनेक प्रकार के उपकरणों से युक्त कार्यालय थे, उनका **गर्भगृह कुक्कुटी के अण्डे के समान** महान् आश्चर्यकारी था, एक खम्भे पर खडा था और कल्पवृक्ष के समान मनोहर था। उस गर्भगृह को चारो ओर से घेरकर

सर्प निधि, शय्या, आसन आदि नाना प्रकार की वस्तुओ तथा घर के उपयोग मे आने वाले नाना प्रकार के भाजनों की पात्र थी। छठवी सर्वरत्ननिधि, इन्द्रनीलमणि, महानीलमणि, बज्रमणि आदि बड़ी-बडी शिखा के धारक उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण थी। सातवी शख नामक निधि भेरी, शख, नगाडे, वीणा, झल्लरी और मृदग आदि आघात से तथा फूँककर बजाने योग्य नाना प्रकार के बाजो से पूर्ण थी। आठवी पद्मनिधि पाटाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकार के रग-बिरगे वस्त्रों से परिपूर्ण थी। नौवी पिंगल निधि कड़े तथा कटिसूत्र आदि स्त्री-पुरुषों के आभूषण और हाथी, घोड़ा आदि के अलंकारों से परिपूर्ण थी। ये नौ की नौ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपति के आधीन थी और सदा चक्रवर्ती के समस्त मनोरथों को पूरा करती थी।

जिनसेन : हरिवंश पुराण ११।११०-१२३।

५४१. पद्म० ४।६२।

५४२. भरत चक्रवर्ती के चक्र, छत्र, खंग, दण्ड, काकिणी, मणि, चर्म, सेनापति, गृहपति, हस्ती, अश्व, पुरोहित, स्थपति और स्त्री ये चौदह रत्न थे। इनमें से प्रत्येक की एक-एक हजार देव रक्षा करते थे। जिनसेन : हरिवंशपुराण, ११।१०८-१०९।

५४३. पद्म० ४।६४-६६।

५४४. पद्म० ८३।४।

तरङ्गावली नाम से प्रसिद्ध तथा रत्नों से देदीप्यमान रानियों के महलों की पंक्ति थी। बिजली के खम्भों के समान कान्तिवाला **अम्भोजकाण्ड नामक शय्यागृह था,** उगते हुए सूर्य के समान उत्तम सिंहासन था, चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान चमर थे। इच्छानुकूल छाया को करने वाला चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त बडा भारी छत्र था। सुख से गमन कराने वाली **विषमोचिका नाम की खड़ाऊँ थी, अनर्घ्य वस्त्र थे, दिव्य आभूषण थे, दुर्भेद्य कवच था, देदीप्यमान मणिमय कुण्डलों का जोड़ा** था, कभी व्यर्थ नही जाने वाले गदा, खड्ग, चक्र, कनक, बाण तथा रणाङ्गण में चमकने वाले अन्य बडे-बडे शस्त्र थे, पचास लाख हल थे, एक करोड़ से अधिक अपने-आप दूध देने वाली गायें थी। अयोध्या नगरी में अत्यधिक सम्पत्ति को धारण करने वाले कुछ अधिक सत्तर करोड कुल थे। गृहस्थों के समस्त घर अत्यन्त सफेद, नाना आकारों के धारक, अक्षीण खजानों से परिपूर्ण तथा रत्नों से युक्त थे। नाना प्रकार के अन्नो से परिपूर्ण नगर के बाह्य प्रदेश छोटे-मोटे गोल पर्वतों के समान जान पडते थे और पक्के फर्शों से युक्त भवनों की चौशालें अत्यन्त सुखदायी थीं। उत्तमोत्तम बगीचों के मध्य में स्थित नाना प्रकार के फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढियो से युक्त एवं क्रीडा के योग्य अनेक वापिकाये थी।[५४५] अयोध्या नगरी के बडे-बडे विद्यालयो को देखकर यह सन्देह होता था कि ये देवों के क्रीडाञ्चल हैं अथवा शरद् ऋतु के मेघों का समूह है।[५४६] इस नगरी का प्राकार समस्त दिशाओं को देदीप्यमान करने वाला अत्यन्त ऊँचा, समुद्र की वेदिका के समान तथा बड़े-बड़े शिखरों से सुशोभित था।[५४७] ये सब वैभव जिनका कि कथन किया गया है बलभद्र और नारायण पद के कारण उनके प्रकट हुआ। वैसे उनका जो वैभव और भोग था उसका वर्णन नही किया जा सकता।[५४८]

जनजीवन—साधारण मनुष्य भी उस समय समृद्ध और सुखी थे। आज की तरह उस समय भी नगर वैभव और समृद्धि के प्रतीक थे। नगर मे प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियो और प्रत्येक प्रकार के उद्यमों का समवाय था। पद्मचरित के द्वितीय पर्व मे प्रतिपादित राजगृह नगर इसका सबसे बड़ा प्रतीक है। गाँव का जीवन सीधा-सादा था। विशेषकर हस्त-कौशल, खेती और पशुपालन ग्रामीणों की मुख्य आजीविका थी। देश के कुछ भाग ऐसे भी थे जहाँ किन्हीं प्राकृतिक कारणों से लोगों को आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। एकादश पर्व में रावण का ऐसे देश मे जाने का वर्णन है जहाँ जाने पर पृथ्वी अकृष्टपच्य धान्य

---

५४५. पद्म० ८३।५-१९।
५४६. पद्म० ८३।२८।
५४७. वही, ८३।२९।
५४८. वही, ८३।२-३।

से युक्त हो गई थी ।[५४९] प्रसन्न होकर किसान लोग इस प्रकार कहने लगे कि हम लोग बड़े पुण्यात्मा हैं, जिससे रावण इस देश में आया ।[५५०] अब तक हम खेती में लगे रहे, हम लोगों का सारा शरीर रूखा-सूखा हो गया, हमे फटे-पुराने वस्त्र पहिनने को मिले, कठोर स्पर्श और तीव्र-वेदना से युक्त हाथ-पैरों को धारण करते रहे और आज तक कभी सुख से अच्छा भोजन हमें प्राप्त नहीं हुआ । हम लोगों का काल बडे क्लेश से व्यतीत हुआ परन्तु इस भव्य जीव के प्रभाव से हम लोग सब प्रकार से सम्पन्न हो गए है ।[५५१]

भोगोपभोग के प्रकार—शयन, आसन, पान, गन्ध, माला, वस्त्र, आहार, विलेपन, वाहन, चारण आदि परिकर[५५२] की उत्कृष्टता अनुत्कृष्टता समृद्धि तथा असमृद्धि का लक्षण माना जाता था ।

धन की महत्ता—धन का सदैव सासारिक दृष्टि मे अत्यधिक महत्त्व रहा है । ससार मे धन ही सब कुछ है । जिसके पास धन है उसके मित्र है, जिसके पास धन है उसके बान्धव है, जिसके पास धन है लोक मे वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है । जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई । पर वही मनुष्य जब धन सहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते है ।[५५३] धन को इतना महत्त्व देने पर भी अन्त मे धर्म से युक्त धन को श्रेष्ठ माना गया है । धन वही है जो धर्म से सहित है और धर्म वही है जो निर्मल दया से सहित है तथा निर्मल दया वही है जिसमे मास नही खाया जाता । मास भोजन से दूर रहने वाले समस्त प्राणियों के अन्य त्याग चूंकि मूल से सहित होते हैं इसलिए उनकी प्रशंसा होती है ।[५५४]

त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम लोक मे त्रिवर्ग के नाम से प्रसिद्ध है । रावण धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग से सहित था ।[५५५] इनमे से किसी एक की सिद्धि या प्राप्ति ही उचित नही अपितु इन तीनों की सिद्धि होनी चाहिए । इन तीनो का सेवन कर अन्त मे तृप्त होकर विवेकी लोग सब कुछ छोड़कर धन सेवन करते थे । इसके कारण के लिए उनके बालों मे से एक पका बाल या

---

५४९. पद्म० ११।३४८ ।
५५०. पद्म० ११।३५० ।
५५१. वही, ११।३५१-३५२ ।
५५२. वही, ३।२२३, १०२।१०३ ।
५५३. वही, ३५।१६१, १६२ ।
५५४. वही, ३५।१६३, १६४ ।
५५५. वही, ५३।८६ ।

सफेद बाल[५५६] ही दिखाई दे जाना पर्याप्त था। इतने से ही वैराग्य युक्त हो लोग किसी साधु के समीप जाकर दीक्षा ले लेते थे।[५५७]

प्राकृतिक सम्पदा—किसी देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित करने में उस देश की प्राकृतिक सम्पदा (नदियाँ, पर्वत, पशु-पक्षी आदि जीव-जन्तु, वृक्ष, लता, वन आदि) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है। पद्मचरित में इस प्रकार की विपुल सामग्री का उल्लेख हुआ है, जो निम्न प्रकार है—

वृक्षादि वनस्पति—पद्मचरित में निम्नलिखित वृक्षादि वनस्पति के नाम आए हैं—अशोक (४।२४), तमाल (१।३७), पुंड्र (२।४), इक्षु (२।४), नालिकेर (नारियल, २।१५), मातुलिङ्गी (बिजौरा, २।१७), पिण्डखर्जूर (२।१९), मोच (केला, २।१९), कुङ्कुम (केशर, २।२५), मुद्ग (मूँग २।७), कोशीपुट (मोठ, २।७), राजमाष (बर्वटी, २।८), गोधूम (गेहूँ, २।९), शालि (धान, २।९९) माष (उड़द, २।१५६), कल्पपादक (कल्पवृक्ष, ३।४९), जम्बू वृक्ष (जामुन, ३।४८), निम्ब (नीम, ३।७०), कुश (कुशा, ३।२९७), व्रीहि (धान, ४।१०९), कदली (केला,५।२८१), आमलकी(आँवला), नीप (६।९१), कपित्थ(कैथा,६।९१), अगुरु (६।९१), चंदन(६।९१), प्लक्ष (६।९१), अर्जुन (६।९१), कदंब (९।९१), आम्र (आम ६।९१), प्रियाल (अचार, ६।९१), धव (६।९१), दाडिमी (६।९२), पूग (सुपारी ६।९२), कंकोल (६।९२), लवङ्ग (लौंग, ६।९२), अश्वत्थ (पीपल, ६।३९१), सर्षप (सरसों, ९।१६९), बिम्ब (११।३२२), नमेरुवृक्ष (१२।७६), वेणु (बाँस, १२।२५८), कोद्रव (कोदों, १३।६८), बदर (बेर, १४।२४९), किंशुक (पलाश, १९।४९), सप्तपर्णवृक्ष (२०।३८), वटवृक्ष (२०।३७), शालवृक्ष (२०।३९), सरलवृक्ष (देवदारु, २०।४०), प्रियंगु (२०।४१, ४२), शिरीषवृक्ष (२०।४३), नागवृक्ष (२०।४४), प्लक्ष (२०।४६), तिन्दुक (तेंदू, २०।४७), पाडला (पाटलावृक्ष) २०।४८, दधिपर्ण (२०।५१), नन्दवृक्ष (२०।५२), तिलकवृक्ष (२०।५३), चम्पकवृक्ष (२०।५६), बकुलवृक्ष (२०।५७), मेरुशृङ्गवृक्ष (२०।५८), धववृक्ष (२०।५९), ताम्बूल (नागवल्ली, २०।१३९), हरिचन्दन (२०।१३९), कर्णिकार (कनेर, २१।८७), लोध्र (२१।८७), प्रियाल (२१।८७), काश (काँस, २१।१३३), किम्पाक (२९।७७), एरण्ड (३२।६०), शाल्मली (३२।१९४), कर्णिकार (३३।८३), किंजल्क (३८।१३), यूथिका (४०।८), मल्लिका (मालती, ४०।८), नागा (नागकेशर, ४०।८), वंश (बाँस, ४१।८), इङ्गुद (४१।२६), तिन्तिड़ी (इमली, ४२।११), विभीतक (बहेड़े, ४२।११), लक्ष (लाख, ४२।११), अक्षोट (अखरोट, ४२।११), पाटल (गुलाब, ४२।१२),

५५६. पद्म० २२।१०५, १०६। ५५७. पद्म० २२।११२।

आम्रातक (४२।१२), ताल (४२।१३), तमाल (४२।१३), नन्दि (४२।१३), भूर्ज (भोजवृक्ष, ४२।१४), गुलकैर्वट (४२।१४), सित अगुरु (४२।१४), सफेद अगुरु, असित अगुरु (काला अगुरु, ४२।१४), रम्भा (४२।१४), केला, पद्मक (४२।१५), मुचिलिन्द (४२।१५), कुटिल (४२।१५), पारिजातक (४२।१५), बन्धूक (दुपहरिया, ४२।१५), केतकी (४२।१५), मधूक (महुआ, ४२।१५), खदिर (खैर, ४२।१५), मदन (मैनार, ४२।१६), खर्जूर (खजूर,४२।१६), नारिंग (नारंगी, ४२।१६), असन (४२।१६), रस (रसोद, ४२।१७), शमी (४२।१७), हरीतकी (४२।१७), कोविदार (कचनार, ४२।१७), करज (४२।१८), कुष्ट (४२।१८), कालीय (४२।१८), उत्कच (४२।१८), अजमोदक (अजमोद, ४२।१८), जाति (चम्पा, ४२।१८), धातकी (आँवला, ४२।१९), चवि (चव्य, ४२।१९), कुर्षक (४२।१९), एला (इलायची, ४८।१९), रक्तचदन (लालचदन, ४२।१९), वेत्र (बेंत, ४२।२०), श्यामलता (४२।२०), हरिद्रु (४२।२०), स्पदन-बिल्व (तेन्दू, ४२।२०), चिरबिल्व (बेल, ४२।२०), मेथिक (मेथी, ४२।२०), अरङ्क (४२।२१), बीजक (बीजसार, ४२।२१), शैवाल (सेवार, ४२।६६), पुन्नाग (४२।९५), पनस (कटहल, ५३।१९७), परिभद्र (६२।४६), कुरबक (९५।१५), सहकार (आम, ९७।८५), धातकी (९९।३३), कर्कन्धु (बेर, ९९।४८), कपिकच्छू (करेंच, ९९।४९), गुंजा (गुमची, ९९।५०), अम्भोज (कमल, १२०।६)।

लतायें

द्राक्षा (२।१८), माधवी (२८।८८), वशलता (३७।६५), अतिमुक्तकलता (३९।८), ताम्बूलवल्ली (४२।१९), प्रियंगुलतिका (४२।३५), चित्रभृत (ककडी, ८०।१५४) तथा कूष्माण्ड (काशीफल, ८०।१५४)।

पुष्प

पद्म (कमल, १।६, १।१६), कुन्द (१।७), शिरीष (२।४६), सरोरुह (कमल, २।८४), कदम्ब (२।११६), कुमुद (२।२१७), पुन्नाग (३।१२८), मालती (३।१२८), कुन्द (३।१२८), चम्पक (चम्पा, ३।१२८), बकुल (मोलिश्री, ७।१५१, केतकी (११।३८१), कुमुद्वती (१५।५४), केसर (१५।६७), किंशु-कोत्कर (पलाश के फूल, १८।४९), इन्दीवर (नीलकमल, २५।२६), उत्पल (३०।२), पुण्डरीक (३८।५१), बन्धूक (४४।६१), शतपत्र (कमल, ५३।२३), यूथिका (जुही, ७३।१३१), अंकोट (९५।१५), तथा सहस्रच्छदर्न पद्म (१०५।४८)।

उद्यान

पद्मचरित में निम्नलिखित उद्यानों के नाम आए हैं—विपुल उद्यान (२१।३६), महेन्द्रोदय (२९।९०), वसन्ततिलक (३९।९७), देवरमणोद्यान (४६।७१), देवार्चक (४८।४८), प्रमदोद्यान (७२।२४), कुसुमामोद (८४।१३), तिलक (८५।४०), कुसुमायुध (पर्व ७८-गद्यभाग), कामोद्यान (पर्व ७८-गद्य-भाग), पाण्डुकोद्यान (१२।८४, ८५) प्रकीर्णक (४६।१४५), जनानन्द (४६।१४५), सुखसेव्य (४६।१४५), समुच्चय (४६।१४५), चारणप्रिय (४६।१४५), निबोध (४६।१४५), अक्षय (४६।१४५), तथा भवनोन्माद (१९।६४)।

वन

पद्मचरित में निम्नलिखित वनो के नाम आए हैं—

भूताटवी (१।७५), दाडिमीवन (२।१६), अर्जुनवन (२।२०), पद्मवन (२।११७), भद्रशालवन (६।१३४), सौमनस वन (६।१३४), नन्दनवन (६।१३४), भीमवन (७।२५७), मन्दारुणारण्य (८।२४), पाण्डुकवन (११२।४०), विन्ध्यारण्य (१८।३९), भूतरव वन (१८।४८), कदलीकानन (१९।५३), परियात्रा (३२।२८), वेणुकान्तार (३७।४५), कालंजर (५९।१२), रक्ताशोकवन (६२।४६) किंशुककानन (६२।४६), परिभद्रद्रुमारण्य (६२।४६), श्वापद (६४।५५), कपित्थवन (६४।७६), दण्डकारण्य (८२।१०), निकुंजवन (८५।६३), गिरिवन (८५।७९), शल्लकी (८५।१५१), तिलकवन (९१।२६), कुमुदखण्ड (९३।१), सिंहरवा (१०२।६९) तथा सहस्राम्रवन (१०९।१६५)।

सरोवर

पद्म (२१।२१), महापद्म (२१।२१)।

नदियाँ

गङ्गादि[५५८] चौदह नदियाँ—जम्बू द्वीप में गङ्गादि चौदह नदियों का निर्देश पद्मचरित मे किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार ये चौदह नदियाँ ये हैं—१-गंगा, २-सिन्धु, ३-रोहित, ४-रोहितास्या, ५-हरित्, ६-हरिकान्ता, ७-सीता, ८-सीतोदा, ९-नारी, १०-नरकान्ता, ११-सुवर्णकूला, १२-रूप्यकला, १३-रक्ता, १४-रक्तोदा।

गङ्गा[५५९]—वर्तमान गंगा नदी। इसका जाह्नवी[५६०] नाम भी आया है।

---

५५८. पद्म० १०५।१६०।

५५९. पद्म० २।१४।

५६०. वही, ९८।१।

शर्वरी[५६१]—परियात्रानामक वन मे स्थित एक नदी, जिसके किनारे अनेक शबर रहते थे।

नर्मदा[५६२]—

कर्णरवानदी[५६३]—

कुशाग्रगिरि[५६४]—(विपुलाचल) मगध देश का राजगृह के समीप का एक पर्वत जहां भगवान् महावीर का समवसरण आया था।

विजयार्ध पर्वत[५६५]—भरत और ऐरावत क्षेत्र में दो रजतमय विजयार्ध पर्वत हैं।[५६६]

वंशपर्वत[५६७]—वंशस्थल पर्वत।

विपुल[५६८]—विपुलाचल।

महामेरु[५६९]—(सुमेरु पर्वत)—जम्बूद्वीप के मध्य मे सुमेरु पर्वत है। यह पर्वत कभी नष्ट नही होता। इसका मूलभाग वज्र अर्थात् हीरों का बना है और ऊपर का भाग सुवर्ण तथा मणियों एवं रत्नों से निर्मित है।[५७०] सौधर्म स्वर्ग की भूमि में और इस पर्वत के शिखर मे केवल बाल के अग्रभाग बराबर ही अन्तर रह जाता है।[५७१] यह निन्यानबे हजार योजन ऊपर उठा है और एक हजार योजन नीचे पृथ्वी में प्रविष्ट है।[५७२] यह पर्वत पृथ्वी पर दस हजार योजन और शिखर पर एक हजार योजन चौड़ा है।[५७३]

वक्षारगिरि[५७४]—यहाँ से ऋषभदेव का निर्वाण हुआ था।

त्रिकूटाचल[५७५]—राक्षस द्वीप के मध्य में स्थित पर्वत।

अष्टापद[५७६]—कैलाश पर्वत।

सम्मेदशिखर[५७७]—यहाँ से वासुपूज्य, ऋषभदेव, नेमिनाथ तथा महावीर को छोड़कर शेष २० तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हुए थे।

---

५६१. पद्म० ३२।२८।
५६२. पद्म० १०।६०।
५६३. वही, ४०।४०।
५६४. वही, १।४६।
५६५. वही, १।५९।
५६६. वही, ३।४१।
५६७. वही, १।८४।
५६८. वही, २।१०२।
५६९. वही, ३।३३।
५७०. वही, ३।३३।
५७१. वही, ३।३४।
५७२. वही, ३।३५।
५७३. वही, ३।३६।
५७४. वही, ३।४२।
५७५. वही, ५।१५५।
५७६. वही, ५।१९९।
५७७. वही, ५।२४६।

मानुष पर्वत—मानुषोत्तर पर्वत। इसका मनुष्य उल्लंघन कर नहीं जा सकते।

अंजनक्षोणीधर[५७८]—अंजनगिरि अथवा नीलगिरि।

ऊर्जयन्त[५७९]—गिरनार पर्वत। यहाँ से नेमिनाथ भगवान् का निर्वाण हुआ था।

निकुञ्जगिरि[५८०]—जम्बूद्वीप का एक पर्वत।

चन्दनगिरि[५८१]—मलयगिरि।

वंशाद्रि[५८२]—रामगिरि।

तूणीगति[५८३]—यहाँ से जम्बूमाली नामक मुनि अहमिन्द्र अवस्था को प्राप्त हुए थे।

हिमवान्[५८४]—जम्बूद्वीप मे पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

महाहिमवान्[५८५]—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

निषध[५८६]—जम्बूद्वीप मे पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

नील[५८७]—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

रुक्मि[५८८]—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

शिखरी[५८९]—जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक फैला एक पर्वत जो कि दोनों ओर समुद्र को छूता है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पर्वतों के नाम भी पद्मचरित में आये हैं—

---

५७८. पद्म० ८।१९७। ५७९. पद्म० २०।५८।
५८०. वही, २७।१७। ५८१. वही, ३३।३१६।
५८२. वही, ४०।४५। ५८३. वही, ८०।१३७।
५८४. वही, १०५।१५७। ५८५. वही, १०५।१५७।
५८६. वही, १०५।१५७। ५८७. वही, १०५।१५७।
५८८. वही, १०५।१५८। ५८९. वही, १०५।१५८।

मधुपर्व १।५८, अस्ताचल (२।२०१), पंचगिरि (५।२७), किष्कु (६।८२), बलाहक (८।२४), सन्ध्यावर्त (८।२४), मेघरव (८।९०), गुंज (८।२०१), गन्धमादन (१३।३८), विन्ध्य (१४।२३०), वसन्तगिरि (२१।८०), नन्दीगिरि (२७।१६), कलिन्दगिरि (२७।१६), सह्याद्रि (२७।८७), नगोत्तर (३०।१३२), हिमवत् (हिमालय, ७६।१०), हिमनग (हिमालय, ५०।३२), चित्रकूट (३३।२०) वंशधर (३९।११), पुष्पगिरि (५३।२०१), वेलन्धर (५४।६४), सुवेल (५४।७०) मन्दर (८२।८), दुर्गगिरि (८५।१३९), श्रीपर्वत (८८।३९), सुरदुन्दुभि (११२।७३)।

समुद्र

पद्मचरित में निम्नलिखित समुद्रों के नाम मिलते हैं —

लवणाम्भोधि (लवण समुद्र) ३।३२, दक्षिण समुद्र (६।५०८), क्षीरसमुद्र (७।१७१), स्वयम्भूरमण (८९।७२)।

पशु-पक्षी आदि जीवजन्तु

पद्मचरित मे निम्नलिखित पशु-पक्षी आदि जीवजन्तुओं का उल्लेख हुआ है—कुन्थु[५९०], वारण[५९१] (हाथी), हरिण[५९२], शम्बूक[५९३], जलौका[५९४] (जोंक), हंस[५९५], काक[५९६], उलूक[५९७] (उल्लू), गो[५९८] (गाय), अविक[५९९] (भेड़), उष्ट्र[६००] (ऊँट), वलाका[६०१] (बगुला), मयूर[६०२] (मोर), गज[६०३] (हाथी), ग्राह[६०४] (मगर), कोक[६०५] (चकवा), राजहंस[६०६], मृग[६०७] (हरिण), सिंह[६०८], गण्डूपद[६०९] (पानी का साँप), अहि[६१०] (साँप), शुन:[६११] (कुत्ता),

---

५९०. पद्म० १।११।
५९१. पद्म० १।१९।
५९२. वही, १।१९।
५९३. वही, १।३१।
५९४. वही, १।३१।
५९५. वही, १।३५।
५९६ वही, १।३६।
५९७. वही, १।३७।
५९८ वही, २।१२।
५९९. वही, १।२४।
६०० वही, २।२४।
६०१. वही, २।१०।
६०२. वही, २।२८।
६०३. वही, २।५६।
६०४ वही, २।६३।
६०५. वही, २।२०३।
६०६. वही, २।२१०।
६०७. वही, २।२४७।
६०८. वही, २।२४७।
६०९. वही, २।२४७।
६१०. वही, २।४७।
६११. वही, २।२४७ ;

रुरु[६१२] (एक प्रकार का मृग), महिष[६१३] (भैंसा), वृषभ[६१४] (बैल), मीन[६१५] (मछली), नक्र[६१६], कामधेनु[६१७], वाजि[६१८] (घोड़ा), कालेयक[६१९], शृगाल[६२०], वृषदंश,[६२१] वृष[६२२] (बैल), खद्योत[६२३] (जुगनू), मधुकर,[६२४] मेष[६२५] (मेढ़ा), वृक[६२६] (भेड़िया), क्रौंच[६२७], सारस[६२८], शिखि[६२९] (मयूर), शार्दूल[६३०], बोलेय[६३१] (गधा), खर[६३२] (गधा), व्याघ्र, छाग[६३३] (बकरा), बर्हण[६३४] (मोर), शयु[६३५] (अजगर), कुरग[६३६] (हरिण), शाखामग[६३७] (बन्दर), खड्गि[६३८] (गेंडा हाथी), सारङ्गक[६३९] (हरिण), कूर्म[६४०] (कछुआ), गण्डूपद[६४१] (केंचुआ), शललि[६४२] (सेही), वैनतेय[६४३] (गरुड), कीट[६४४] (कीड़ा), शरभ[६४५] (अष्टापद), वृश्चिक[६४६] (बिच्छू), शक्ति[६४७] (सीप), मार्जार[६४८] (बिल्ली), झष[६४९] (मछली), कारण्डव[६५०], चक्रवाक[६५१] (चकवा), सारिका[६५२] (मैना),

---

६१२. पद्म० २।२४८।
६१३. पद्म० २।१०।
६१४. वही, ३।१२५।
६१५. वही, ३।१३१।
६१६. वही, ३।१३४।
६१७. वही, ३।३२०।
६१८. वही, ४।६४।
६१९. वही, ५।१०८।
६२०. वही, ५।१०८।
६२१. वही, ५।१०८।
६२२. वही, ५।१०८।
६२३. वही, ५।२१९।
६२४ वही, ५।३०७।
६२५. वही, ५।१३८।
६२६. वही, ५।१३६।
६२७. वही, ६।१४३।
६२८. वही, ६।१६५।
६२९. वही, ६।२७५।
६३०. वही, ७।३९।
६३१. वही, ७।४०।
६३२. वही, ७।४८।
६३३. वही, ७।६९।
६३४. वही, ७।६९।
६३५. वही, ९।१२०।
६३६. वही, ९।१२१।
६३७. वही, ९।१२३।
६३८. वही, ९।१२३।
६३९. वही, ९।१३८।
६४०. वही, ९।१५२।
६४१. वही, ११।२७७।
६४२. वही, १२।२४६।
६४३. वही, १२।३१२।
६४४. वही, १२।३१४।
६४५. वही, १४।३३।
६४६. वही, १४।३३।
६४७. वही, १४।७७।
६४८. वही, १४।२८०।
६४९. वही, १६।१०४।
६५०. वही, १६।१०५।
६५१. वही, १६।१०७।
६५२. वही, १७।२ ४।

कीर[६५३] (तोता), सरीसृप[६५४], पुंस्कोकिला[६५५] (कोयल), आशीविषमहानाग[६५६], गृद्ध[६५७] (गीध), ऋक्ष[६५८] (रीछ), गोमायु[६५९] (सियार), मत्स्य[६६०], कुररी[६६१], शलभ[६६२] (टिड्डी, पतिंगा), कंक[६६३], षट्पद[६६४] (भ्रमर), हरि[६६५] (सिंह), द्वीपि[६६६] (शार्दूल, चीता), केशरी[६६७] (सिंह), मातंग[६६८] (हाथी), ध्वाङ्क्ष[६६९] (कौआ), जम्बुक[६७०] (शृगाल), तुरङ्ग[६७१] (घोड़ा), पन्नग[६७२] (साँप), भोगि[६७३] (साँप), श्येन[६७४] (बाज), गजेन्द्र[६७५] (सिंह), दिग्गज[६७६], ताम्र-चूड[६७७] (मुर्गा), अश्व[६७८] (घोड़ा), व्याल[६७९] (साँप), शुक[६८०] (तोता), कौशिक[६८१] (उल्लू), तरक्षु[६८२] (भेड़िया), चमरी[६८३] (चमरी नामक मृग या गाय), श्वा[६८४], गवय[६८५] (नीलगाय), सारमेय[६८६] (कुत्ता), द्विरद[६८७], तैयंग,[६८८] दन्ति[६८९] (हाथी), रासभ[६९०] (गधा), करि[६९१] (हाथी), गरुड[६९२],

---

६५३. पद्म० १७।२९४।
६५४. पद्म० २०।१०४।
६५५. वही, २१।८५।
६५६. वही, ८१।१००।
६५७. वही, २२।६८।
६५८. वही, २२।६८।
६५९. वही, २२।६८।
६६०. वही, २६।८४।
६६१. वही, २६।१५०।
६६२. वही, २७।११।
६६३. वही, २७।७३।
६६४. वही, २८।२७।
६६५. वही, २८।८७।
६६६. वही, २८।१०४।
६६७. वही, २८।१४८।
६६८. वही, २८।१४८।
६६९. वही, २८।१४३।
६७०. वही, २८।१९३।
६७१. वही, २८।२१८।
६७२. वही, २८।२२९।
६७३. वही, २९।७७।
६७४. वही, ३०।१३०।
६७५. वही, ३२।४४।
६७६. वही, ३२।५३।
६७७. वही, २९।१००।
६७८. वही, ३२।१११।
६७९. वही, ३२।१९२।
६८०. वही, ३३।६।
६८१. वही, ३३।६।
६८२. वही, ३३।२७।
६८३. वही, ३३।२७।
६८४. वही, ३३।२८।
६८५. वही, ३३।२९।
६८६. वही, ३३।२२।
६८७. वही, ३७।१७।
६८८. वही, ३७।१७।
६८९. वही, ३७।१९।
६९०. वही, ३७।४०।
६९१. वही, ३७।४४।
६९२. वही, ३७।१२४।

श्वापद[६९३], स्थूरीपृष्ठ[६९४] (हस्तिनी), कुलीर[६९५] (केकड़ा), शिवा[६९६] (शृगालियाँ), नाग[६९७] (हाथी), अजा[६९८] (बकरी), मेषी[६९९] (गाडर), महोक्ष[७००] (बैल), जीवंजीवक[७०१] (चकोर), मेरुण्ड[७०२], श्येन[७०३] (बाज), कुरर[७०४], कपोत[७०५] (कबूतर), भृंगराज[७०६], भारद्वाज[७०७], गवली[७०८] (भैंसा), वराह[७०९] (शूकर), सुरभिपुत्र[७१०] (बैल), वायस[७११] (कौआ), गोधेर:[७१२] (गुहेरा), इभ[७१३] (हाथी), द्विप[७१४], पतंग[७१५], मण्डूकि[७१६] (मेंढकी), शशक[७१७] (खरगोश), मेक[७१८] (मेंढक), मूषक[७१९] (चूहा), बर्हिण[७२०] (मयूर), पृदाकुत[७२१] (अजगर), रुरु[७२२] (मृगविशेष), हस्ती[७२३] (हाथी), दर्दुर[७२४] (मेढक), वर्षाभू[७२५] (मेढक), कुक्कुट[७२६] (मुर्गा), शिशुमार[७२७], क्रोड[७२८] (सूकर), चकोर[७२९], सूचीशत[७३०] (सेही), गर्मुत[७३१] (भौरा), सृमर[७३२] (सामर),

---

६९३. पद्म० ३७।६३।
६९४. पद्म० ३८।२५।
६९५. वही, ३९।२७।
६९६. वही, ३९।६२।
६९७. वही, ४१।४२।
६९८. वही, ४१।१२८।
६९९. वही, ४१।१२९।
७००. वही, ४२।७।
७०१. वही, ४२।२७।
७०२. वही, ४२।२७।
७०३. वही, ४२।२७।
७०४. वही, ४२।२७।
७०५. वही, ४२।२८।
७०६. वही, ४२।२८।
७०७. वही, ४२।२८।
७०८. वही, ४२।३८।
७०९. वही, ४२।४३।
७१०. वही, ४२।४६।
७११. वही, ४८।५०।
७१२. वही, ४८।१७७।
७१३. वही, ७०।३४।
७१४. वही, ७३।१०७, १६०।
७१५. वही, ८३।५३।
७१६. वही, ८३।६४।
७१७. वही, ८५।६३।
७१८. वही, ८५।६४।
७१९. वही, ८६।६४।
७२०. वही, ८६।६४।
७२१. वही, ८६।६४।
७२२. वही, ८६।८४।
७२३. वही, ८५।६५।
७२४. वही, ८५।६५।
७२५. वही, ८५।६६।
७२६. वही, ८५।६६।
७२७. वही, ८५।६८।
७२८. वही, ९०।६।
७२९. वही, ९९।६५।
७३०. वही, ९९।५४।
७३१. वही, ९९।५४।
७३२. वही, १०४।११९।

पारापत[७३३] (कबूतर), तुरग[७३४] (घोड़ा), एणक[७३५], नैचिकी[७३६] (बैल), प्लवंग[७३७] (बन्दर), काद्रवेय[७३८] (सर्प), द्विजोत्तमः[७३९] (गरुड़) तथा परपुष्टा[७४०] (कोकिला)।

नगर-ग्राम

रथनूपुर[७४१]—विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण भाग का एक नगर।

किष्किन्धपुर[७४२]—मधुपर्वत के शिखर पर स्थित एक नगर।

रामपुरी[७४३]—अरुण ग्राम के पास देवों द्वारा बसायी हुई नगरी।

राजगृह[७४४]—मगधदेश का एक समृद्ध नगर। इसे कुशाग्रनगर भी कहते थे। यहाँ मुनिसुव्रत नाथ भगवान् का जन्म हुआ था।[७४५]

त्रिपुर[७४६]—देवताओं का नगर।

कुबेरनगर[७४७]—कुबेर की नगरी।

यमपत्तन[७४८]—यमराज का नगर।

धूर्तपत्तन[७४९]—धूर्तों का नगर।

कांचनपुर[७५०]—विदेह क्षेत्र का एक नगर।

किष्कुपुर[७५१]—दक्षिणसागर के द्वीप मे स्थित नगर।[७५२]

अलंकारपुर[७५३]—पाताल लंका।[७५४]

असुरनगर[७५५]—इसे असुरसंगीतनगर भी कहते थे। यह विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित था।

शतद्वार[७५६]—यह नगर धातकी खण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र मे स्थित था।

---

७३३. पद्म० १०५।९५।
७३४. पद्म० १०६।४०।
७३५. वही, ९९।४८।
७३६. वही, १०२।१११।
७३७. वही, १०२।१२६।
७३८. वही, ११७।२८।
७३९. वही, ११७।२८।
७४०. वही, ३२।३०।
७४१. वही, १।५९।
७४२. वही, १।६६, १।१५।
७४३. वही, १।८३।
७४४. वही, २।३३।
७४५. वही, २०।५६।
७४६. वही, २।३६।
७४७. वही, २।३८।
७४८. वही, २।३९।
७४९. वही, २।४०।
७५०. वही, ५।३५१।
७५१. वही, ६।१२२, १७७।
७५२. वही, ७।११५।
७५३. वही, ६।४९०, ५००।
७५४. वही, ६।५०६।
७५५. वही, ७।११७।
७५६. वही, १२।२२।

पुण्डरीकिणी[७५७]—यह नगरी ऋषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ तथा शान्तिनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

सुसीमा[७५८]—यह नगर अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ तथा कुन्थुनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

क्षेमा[७५९]—यह नगरी सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त तथा अरनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

सत्संचयपुरी[७६०]—यह नगरी शीतल, श्रेयांस तथा वासुपूज्य तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

सुमहानगर[७६१]—यह नगर विमलनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

अरिष्टपुर[७६२]—यह नगर अनन्तनाथ तीर्थङ्कर की पूर्वभव की राजधानी थी।

सुमाद्रिका[७६३]—यह नगरी धर्मनाथ तीर्थङ्कर की पूर्वभव की राजधानी थी।

वीतशोका[७६४]—यह नगरी मल्लिनाथ तीर्थङ्कर की पूर्वभव की राजधानी थी।

चम्पा[७६५]—यह नगरी मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की पूर्वभव की राजधानी थी। इसमें वासुपूज्य जिनेन्द्र का जन्म तथा मोक्ष हुआ था।[७६६]

कौशाम्बी[७६७]—यह नगरी नमिनाथ तीर्थङ्कर की पूर्वभव की राजधानी थी। इसे वत्सनगरी भी कहते थे। यहाँ पद्मप्रभ जिनेन्द्र का जन्म हुआ था।[७६८]

नागपुर[७६९]—यह नगर नेमिनाथ तीर्थङ्कर की पूर्वभव की राजधानी थी।

साकेता[७७०]—यह नगरी पार्श्वनाथ तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी। इसमें अजितनाथ[७७१] तथा सुमतिनाथ[७७२] तीर्थङ्कर का जन्म हुआ था।

---

७५७. पद्म० २०।११, १४।
७५८. पद्म० २०।११, १५।
७५९. वही, २०।११, १५।
७६०. वही, २०।१२।
७६१. वही, २०।१४।
७६२. वही, २०।१४।
७६३. वही, २०।१४।
७६४. वही, २०।१५।
७६५. वही, २०।१५।
७६६. वही, २०।४८, ६१।
७६७. वही, २०।१६।
७६८. वही, २०।४२।
७६९. वही, २०।१६।
७७०. वही, २०।१६।
७७१. वही, २०।३८।
७७२. वही, २०।४१।

छत्राकारपुर[७७३]—यह वर्द्धमान तीर्थंकर की पूर्वभव की राजधानी थी।

विनीतानगरी—इसे अयोध्या भी कहते थे। इसमें ऋषभदेव तथा अनन्तनाथ का जन्म हुआ था।[७७४] यह अभिनन्दननाथ तीर्थंकर की राजधानी थी[७७५]। यह नगरी नौ योजन चौडी तथा बारह योजन लम्बी थी। इसकी परिधि अड़तीस योजन थी[७७६]।

काशीपुरी[७७७]—इस नगरी में सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

चन्द्रपुरी[७७८]—इस नगरी मे चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

काकन्दी[७७९]—इस नगरी में सुविधि (पुष्पदन्त) तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

भद्रिका[७८०]—इस नगर मे शीतलनाथ भगवान् का जन्म हुआ था।

सिंहपुरी[७८१]—इस नगरी मे श्रेयांसनाथ भगवान् का जन्म हुआ था।

काम्पिल्यनगर[७८२]—इसमे विमलनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

रत्नपुरी[७८३]—यह धर्मनाथ तीर्थंकर की जन्मनगरी थी।

हस्तिनागपुर[७८४]—इस नगर में शान्ति कुन्थु तथा अरनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

मिथिला—इस नगर में मल्लिनाथ तथा नमिनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।[७८५]

शौरिपुर[७८६]—यहाँ नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

वाराणसी[७८७]—यहाँ पार्श्वनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

कुण्डपुर[७८८]—यहाँ वर्द्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ था।

पावा[७८९]—यहाँ वर्द्धमान तीर्थंकर का निर्वाण हुआ था।

हरिपुर[७९०]—यह नगर विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित था।

---

७७३. पद्म० २०।१६।
७७४. पद्म० २०।३७।
७७५. वही, २०।४०।
७७६. वही, ८१।१२०।
७७७. वही, २०।४३।
७७८. वही, २०।४४।
७७९. वही, २०।४५।
७८०. वही, २०।४६।
७८१. वही, २०।४७।
७८२. वही, २०।४९।
७८३. वही, २०।५१।
७८४. वही, २०।५२-५४।
७८५. वही, २०।५५, २०।५७।
७८६. वही, २०।५८।
७८७. वही, २०।५९।
७८८. वही, २०।६०।
७८९. वही, २०।६०।
७९०. वही, २१।४।

मयूरमालनगर[७९१]—यह विजयार्द्ध पर्वत के दक्षिण और कैलाश पर्वत के उत्तर की ओर स्थित अर्द्धबर्बर देश का एक नगर था।

नैषिक[७९२]—एक ग्रामविशेष। पद्मचरित के कुछ संस्करणों में इसका नाम नैमिष भी मिलता है।[७९३]

मेघरव[७९४]—विन्ध्यवन की भूमि में स्थित एक स्थान है जहाँ इन्द्रजित के साथ मेघवाहन मुनि रहे। उपर्युक्त घटना के कारण यह स्थान मेघरव तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पिठरक्षित[७९५]—रजोगुण तथा तमोगुण से रहित कुम्भकर्ण योगी नर्मदा के जिस तीर पर निर्वाण को प्राप्त हुए थे वहाँ पिठरक्षित नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

प्रजाग[७९६]—नीलांजना अप्सरा का नृत्य देख भगवान् ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को राज्य दे प्रजा से निस्पृह हो घर छोड़कर तिलक नाम के उद्यान में गए इसलिए लोक में वह उद्यान प्रजाग इस नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चन्द्रादित्यपुर[७९७]—पुष्कर द्वीप का एक नगर।

रत्नपुर[७९८]—विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण दिशा का एक नगर।

क्षेत्र[७९९]—भरतक्षेत्र का एक नगर।

क्षेमपुरी[८००]—मेरुपर्वत की पश्चिम दिशा मे स्थित एक नगरी।

दिति[८०१]—ऐरावत क्षेत्र का एक नगर।

मत्तकोकिल[८०२]—यह जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में विजयावती नगरी के समीप स्थित एक ग्राम था।

विजयावती[८०३]—जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र की एक नगरी।

उपर्युक्त नगरों के अतिरिक्त पद्मचरित में पुष्पान्तक,[८०४] अरुणग्राम,[८०५]

---

७९१. पद्म० २७।५-७। ७९२. पद्म० ५५।५७।
७९३. पद्मपुराण (भाग २) पृ० ३५५ (अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य)।
७९४. पद्म० ८०।१३६। ७९५. पद्म० ८०।१४०।
७९६. वही, ८५।३८-४०। ७९७. वही, ८५।९६।
७९८. वही, ९३।१। ७९९. वही, १०६।१०।
८००. वही, १०६।७५। ८०१. वही, १०६।१८७।
८०२. वही, १०६।१९०। ८०३. वही, १०६।१९०।
८०४. वही, ११६१। ८०५. वही, ११८३।

कुमदावती,[८०६] चक्रवालपुर,[८०७] विहायस्तिलक,[८०८] सदृतु,[८०९] रजोवली,[८१०] पद्मक,[८११] चन्द्रपुर,[८१२] रत्नसंचय,[८१३] पृथिवीपुर,[८१४] किन्नरगीत,[८१५] पोदनपुर,[८१६] गन्धर्वगीतनगर,[८१७] सन्ध्याकार,[८१८] सुवेल,[८१९] मनोह्लाद,[८२०] मनोहर,[८२१] हंसद्वीप,[८२२] हरि,[८२३] योध,[८२४] समुद्र,[८२५] कांचन,[८२६] अर्धस्वर्गोत्कृष्ट,[८२७] आवर्त,[८२८] विघट,[८२९] अम्भोद,[८३०] उत्कृष्ट,[८३१] उत्कट,[८३२] स्फुट,[८३३] दुर्ग्रह,[८३४] तट,[८३५] तोय,[८३६] आवली,[८३७] रत्नद्वीप,[८३८] मेघपुर,[८३९] हरि,[८४०] जलधि,[८४१] ध्वनि,[८४२] हंसद्वीप,[८४३] भरक्षम,[८४४] अर्धस्वर्गोत्कट,[८४५] रोधन,[८४६] अमल,[८४७] कान्त,[८४८] सर,[८४९] अलंघन,[८५०] नभोभानु,[८५१]

---

८०६. पद्म० ५।३७ ।
८०७. पद्म० ५।७६ ।
८०८. वही, ५।७८ ।
८०९. वही, ५।९६ ।
८१०. वही, ५।१२४ ।
८११. वही, ५।११४ ।
८१२. वही, ५।१३५ ।
८१३. वही, ५।१३७ ।
८१४. वही, ५।१३८ ।
८१५. वही, ५।१७९ ।
८१६. वही, ५।१७९ ।
८१७. वही, ५।३६७ ।
८१८. वही, ५।३७१ ।
८१९. वही, ५।३७१ ।
८२०. वही, ५।३७१ ।
८२१. वही, ५।३७१ ।
८२२. वही, ५।३७१ ।
८२३. वही, ५।३७१ ।
८२४. वही, ५।३७१ ।
८२५. वही, ५।३७१ ।
८२६. वही, ५।३७१ ।
८२७. वही, ५।३७२ ।
८२८. वही, ५।३७२ ।
८२९. वही, ५।३७३ ।
८३०. वही, ५।३७३ ।
८३१. वही, ५।३७३ ।
८३२. वही, ५।३७३ ।
८३३. वही, ५।३७३ ।
८३४. वही, ५।३७३ ।
८३५. वही, ५।३७३ ।
८३६. वही, ५।३७३ ।
८३७. वही, ५।३७३ ।
८३८. वही, ५।३७३ ।
८३९. वही, ६।२ ।
८४०. वही, ६।६६ ।
८४१. वही, ६।६६ ।
८४२. वही, ६।६६ ।
८४३. वही, ६।६६ ।
८४४. वही, ६।६७ ।
८४५. वही, ६।६७ ।
८४६. वही, ६।६७ ।
८४७. वही, ६।६८ ।
८४८. वही, ६।६७ ।
८४९. वही, ६।६७ ।
८५०. वही, ६।६८ ।
८५१. वही, ६।६८ ।

क्षेम,[८५२] वज्रपंजर,[८५३] मन्दरकुंज,[८५४] नाकार्धपुर,[८५५] हेमपुर,[८५६] प्रीतिकूट-पुर,[८५७] कनकाभपुर,[८५८] द्योतिःसंग,[८५९] मेघपुर,[८६०] यक्षगीत,[८६१] किन्नर-पुर,[८६२] गन्धर्वपुर,[८६३] पुष्पान्तकपुर,[८६४] स्वयंप्रभ,[८६५] कुम्भपुर,[८६६] ज्योतिः-प्रभपुर,[८६७] काम्पिल्यनगर,[८६८] सूर्योदयपुर,[८६९] सुरसंगीतपुर,[८७०] किष्कुप्रमोद-नगर,[८७१] राजपुर,[८७२] दुर्लङ्घ्यनगर,[८७३] शिखापदनगर,[८७४] अरिंजयपुर,[८७५] अरुणनगर,[८७६] हनूरुहपुर,[८७७] महेन्द्रनगर,[८७८] कर्णकुण्डलपुर,[८७९] पृथ्वीपुर,[८८०] गोवर्धनपुर,[८८१] धान्यपुर,[८८२] विजयपुर,[८८३] शैलनगर,[८८४] द्वापुरी,[८८५] चक्रपुर,[८८६] कुशाग्रपुर,[८८७] मथुरा,[८८८] पृथिपुरी,[८८९] आनन्दपुरी,[८९०] नन्द-पुरी,[८९१] सुसीमा,[८९२] कमलसंकलपुर,[८९३] कौतुकमङ्गलनगर,[८९४] विदग्ध-

---

८५२. पद्म० ६।६८।
८५३. पद्म० ६।३९६।
८५४. वही, ६।४०९।
८५५. वही, ६।४१६।
८५६. वही, ६।५६४।
८५७. वही, ६।५६६।
८५८. वही, ६।५६७।
८५९. वही, ७।९।
८६०. वही, ७।१११।
८६१. वही, ७।११८।
८६२. वही, ७।११८।
८६३. वही, ७।११८।
८६४. वही, ७।१६४।
८६५. वही, ८।१३८।
८६६. वही, ८।१४२।
८६७. वही, ८।१५०।
८६८. वही, ८।२८१।
८६९. वही, ८।३६२।
८७०. वही, ८।४९४।
८७१. वही, ९।१३।
८७२. वही, ११।८।
८७३. वही, १२।१३४।
८७४. वही, १३।५५।
८७५. वही, १३।७३।
८७६. वही, १७।१५४।
८७७. वही, १७।३९७।
८७८. वही, १८।१५।
८७९. वही, १९।१०३।
८८०. वही, २०।१२७।
८८१. वही, २०।१३७।
८८२. वही, २०।१७०।
८८३. वही, २०।१८५।
८८४. वही, २०।२०७।
८८५. वही, २०।२२१।
८८६. वही, २०।२२१।
८८७. वही, २०।२२१।
८८८. वही, २०।२२२।
८८९. वही, २०।२२९।
८९०. वही, २०।२३०।
८९१. वही, २०।२३०।
८९२. वही, २०।२३१।
८९३. वही, २२।१७३।
८९४. वही, २४।२।

नगर,[८९५] रन्ध्रपुर,[८९६] नन्दनिका,[८९७] सूरपुर,[८९८] दारुग्राम,[८९९] पुष्कलावती-नगरी,[९००] गान्धारी,[९०१] उज्जयिनी,[९०२] दशाङ्गपुर,[९०३] दशारण्यपुर,[९०४] कुन्दनगर,[९०५] वैजयन्तपुर,[९०६] नद्यावर्तपुरी,[९०७] क्षेमांजलिपुर,[९०८] वंशस्थ-युति,[९०९] पद्मिनी,[९१०] यक्षस्थान,[९११] कौमुदीनगरी,[९१२] गन्धवती,[९१३] कम्बर-ग्राम,[९१४] अलकारोदय,[९१५] मृत्तिकावती,[९१६] देवोपगीतनगर,[९१७] वेणातट,[९१८] कूर्म्मपुर,[९१९] वेलन्धरपुर,[९२०] हंसपुर,[९२१] कुशस्थल,[९२२] प्रतिष्ठपुर,[९२३] अक्षपुर,[९२४] धान्यग्राम,[९२५] व्याघ्रपुर,[९२६] सुरेन्द्ररमण,[९२७] वालिखिल्यपुर,[९२८] दशाङ्गभोगनगर,[९२९] वन्हिप्रभ,[९३०] आलोकनगर,[९३१] श्रीनगर,[९३२] मथुरा,[९३३] रविप्रभ,[९३४] शशाङ्कनगर,[९३५] शिवमन्दिर,[९३६] अमृतपुर,[९३७] लक्ष्मीधर,[९३८]

---

८९५. पद्म० २६।१३ ।
८९६. पद्म० २८।२१९ ।
८९७. वही, २८।२१९ ।
८९८. वही, २८।२२० ।
८९९. वही, ३०।११६ ।
९००. वही, ३१।३० ।
९०१. वही, ३१।४१ ।
९०२. वही, ३३।७४ ।
९०३. वही, ३३।७५ ।
९०४. वही, ३३।८० ।
९०५. वही, ३३।४३ ।
९०६. वही, ३६।११ ।
९०७. वही, ३७।६२ ।
९०८. वही, ३८।५७ ।
९०९. वही, ३९।९ ।
९१०. वही, ३९।९५ ।
९११. वही, ३९।१३७ ।
९१२. वही, ३९।१८० ।
९१३. वही, ४१।११५ ।
९१४. वही, ४१।१२८ ।
९१५. वही, ४३।२५ ।
९१६. वही, ४८।४३ ।
९१७. वही, ४८।९७ ।
९१८. वही, ४८।१३८ ।
९१९. वही, ४८।१६६ ।
९२०. वही, ५४।६५ ।
९२१. वही, ५४।७७ ।
९२२. वही, ५९।६ ।
९२३. वही, ६४।५२ ।
९२४. वही, ७७।५७ ।
९२५. वही, ८०।१५९ ।
९२६. वही, १७३ ।
९२७. वही, ८०।२१ ।
९२८. वही, ८२।१४ ।
९२९. वही, ८२।१५ ।
९३०. वही, ९४।४ ।
९३१. वही, ८५।१४१ ।
९३२. वही, ८८।३९ ।
९३३. वही, ८९।५८ ।
९३४. वही, ९४।४ ।
९३५. वही, ८५।१३३ ।
९३६. वही, ९४।४ ।
९३७. वही, ९४।५ ।
९३८. वही, ९४।५ ।

किन्नरोद्गीत[९३९] जीमूतशिखर,[९४०] मर्त्यानुगीत,[९४१] बहुरव,[९४२] मलय,[९४३] श्रीगृह,[९४४] भास्कराभ,[९४५] अरिंजय,[९४६] ज्योतिःपुर,[९४७] शशिच्छाय,[९४८] गान्धार,[९४९] श्रीविजयपुर,[९५०] यक्षपुर,[९५१] तिलकपुर,[९५२] पुण्डरीकपुर,[९५३] पृथिवीनगर,[९५४] लोकाक्षनगर,[९५५] मृणालकुण्ड,[९५६] शामली,[९५७] शालिग्राम,[९५८] कांचनस्थान,[९५९] कोशलापुरी[९६०] नगरों के नाम आए हैं—

लौकिक मान्यतायें व प्रथायें

पद्मचरित से अनेक लौकिक मान्यताओं व प्रथाओं का निर्देश प्राप्त होता है, जो कि उस समय जनसाधारण में प्रचलित थीं। ये मान्यतायें निम्नलिखित हैं—

भूत-प्रेतों में विश्वास—अष्टम पर्व में कहा गया है कि नागवती के विरह में हरिषेण भूताक्रान्त मानव (ग्रही) के समान इधर-उधर घूमने लगा।[९६१] एक स्थान पर हरिषेण अञ्जनगिरि हाथी को जोकि महावत के वश में नहीं था, सामने आते देखकर महावत से हाथी को दूसरे स्थान पर ले जाने को कहता है कि जान पड़ता है कि तू मृत्यु के समीप पहुँचने वाला है इसलिए तो हाथी के विषय में गर्व धारण कर रहा है। अथवा तुझे कोई भूत लग रहा है। यदि भला चाहता है तो शीघ्र ही इस स्थान से चला जा।[९६२] एक अन्य स्थान पर अञ्जना की ओर आते हुए सिंह के विषय में कवि कल्पना करता है—क्या यह मृत्यु है? अथवा दैत्य है अथवा कृतान्त है अथवा प्रेतराज है अथवा कलिकाल

---

९३९. पद्म० ९४।५।
९४०. पद्म० ९४।५।
९४१. वही, ९४।६।
९४२. वही, ९४।६।
९४३. वही, ९४।६।
९४४. वही, ९४।७।
९४५. वही, ९४।७।
९४६. वही, ९४।७।
९४७. वही, ९४।७।
९४८. वही, ९४।७।
९४९. वही, ९४।७।
९५०. वही, ९४।८।
९५१. वही, ९४।८।
९५२. वही, ९४।८।
९५३. वही, ९७।१८४।
९५४. वही, १०१।५।
९५५. वही, १०१।६९।
९५६. वही, १०६।१३३।
९५७. वही, १०८।४०।
९५८. वही, १०९।५२।
९५९. वही, ११०।१।
९६०. वही, ११८।५३।
९६१. वही, ८।३१९।
९६२. नूनं मृत्युसमीपोऽसि यन्मदं वहसे गजे।
गृहेण वा गृहीतोऽसि व्रजास्मादाशु गोचरात्॥ पद्म० ८।३३७।

है, आदि-आदि ।[९६३] इन सबसे विदित होता है कि उस समय लोग भूत-प्रेतों में विश्वास करते थे । भूत किसी व्यक्ति को आविष्ट कर उससे किसी भी प्रकार की प्रवृत्ति करा सकता है, ऐसा वे लोग मानते थे ।

वटवृक्ष की पूजा—उस समय वटवृक्ष (न्यग्रोध वृक्ष) की पूजा होती थी । इसके प्रारम्भ के विषय में कहा गया है कि एक बार जब भगवान् ऋषभदेव वटवृक्ष के समीप विद्यमान थे तब उन्हें समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्रकट हुआ ।[९६४] उस समय उस स्थान पर देवों द्वारा भगवान् की पूजा की गई थी इसलिए उसी पद्धति से आज भी लोग प्रवृत्ति करते हैं[९६५] अर्थात् वट-वृक्ष की पूजा करते हैं ।

शकुन में विश्वास—किसी कार्य के फल के निर्धारण में लोग शकुन को बहुत महत्त्व देते थे । शुभ शकुन कार्य-सिद्धि का द्योतक तथा अपशकुन कार्य में बाधा आने या कार्यसिद्धि न होने का प्रतीक समझा जाता था । उस समय में प्रचलित शकुन के प्रकारों आदि का निरूपण पहले किया जा चुका है ।

ज्योतिष विद्या पर विश्वास—किसी भी मंगल कार्य करने से पूर्व ग्रह, नक्षत्र आदि की ज्योतिष शास्त्रीय गणना के आधार पर शुभमुहूर्त का निश्चय किया जाता था, ताकि कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो । अञ्जना और पवनजय के पिताओं ने जब अपनी पुत्री और पुत्र के वैवाहिक सम्बन्ध का निश्चय किया तब समस्त ज्योतिषियों की गति को जानने वाले ज्योतिषियों ने तीन दिन बीतने के बाद वैवाहिक कार्य करना उचित है, ऐसी सलाह दी ।[९६६]

शस्त्रपूजा—जब रथनूपुर के विद्याधर राम की बल-परीक्षा के लिए वज्रावर्त और सागरावर्त धनुषों को मिथिला ले जाने लगे उस समय उन्होंने जिनेन्द्र भगवान् की पूजा और स्तुति करने के पश्चात् गदा, हल आदि शस्त्रों से युक्त उन दोनों धनुषों की पूजा की ।[९६७] इस उल्लेख से सिद्ध होता है कि उस समय शस्त्रपूजा की जाती थी ।

---

९६३. पद्म० १७।२३० ।

९६४. ऋषभस्य तु संजातं केवलं सर्वभासनम् ।
महान्यग्रोधवृक्षस्य स्थितस्यासन्नगोचरे ॥ पद्म० ११।२९२ ।

९६५. तत्प्रदेशे कृता देवैस्तस्मिन् काले विभोर्यतः ।
पूजा तेनैव मार्गेण लोकोऽद्यापि प्रवर्तते ॥ पद्म० ११।२९३ ।

९६६. पद्म० १५।९३ ।

९६७. पद्म० २८।१७१-१७३ ।

आचार-व्यवहार

आचार-व्यवहार ही किसी देश अथवा काल की संस्कृति को समझने का सबसे बड़ा माध्यम है। पद्मचरितकालीन समाज को भी बहुत कुछ इसी आधार पर परखा जा सकता है। सभ्यता, शिष्ट व्यवहार, मधुरसंवाद, विनम्र व्यवहार और उच्च शिष्टाचार उस युग की विशेषता थी।

सामाजिक शिष्टाचार में अतिथि-सत्कार को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। द्वितीय पर्व मे मगधदेश का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—'आहार आदि की व्यवस्था से उस देश के गृहस्थ पथिकों को सन्तुष्ट करते हैं इस कारण उस देश मे लोगों का सदा आवागमन होता रहता है।'[९६८] मुनिवेषधारी अतिथि को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि समाज को नैतिकता की ओर से जाने तथा आत्मिक गुणों की ओर उन्मुख करने मे उस समय मुनियों का अधिक हाथ रहता था। मुनि अवस्था मे जब भगवान् ऋषभदेव एक बार हस्तिनापुर पहुँचे तब राजा श्रेयास महल के नीचे उतरकर अन्तःपुर तथा अन्य मित्र जनों के साथ उनके पास आया और हाथ जोड़कर स्तुति पाठ करता हुआ प्रदक्षिणा देने लगा।[९६९] सर्वप्रथम राजा ने अपने केशों से भगवान् के चरणों का मार्जन कर आनन्द के आँसुओं से उनका प्रक्षालन किया।[९७०] रत्नमयी पात्र से अर्घ्य देकर उनके चरण धोए, पवित्र स्थान में उन्हें विराजमान किया और बाद में उनके गुणों से आकृष्ट हो कलश मे रखा हुआ इक्षु का शीतल जल देकर विधि-पूर्वक आहार कराया।[९७१]

भगवान् को आहार देने का फल यह हुआ कि ऐसे उत्कृष्ट पात्र को दान देते देखकर देवता भी हर्षित होकर साधु-साधु और धन्य-धन्य के शब्दों से आकाश को गुंजायमान कर दुन्दुभि बाजो का शब्द करने लगते थे।[९७२] अत्यन्त सुखकर स्पर्श से युक्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाली वायु बरसने लगती थी और आकाश मे रत्नो की धारा बरसने लगती थी।[९७३]

स्त्रियाँ भी अतिथि-सत्कार में निपुण होती थीं। दशानन के यहाँ एक बार जब मन्दोदरी का पिता मय पहुँचा तब उस समय महल के सातवें खण्ड मे दशानन की बहिन चन्द्रनखा थी। उसने सबका अतिथि-सत्कार किया था।[९७४] उस

---

९६८. पद्म० २।३०। ९६९. पद्म० ४।१२, १३।
९७०. वही, ४।१४। ९७१. वही, ४।१५, १६।
९७२. वही, ४।१७। ९७३. वही, ४।१९।
९७४. अथेन्दुनखया तस्य कृताभ्यागमसत्क्रिया ॥ पद्म० ८।३१।

समय वन में रहने वाले तापस भी अतिथि-सत्कार करने में अपना गौरव अनुभव करते थे।[९७५] राम, लक्ष्मण और सीता के साथ जब तापसों के एक सुन्दर आश्रम में पहुँचे तब उन तापसों ने विभिन्न प्रकार के मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदर से भरे स्वागत के शब्द, अर्घ्य के साथ दिए गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटी का दान और कोमल पत्तों की शय्या आदि थकावट को दूर करने वाले उपचार से उनका बहुत सम्मान किया।[९७६] अतिथियों के लिए अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु देने मे लोग संकोच का अनुभव नही करते थे। एक बार जब लक्ष्मण वज्रकर्ण के यहाँ गए तब वज्रकर्ण ने आओ! शीघ्र प्रवेश करो, कहकर उनको प्रवेश कराया।[९७७] लक्ष्मण भी सन्तुष्ट होकर विनीत वेष[९७८] में उनके पास गया। वज्रकर्ण ने विश्वस्त पुरुष से कहा—"जो अन्न मेरे लिए तैयार किया है वह इन्हें शीघ्र आदर के साथ खिलाओ।"[९७९] उस समय के लोग अपने से बड़ों का विशेष ध्यान रखते थे। लक्ष्मण ने वज्रकर्ण को उत्तर दिया कि "मैं यह भोजन यहाँ नहीं करूँगा। पास ही मे मेरे अग्रज ठहरे हुए हैं, पहले उन्हें भोजन कराऊँगा, इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ।"[९८०] एवमस्तु कहकर राजा ने उन्हें उत्तमोत्तम व्यंजनो से युक्त बहुत अन्न दिया।[९८१] वह भोजन इतना मधुर था कि उससे सन्तुष्ट होकर राम ने वज्रकर्ण की भद्रता की सराहना की। साथ ही यह भी कहा कि ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाई के लिए भी नहीं दिया जाता।[९८२] इस अमृततुल्य अन्न के खाने से हमारा मार्ग से उत्पन्न हुआ गर्मी का श्रम एक साथ नष्ट हो गया है।[९८३] इस प्रकार उन्होंने इस भोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।[९८४]

बड़ों का अभिवादन करना उस समय के शिष्टाचार का एक अङ्ग था। सिर झुकाकर बड़ी विनय से चरणों मे नमस्कार करना,[९८५] अर्घ्यादि की भेंट देना,[९८६] हाथ जोड़कर प्रणाम करना,[९८७] वन्दना करना,[९८८] तीन प्रदक्षिणा

---

९७५. पद्म० ३३।१०।
९७६. पद्म० ३३।८, ९।
९७७. वही, ३३।१९३।
९७८. विनीतवेषसम्पन्नो वीक्षितं सादरं नरैः। पद्म० ३३।१९४।
९७९. पद्म० ३३।१९५।
९८०. पद्म० ३३।१९६।
९८१. वही, ३३।१९७।
९८२. वही, ३३।१९९, २००।
९८३. वही, ३३।२०१।
९८४. वही, ३३।२०२-२०४।
९८५. वही, ८।३९५।
९८६. वही, १८।२०।
९८७. वही, १६।७१।
९८८. वही, १७।१४७।

देना,[९८९] हाथ जोड़कर नमस्कार करना,[९९०] चरणवन्दना[९९१] तथा जयजयकार करना,[९९२] ये सब सम्मान प्रकट करने की शैलियाँ थी।

आलिंगन करने की उस समय परम्परा थी। आलिंगन वास्तविक सौहार्द्र का प्रतीक माना जाता था। जिस समय दशानन आदि तीनों भाइयों का राज्याभिषेक हुआ उस समय आनन्द से व्याप्त नेत्रों वाले माता-पिता ने प्रणाम करते हुए दशानन आदि के शरीर का चिरकाल तक स्पर्श किया।[९९३] अतिचिरकाल तक जीते रहो (जीवतातिचिरं कालम्)[९९४] ऐसा कहकर सुमाली, माल्यवान्, सूर्यरज, ऋक्षरज और रत्नश्रवा आदि गुरुजनों ने स्नेहवश उनका बार-बार आलिंगन किया (आलिलिंगुः पुनः पुनः)[९९५]। रत्नजटी विद्याधर ने राम को रावण द्वारा सीता के हरे जाने की सूचना दी तब सूचना-प्राप्ति के कारण हर्षित हो नाना प्रकार के स्नेह को धारण करते हुए राम ने आदर से रत्नजटी के साथ अपने शरीर का स्पर्श दिया।[९९६] राम बार-बार आलिंगन कर उससे समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्खलित हुए अक्षरों में बार-बार उक्त समाचार सुनाता था।[९९७] हनुमान् द्वारा युद्ध में पकड़े जाने पर मातामह महेन्द्र ने उसका मस्तक सूँघा और रोमांचित हो उसका आलिंगन किया।[९९८] वन को प्रस्थान करने के बाद राम-लक्ष्मण जब अरजिनेन्द्र के मन्दिर में ठहर गए तब उनकी मातायें तत्काल दौड़ी आयी। आँसुओं से युक्त हो उन्होंने बार-बार पुत्रों का आलिंगन किया[९९९] और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा की। राम का वनगमन जानकर भरत छह दिन में ही राम के पास पहुँच गया। वह घोड़े से उतर पड़ा और जहाँ से राम दिखाई दे रहे थे उतने मार्ग में पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँच गया तथा उनके चरणों का आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया।[१०००] पति-पत्नी के आलिङ्गन के अनेक प्रसङ्ग पद्मचरित में मिलते हैं।[१००१] इस प्रकार पद्मचरित में परस्पर आलिङ्गन के अनेक उदाहरण हैं। इन सबमें मन

९८९. पद्म० १७।१२३।
९९०. पद्म० १७।१२३।
९९१. वही, ७।३६७।
९९२. वही, २१।८५।
९९३. सर्वेपथुकरैणैषां गात्रस्पृष्यतां चिरम्।
पितरौ सप्रणामानामानन्दाम्बाकुलेक्षणौ ॥ पद्म० ७।३५८।
९९४. पद्म० ७।३६८।
९९५. पद्म० ७।३६९।
९९६. अंगस्पृशं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥ पद्म० ४८।९६।
९९७. पद्म० ४८।९८।
९९८. अजिघ्रन्मस्तके नप्त्रं पुलकी परिषस्वजे ॥ पद्म० ५०।४५।
९९९. पद्म० ३१।२३१।
१०००. पद्म० ३२।११८।
१००१. वही, १६।१८३, १८४, १८५, २२९, ७३।१५२-१५३, ५४।१५।

की शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पति और पुत्र दोनों का आलिङ्गन करती है परन्तु भाव जुदे-जुदे होते हैं।[1002]

मनुष्य मिलते समय सबसे पहले कुशल-क्षेम पूछा करते थे। अञ्जना तथा बसन्तमाला को गुफा में जब मुनिराज दिखाई पड़े तब दोनों सखियों ने कहा— हे भगवन्! हे कुशल अभिप्राय के धारक! हे उत्तम चेष्टाओं से सम्पन्न! आपके शरीर मे कुशलता तो है? क्योंकि समस्त साधनों का मूल कारण यह शरीर ही है। हे गुणों के सागर! आपका तप उत्तरोत्तर बढ़ तो रहा है? हे इन्द्रियविजय के धारक! आपका विहार उपसर्गरहित तथा महाक्षमा से युक्त तो है? हे प्रभो! हम आपसे जो इस तरह कुशल पूछ रही हैं सो ऐसी पद्धति है यही ध्यान रखकर पूछ रही हैं अन्यथा आप जैसे लोग किस कुशल के योग्य नहीं हैं? आप जैसे पुरुषों की शरण में पहुँचे हुए लोग कुशलता से युक्त हो जाते है, अतः स्वयं अपने-आपके विषय मे अच्छे और बुरे पदार्थों की चर्चा ही क्या करना?[1003] विद्या सिद्ध करने के बाद दशानन आदि से उनके गुरुजनों ने कहा कि हे पुत्रो! इतने दिनों तक तुम सुख से रहे?[1004] इस प्रकार कुशल-क्षेम के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

बड़े लोग छोटो के प्रति वत्स![1005] अहो पुत्र![1006] हे पुत्र![1007] कहकर सम्बोधित करते थे। बड़ा भाई छोटे भाई के लिए हे तात! हे बालक! हे अनुज! नाम लेकर सम्बोधित करता था।[1008] बड़ों के लिए हे देव! (देव),[1009] हे नाथ! (नाथ),[1010] हे महाबुद्धिमान्![1011] (महाबुद्धे), हे प्रभो! (प्रभो),[1012] हे स्वामिन्! (स्वामिन्),[1013] हे परमेश्वर! (परमेश्वर),[1014] हे विचक्षण! (विचक्षण),[1015] हे नाथ! (नाथ),[1016] हे देव! (देव),[1017] हे आर्य! (आर्य),[1018] हे पूज्य! (पूज्य),[1019] राजा के लिए हे राजन्! इस प्रकार सम्बोधित कर बातचीत की जाती थी।

१००२. पद्म० ३१।२३३।
१००३. पद्म० १७।१२६-१२९।
१००४. वही, ७।३७२।
१००५. वही, ७।३७८।
१००६. वही, ७।३८०।
१००७. वही, ३२।१२८।
१००८. वही, ३६।५४।
१००९. वही, ५४।२२।
१०१०. वही, ५४।१८।
१०११. वही, ५४।२५।
१०१२. वही, ५५।९।
१०१३. वही, ५५।१०।
१०१४. वही, ५५।१०।
१०१५. वही, ५५।१२।
१०१६. वही, ३२।४२।
१०१७. वही, ३२।४७।
१०१८. वही, ५०।४७।
१०१९. वही, ५०।४७।

स्त्री के प्रति गुण तथा समय के अनुसार हे पावने ! (पावने),[1020] हे स्वामिनि ! (स्वामिनि),[1021] हे साध्वि ! (साध्वि),[1022] हे सुन्दरि ! (सुन्दरि),[1023] हे विदुषी ! (विदुषि),[1024] हे शुभे ! (शुभे),[1025] हे पूजिते ! (पूजिते),[1026] हे सुमुखि ! (सुमुखि),[1027] हे प्रिये ![1028] हे वरानने ![1029] हे भद्रे ![1030] हे प्राणवल्लभे ![1031] हे सुन्दर जाँघों वाली ! (वरोरु),[1032] हे सुन्दर विलासों को धारण करने वाली (सुविभ्रमे),[1033] हे मुग्धे ! (मुग्धे),[1034] हे परम सुन्दरि ! (परम सुन्दरि),[1035] हे सौम्यमुखी ! (सौम्य-वक्त्रे),[1036] हे भामिनि (भामिनि)[1037] इत्यादि कहा जाता था। सामान्य व्यक्ति के लिए हे भद्र ! (भद्र),[1038] हे कुलीन ! (सद्गोत्र),[1039] हे भाई ! (भ्रातः)[1040] इत्यादि कहकर सम्बोधित किया जाता था।

आपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए शपथ या सौगन्ध खाने की परम्परा थी। लक्ष्मण ने वज्रकर्ण तथा सिंहोदर को कभी शत्रुता नहीं करेंगे इस प्रकार शपथ दिलाकर दोनों की मित्रता कराई थी।[1041] विभीषण और राम की मैत्री तब हुई जब विभीषण अपनी निश्छलता की शपथ खा चुका[1042]। लक्ष्मण ने भाई के साथ वन को जाते समय वनमाला को बहुत समझाया किन्तु वह न मानी तो लक्ष्मण ने शपथ खाई कि यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य जिस गति को प्राप्त होते हैं उसी गति को प्राप्त होऊँ।[1043] मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओं की निन्दा करने वाले अहंकारी मनुष्य के पाप से लिप्त होऊँ।[1044] दो व्यक्तियों में परस्पर

१०२०. पद्म० ५३।५४।
१०२१. पद्म० ५३।५५।
१०२२. वही, ५३।५५।
१०२३. वही, ५२।८१।
१०२४. वही, ५२।८१।
१०२५. वही, ५३।५९।
१०२६. वही, ५३।५९।
१०२७. वही, ३६।४२।
१०२८. वही, ३८।३७।
१०२९. वही, ३८।३७।
१०३०. वही, ३८।३७।
१०३१. वही, ३८।४०।
१०३२. वही, ३८।४२।
१०३३. वही, ३८।३८।
१०३४. वही, ३६।४८।
१०३५. वही, ३६।४३।
१०३६. वही, ५२।६३।
१०३७. वही, ५२।६३।
१०३८. वही, ५३।६३।
१०३९. वही, ५३।६४।
१०४०. वही, ५३।७१।
१०४१. वही, ३३।३०७।
१०४२. वही, ५५।७३।
१०४३. वही, ३८।३८।
१०४४. वही, ३८।३९।

सौहार्द्र प्रकट कराते या मित्रता स्थापित कराते समय हाथ से हाथ मिलाया जाता था। लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण की मित्रता हाथ मिलाकर कराई।[१०४५] अपरिचित व्यक्ति अपना परिचय कुल, गोत्र, माता-पिता का नाम आदि कहकर देता था।[१०४६]

बड़ों की आज्ञा मानना तथा उनके प्रति विनय का भाव रखना उस समय के शिष्टाचार का महत्त्वपूर्ण अङ्ग था। जब इन्द्र नाम का राजा रावण से पराजित होकर बन्दी बना लिया गया तब इन्द्र के पिता ने रावण से इन्द्र को छोड़ देने को कहा। इस पर रावण ने उत्तर दिया—हे तात ! जिस प्रकार आप इन्द्र के पूज्य हैं, उसी प्रकार मेरे भी पूज्य हैं, बल्कि उससे भी अधिक। इसलिए मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ ? यदि यथार्थ में आप जैसे गुरुजन न होते तो यह पृथ्वी पर्वतों से छोड़ी हुई के समान रसातल को चली जाती। आप जैसे पूज्य पुरुष मुझे आज्ञा दे रहे हैं अतः मैं पुण्यवान् हूँ। आप जैसे पुरुषो की आज्ञा के पात्र पुण्यहीन मनुष्य नहीं हो सकते। इसलिए हे प्रभो ! आप विचार कर ऐसा उत्तम कार्य कीजिये जिससे इन्द्र और मुझमें सौहार्द्र उत्पन्न हो जाय। इन्द्र सुख से रहे और मैं भी सुख से रहूँ। यह शक्तिशाली इन्द्र मेरा चौथा भाई है, इसे पाकर मैं पृथ्वी को निष्कंटक करूँगा। आप जिस प्रकार इन्द्र को आज्ञा देते हैं उसी प्रकार मुझे करने योग्य कार्य की आज्ञा देते रहें, क्योंकि गुरुजनों की आज्ञा ही शेषाक्षत की तरह रक्षा करने वाली है। आप इच्छानुसार यहाँ रहें या रथनूपुर रहे अथवा जहाँ इच्छा हो वहाँ रहें। हम दोनों आपके सेवक हैं। हमारी भूमि ही कौन है ?[१०४७] बड़ों की आज्ञा मानने का दृष्टान्त राम द्वारा दशरथ की आज्ञा स्वीकार करने[१०४८] तथा लक्ष्मण द्वारा राम की आज्ञा माने जाने इत्यादि अनेक प्रसंगों में मिलता है।

बड़ों को बिदा करने के लिए कुछ दूर तक उनके साथ जाने की परिपाटी थी।[१०४९]-[१०५०] नदी या तालाब तक पहुँचाना शुभ और परम्परानुकूल माना जाता था। राम ने कर्णरवा नदी के तट पर पहुँच अनेक आगन्तुक राजाओं आदि को समझा-बुझाकर लौटा दिया।[१०५१] जो लोग नही लौटे थे उन्हे लौटाने का यत्न किया।[१०५२] कर्तव्यशील राजा के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मानना प्रजा अपना कर्तव्य समझती थी। राम-वन-गमन के समय लोग राम-लक्ष्मण के साथ जाने

१०४५. पद्म० ३३।३०७।
१०४६. पद्म० ५३।५१।
१०४७. वही, १३।१४-२१।
१०४८. वही, ३१।१२४, १२५।
१०४९. वही, १३।३२।
१०५०. वही, ३२।४०।
१०५१. वही, ३२।४०।
१०५२. वही, ३२।३०, ४१।

को उत्सुक हो गए। नगरी के समस्त घर सूने हो गए तथा समस्त उत्सव नष्ट हो गया।[१०५३] कर्णरवा नदी के तट पर पहुँचने पर राम ने उनसे लौटने को कहा तब उन्होंने उत्तर दिया—हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवों के समूह से भरे हुए वन मे रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्ग में भी नहीं रहना चाहते। हमारा चित्त ही नहीं लौटता है, फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियों में प्रधान है। जब आप जैसे नररत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवों को घर से क्या प्रयोजन है ? भोगों से क्या मतलब है ? स्त्रियों से क्या अर्थ है ? तथा बन्धुओं की क्या आवश्यकता है ?[१०५४]

कुल की प्रतिष्ठा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दशरथ से अपनी प्रतिज्ञा पालन करने की प्रार्थना कर राम ने कहा—आप अपकीर्ति को प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्र की लक्ष्मी से भी क्या प्रयोजन है ?[१०५५] लक्ष्मण भी हमें अपने पिता की उज्ज्वल कीर्ति की रक्षा करनी चाहिए, यह निश्चय कर राम के साथ वन जाने को उद्यत हो गए।[१०५६] एक राजा दूसरे राजा का सम्मान कुछ भट और उपहार आदि देकर करता था। रावण की सहायता के लिए एक बार जो राजा आए थे उनका उसने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर सम्मान किया।[१०५७]

●

१०५३. पद्म० ३१।२१५। १०५४. पद्म० ३२।४४-४६।

१०५५. तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते॥ पद्म० ३१।१२५।

१०५६. पितकीर्तिसमुत्पत्तिविघातव्या हि नः पितुः।
तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम्॥ पद्म० ३१।१९९।

१०५७. अस्त्रवाहनसन्नाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः।
रावणोऽपूजयद् भूपान् सुत्रामा त्रिदशानिव॥ पद्म० ५५।८९।

अध्याय ३

मनोरंजन

प्रकृति के अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव अधिक विनोदप्रिय है। प्राचीन भारत में लोगो का जीवन आजकल की अपेक्षा सुखी था, उसको जीवन संग्राम मे हम लोगों की भाँति अधिक व्यस्त नही रहना पड़ता था। ऐसी स्थिति में लोगों ने समय-समय पर आनन्द की सृष्टि के लिए मनोविनोद के रूप में कलाओं का विकास किया। पद्मचरित में इस विकास के अनेक रूप दिखलाई पड़ते हैं जो निम्नलिखित है—

क्रीड़ा

क्रीड़ा के भेद—चेष्टा, उपकरण, वाक्क्रीड़ा और कलाव्यत्यसन के भेद से क्रीड़ा चार प्रकार की होती है।[१]

चेष्टा—शरीर से उत्पन्न होनेवाली क्रीडा को चेष्टा कहते हैं।[२]

उपकरण—कन्दुक आदि खेलना उपकरण है।[३]

वाक्क्रीड़ा—नाना प्रकार के सुभाषित आदि कहना वाक्क्रीड़ा है।[४]

कलाव्यत्यसन—जुआ आदि खेलना कलाव्यत्यसन है।[५]

शास्त्रनिरूपित चेष्टाओं से क्रीड़ा करना उज्ज्वल क्रीड़ा कहलाती थी। सीता इसी प्रकार की क्रीडायें करने वाली कही गई है।[६]

क्रीडाधाम (क्रीडास्थल)—जहाँ विभिन्न प्रकार के मनोरंजन और भोगोपभोग की वस्तुयें होती थी उसे क्रीडाधाम कहा जाता था। इस प्रकार के क्रीडाधाम बनाने के लिए रमणीक स्थान चुनकर वहाँ सब प्रकार की वस्तुयें सुलभ की जाती थी। राम, लक्ष्मण तथा सीता के लिए क्रीडाधाम बनाने हेतु वंशस्थलपुर के राजा सुप्रभ की आज्ञा से वंशस्थल पर्वत के शिखर पर शुद्ध दर्पणतल के समान सुन्दर भूमि तैयार की गई। वह पर्वतशिखर अत्यधिक रमणीक था तथा हिमगिरि के शिखर के समान था। वहाँ एक समान लम्बे-चौड़े अच्छे रंग के मनोहर शिलातल थे। वह अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त

---

१. पद्म० २४।६७।
२. पद्म० २४।६७।
३. वही, २४।६८।
४. वही, २४।६८।
५. वही, २४।६९।
६. वही, ४०।२६।
७. वही, ४०।२४।

था। अनेक प्रकार के पक्षी वहाँ शब्द कर रहे थे, वह सुगन्धित वायु से पूर्ण था, अनेक प्रकार के पुष्पों और फलों से युक्त था, सब ऋतुओं के साथ वसन्त ऋतु वहाँ उपस्थित थी। उस भूमि पर पाँच प्रकार की धूलि से अनेक चित्र बनाये गये थे। अनेक प्रकार के भावों से रमणीय मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर, सुन्दर पल्लवों से युक्त अशोक वृक्ष तथा इनके अतिरिक्त सुन्दर कान्ति और सुगन्धयुक्त अन्य बहुत से वृक्ष बनाये गये थे। वहाँ पर बादली रंग के वस्त्र फैलाये गये थे तथा सघन पताकायें फहराई गई थीं। छोटी-छोटी घंटियों से युक्त सैकड़ों मोतियों की मालायें, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस (लम्बूषमणिपट्टिका), दर्पण तथा जिन पर सूर्य की किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले—ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओं में लगाये गये थे।[८] पृथ्वीतल पर जहाँ-तहाँ कलश रखे गये थे जो कमलिनी-वन में बैठे हुए हंसों के समान सुशोभित हो रहे थे। राम ने जहाँ-जहाँ चरण रखे थे वहाँ पृथ्वीतल पर बड़े-बड़े कमल रख दिये गये थे। जहाँ-तहाँ मणियों और स्वर्ण से चित्रित तथा अतिशय सुखदायक स्पर्श को धारण करने वाले आसन तथा सोने के स्थान बनाये गये थे। लवग आदि से सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रखे गये थे। सब ओर से नाना प्रकार की भोजनसामग्री से युक्त, जिनमें रसोईघर अलग बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालायें वहाँ निर्मित की गई थी।[९] वहाँ की भूमि कही गुड़, घी, दही से पंकिल होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्त्तव्यपालन करने में तत्पर आदर से युक्त मनुष्यों से सहित थी। कहीं मधुर आहार से तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छा से बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तता के साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरे को प्रसन्न कर रहे थे। कहीं सेहरे को धारण करने वाला और मदिरा के नशे में झूमते हुए नेत्रों से युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्री की सुगन्धि को धारण करने वाली नशा से भरी स्त्री दृष्टिगोचर होती थी। कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्यचर्चा हो रही थी और कहीं बिलासयुक्त स्त्रियाँ पतियों के साथ क्रीड़ा कर रही थीं। कहीं मुस्कुराते हुए लीला से युक्त विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे ऐसी देवनर्तकियों के समान वेश्यायें सुशोभित हो रही थीं।[१०]

जलक्रीड़ा

पद्मचरित में अनेक स्थलों पर जलक्रीड़ा का आकर्षक चित्रण किया गया

---

८. पद्म० ४०।४-१३।　　९. पद्म० ४०।१४, १४।१८।

१०. वही, ४०।१९-२३।

हैं। जलक्रीड़ा में स्त्रियाँ और पुरुष समान रूप से भाग लेकर मनोविनोद करते थे। एक बार दशानन जब मेघरव नामक पर्वत पर स्वच्छ जल से भरी वापिका पर पहुँचा तब उस वापिका पर छह हजार कन्यायें क्रीड़ा में लीन थीं।[११] उनमें से कुछ कन्यायें दूर तक उड़ने वाले जल के फव्वारे से क्रीड़ा कर रही थीं और कुछ अपराध करने वाली सखियों से दूर हटकर अकेली-अकेली ही घूम रही थीं। कोई कन्या शैवाल से सहित कमलों के समूह में बैठकर दाँत दिखा रही थी और अपनी सखियों के लिए कमल की आशंका उत्पन्न कर रही थी।[१२] कोई कन्या पानी को हथेली पर रख दूसरे हाथ की हथेली से उसे पीट रही थी और उससे मृदङ्ग जैसा शब्द निकल रहा था। कोई कन्या भ्रमरों के समान गा रही थी।[१३] दशानन क्रीड़ा करने की इच्छा से उनके बीच चला गया तथा वे वे कन्यायें भी उसके साथ क्रीड़ा करने के लिए बड़े हर्ष से तैयार हो गईं।[१४]

माहिष्मती के राजा सहस्ररश्मि ने उत्कृष्ट कलाकारों के द्वारा नाना प्रकार के जलयन्त्र बनवाये थे। उन सब यन्त्रों का आश्रय कर सहस्ररश्मि ने नर्मदा में उतरकर नाना प्रकार की क्रीड़ा की।[१५] उसके साथ यन्त्रनिर्माण को जानने वाले अनेक मनुष्य थे जो समुद्र का भी जल रोकने में समर्थ थे।[१६] यन्त्रों के प्रयोग से नर्मदा का जल क्षण भर में रुक गया था, इसलिए नाना प्रकार की क्रीडाओं में निपुण स्त्रियाँ उसके तट पर भ्रमण करने लगीं।[१७] शरीर का लेप धुल जाने के कारण जो नखक्षतों से चिह्नित स्तन दिखला रही थी। ऐसी कोई स्त्री अपनी सौत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी। जिसके समस्त अंग दिख रहे थे ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनो हाथों से बड़ी आकुलता के साथ पति की ओर पानी उछाल रही थी। कोई स्त्री सौत के नितम्ब स्थल पर नखक्षत देखकर क्रीडाकमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी। कोई एक स्वभाव की क्रोधिनी स्त्री मौन लेकर निश्चल खड़ी रह गई थी तब पति ने चरणों में प्रणाम कर उसे किसी तरह सन्तुष्ट किया।[१८] किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफेद कर दिया था तो किसी ने केशर के द्रव से उसे स्वर्ण के समान पीला बना दिया था।[१९] उत्तमोत्तम स्त्रियों से घिरे मनोहर रूप के धारक राजा सहस्ररश्मि

---

११. पद्म० ८।९०, ९५।
१२. पद्म० ८।९६, ९७।
१३. वही, ८।९८।
१४. वही, ८।१००।
१५. वही, १०।६८।
१६. वही, १०।६८।
१७. वही, १०।६९।
१८. वही, १०।७१-७४।
१९. वही, १०।८१।

ने स्त्रियों के साथ निम्न[२०] प्रकार से क्रीड़ा की।

किसी को देखकर, किसी को स्पर्श कर, किसी के प्रति कोप प्रकट कर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछालकर, किसी को कर्णाभरण से ताड़ित कर, किसी का धोखे से वस्त्र खींचकर, किसी को मेखला से बांधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी डाट दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँसकर, किसी के आभूषण गिराकर, किसी को गुदगुदाकर, किसी के प्रति भौंह चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के प्रति अन्य प्रकार से विभ्रम दिखाकर।

जलक्रीड़ा सांसारिक आकर्षण का एक उत्तम केन्द्र थी। जिस समय भरत संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर वन जाने को उद्यत हुआ उस समय अन्य लोगों के साथ राम तथा लक्ष्मण की अनेक रानियाँ वहाँ आकर भरत से जलक्रीड़ा के लिए निवेदन करने लगीं। भरत उनकी प्रार्थना को नहीं टाल सका और उनके साथ उसने जलक्रीड़ा की।[२१]

वनक्रीड़ा

प्रकृति मे जो कुछ मनोरम है उसका अधिकांश नगर के बाहर होता है। यदि नागरिक को अपने जीवन की आनन्दवृत्तियों को बहुमुखी करना है तो उसे नगर के बाहर प्रकृति के उत्संग में क्रीड़ा करनी चाहिए। ऐसे मनोरम स्थानों में वन की सर्वप्रथम गणना की जाती है। पद्मचरित के पंचम पर्व में महारक्ष विद्याधर का अपने अन्तःपुर के साथ क्रीड़ा करने के लिए प्रमद वन में जाने का उल्लेख है। वह वन कमलों से आच्छादित वापिकाओं से सुशोभित था।

---

२०. दर्शनात् स्पर्शनात् कोपात् प्रसादाद्विविधोदितात्।
प्रणामाद्वारिनिक्षेपादवतंसकताडनात् ॥ पद्म० १०।७६।
वंचनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामबन्धनात्।
पलायान्महारावाससंपर्कात् कुचकम्पनात् ॥ पद्म० १०।७७।
हासाद् भूषणनिक्षेपात् प्रेरणाद् भ्रूविलासतः।
अन्तर्धानात् समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात् ॥ पद्म० १०।७८।
रेमे बहुरसं तस्यां स मनोहर दर्शनः।
आवृतो वरनारीभिर्देवीभिरिव वासव. ॥ पद्म० १०।७९।

२१ पद्म० ८३।९०-१०८।

उसके बीच में नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचा दिखने वाला क्रीड़ापर्वत बना हुआ था। खिले हुए फूलों से सुशोभित वृक्षों के समूह उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। अव्यक्त मधुर शब्दों के साथ इधर-उधर मड़राते पक्षियों से वह व्याप्त था। उसमें रत्नमयी भूमि से वेष्टित अनेक प्रकार की कान्ति तथा सघन पल्लवों की समीचीन छाया से युक्त लता-मण्डप[२२] थे। राजा महारक्ष ने उस प्रमद वन में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा की थी। कभी स्त्रियाँ उसे फूलों से ताड़ना करती थी और कभी वह फूलों से स्त्रियों को ताड़ना करता था।[२३] कोई स्त्री अन्य स्त्री के पास जाने के कारण यदि ईर्ष्या से कुपित हो जाती थी तो वह चरणों में झुककर उसे शान्त कर लेता था। इसी प्रकार कभी आप स्वयं कुपित हो जाता था तो लीला से भरी स्त्री इसे प्रसन्न करती थी।[२४] कभी यह त्रिकूटाचल के तट के समान सुशोभित अपने वक्षःस्थल से किसी स्त्री को प्रेरणा देता था तो अन्य स्त्री उसे भी अपने स्थूल स्तनों के आलिंगन से उसे प्रेरणा देती थी।[२५]

उपर्युक्त वर्णन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि वनक्रीड़ा सामूहिक रूप से भाग लेने वाले पति-पत्नियों तथा नायक-नायिकाओं के प्रेमालिङ्गन, हास-परिहास आदि के लिए अपूर्व अवसर प्रदान करती थी। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि पद्मचरित मे कही-कही उद्यान और वन एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये हैं।[२६] इस प्रकार के अनेक उद्यानों तथा उनमें होने वाले अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोदों का वर्णन पद्मचरित में अनेक स्थानों पर किया गया है। ये उद्यान निसर्गतः सुन्दर तो हुआ ही करते थे, इसके साथ ही साथ मनुष्य अनेक आकर्षक वस्तुओं का संयोग उपस्थित कर उसे और अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाकर सोने में सुगंध वाली बात चरितार्थ करता था। उदाहरण के लिए त्रिकूटाचल प्रकीर्णक, जनानन्द, सुखसेव्य, समुच्चय, चारणप्रिय, निबोध और प्रमद इस प्रकार सात उद्यानों से घिरा था।[२७] इनमें से प्रकीर्णक नाम का वन पृथ्वीतल कहा गया है। उसके आगे जनानन्द नाम का वन था जिसमे वे ही मनुष्य क्रीड़ा करते थे, जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं था।[२८] उसके ऊपर चलकर सुखसेव्य नामका वन था जो कोमल वृक्षों से व्याप्त था। उसकी छवि मेघसमूह के समान थी। वह नदियों और वापिकाओं के कारण मनोहर था। उस वन मे सूर्य के मार्ग को रोकने वाले केतकी और जूही आदि से सहित तथा पान

---

२२. पद्म० ५।२९६-३०० ।
२३. पद्म० ५।३०१ ।
२४. वही, ५।३०२ ।
२५. वही, ५।३०३ ।
२६. वही, ४६।१४१, १५४ ।
२७. वही, ४६।१४३, १४५ ।
२८. वही, ४६।१४६ ।

की लताओं से लिपटे दश वेमा प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष थे।[२९] उसके ऊपर उपद्रव-रहित गमनागमन से युक्त समुच्चय नाम का चौथा उद्यान था। जिसमें कहीं हाव-भाव धारण करने वाली स्त्रियाँ तथा कहीं मनुष्य रहते थे।[३०] उसके ऊपर चारणप्रिय नाम का पाँचवाँ मनोहर वन था जिसमें चारण ऋद्धिधारी मुनिराज स्वाध्याय में तत्पर रहते थे।[३१] उसके ऊपर छठवाँ निबोध नाम का उद्यान था जो ज्ञान का निवास था। उसके आगे चढ़कर प्रमद नाम का सातवाँ उद्यान था जो घोड़े की पीठ के समान उत्तम तथा सुख से चढ़ने योग्य सीढ़ियों से दिखाई देता था।[३२]

प्रमद वन में स्नानक्रीड़ा के योग्य कमलों से सुशोभित मनोहरवापिकायें थीं। स्थान-स्थान पर पानीयशालायें तथा अनेक खण्डों से युक्त सभागृह थे।[३३] वहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षों से घिरे एवं फलों से लदे नारंग और बीजपूर आदि के वृक्ष थे। उस प्रमदवन में वृक्षों की सब जातियाँ थीं।[३४] वहाँ मन्द-मन्द वायु से नृत्य करती हुई वापिकायें राजहंस पक्षियों के समान ऐसी जान पड़ती थी मानो कोकिलाओं के आलाप से युक्त सघन वनों की हँसी ही कर रही हों। उसमें अशोकमालिनी नाम की वापी थी जो कमलपत्रों से सुशोभित तथा स्वर्णमय सोपानों से युक्त और विचित्र आकार वाले गोपुरों से अलंकृत थी।[३५] इसके अतिरिक्त वह उद्यान झरोखे आदि से अलंकृत उत्तमोत्तम लताओं से आलिंगित मनोहर गृहों तथा जलकणों से युक्त निर्झरों से सुशोभित था।[३६]

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर उत्तम उद्यान में हम निम्नलिखित विशेषतायें पाते हैं—

---

२९. पद्म० ४६।१४७-१४८। ३०. पद्म० ४६।१४९।
३१. वही, ४६।१५०। ३२. वही, ४६।१५१।
३३. वही, ४६।१५२।
३४. नारङ्गमातुलिङ्गाद्यैः फलैर्यत्र निरन्तराः।
खर्जूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः॥ पद्म० ४।१५३।
तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः।
कुसुमस्तबकैश्छन्ना गीयन्ते मत्तषट्पदैः॥ पद्म० ४।१५४।
३५. अशोकमालिनी नाम यत्रपद्मविराजिता।
वापीकनकसोपाना विचित्राकारगोपुरा॥ पद्म० ४।१६०।
३६. मनोहरगृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः।
सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निर्झरैश्च ससीकरैः॥ पद्म० ४।१६१।

१. अधिकांश जातियों के वृक्ष ।
२. अनेक विशेषताओं वाली वापी (सरोवर, नदी आदि) ।
३. लतागृह ।
४. मनोहर गृह, आवास आदि ।
५ पानीयशाला तथा स्नानगृह आदि ।
६. कोकिलादि पक्षियों का कलरव ।
७. उत्तमोत्तम झरने ।
८. पहाड़ी प्रदेश । पहाड़ियों पर चढ़ने के लिए सीढ़ी आदि का निर्माण ।

द्यूत-क्रीड़ा

प्राचीन साहित्य के मनोविनोद में द्यूत का स्थान था । पद्मचरित में द्यूत को कला के रूप मे स्वीकार किया गया है ।[३७] ब्राह्मण भी उस समय जुआ खेलते थे । लक्ष्मण को अपना परिचय देते हुए रुद्रभूति कहता है—"मैं कौशाम्बी नगरी के विश्वानल नाम के पवित्र ब्राह्मण की स्त्री प्रतिसन्ध्या से उत्पन्न पुत्र हूँ तथा शास्त्र और जुए की कला का पारगामी हूँ ।"[३८] इसी प्रकार ८५वें पर्व मे शकुना ब्राह्मणी के पुत्र मृदुमति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जुए में सदा जीतता था, अत्यन्त चतुर था, कलाओं का घर था और कामोपभोग मे सदा आसक्त रहता था । इस तरह वह नगर में सदा क्रीड़ा किया करता था ।[३९] द्यूत को कला के रूप मे इस प्रकार स्थान देते हुए भी पद्मचरित में इसकी गणना दुष्ट चेष्टाओं में की गई है ।[४०]

दोला-विलास

पद्मचरित के षष्ठ पर्व में लंका के राजा विद्युत्केश की क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि राजा विद्युत्केश उन बेशकीमती झूलों (दोलासु) पर झूमता था जिसमें बैठने का अच्छा आसन बनाया गया था, जो ऊँचे वृक्ष से बँधे थे तथा जिनकी उछाल बहुत लम्बी होती थी ।[४१] ३९वें पर्व में राम-लक्ष्मण द्वारा वन में किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीता को बैठाकर बगल में दोनों ओर खड़े हो सीता को झूला झुलाने का उल्लेख है ।[४२] एक स्थान पर दशानन के साथ क्रीड़ा करती हुई कन्याओं की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कहा गया है कि उस अपूर्व समागम के कारण उन कन्याओं का कामरूपी रस लज्जा

---

३७. पद्म० ३४।७८, ८५।१२९ ।
३८. पद्म० ३४।७६-७८ ।
३९. वही, ८५।१२९ ।
४०. वही, ८५।१२० ।
४१. वही, ६।२२९ ।
४२. वही, ३९।४ ।

से मिश्रित हो रहा था, अतः उनका मन दोला पर आरूढ़ हुए के समान अत्यन्त आकुल हो रहा था।[४३] वात्स्यायन से पता चलता है कि वाटिका में सघन छाया में प्रेंखादोला या झूला लगाया जाता था और छायादार स्थानों में विश्राम करने के लिए स्थंडिल पीठिकायें (बैठने के आसन) बनाए जाते थे, जिनपर सुकुमार कुसुम दल बिछा दिए जाते थे। प्रेंखा-दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में ही अधिक थी।[४४] आज भी सावन मास में झूले लगाए जाते हैं।

पर्वतारोहण

पर्वतारोहण के प्रति प्राचीनकाल से ही लोगों का एक विशेष आकर्षण रहा है। यही कारण है कि हमारे बहुत से तीर्थस्थल आज भी पर्वतों या पहाड़ियों पर हैं। पद्मचरित में राजा विद्युत्केश के संदर्भ में पर्वतारोहण की एक झलक मिलती है। लंका के राजा विद्युत्केश के विषय में कहा गया है कि वह कभी उन स्वर्णमय पर्वतों पर चढ़ता था जिनके ऊपर जाने के लिए सीढ़ियों के मार्ग बने हुए थे, जिनके शिखर रत्नों से सज्जित थे और जो वृक्षों के समूह से वेष्टित थे।[४५] इन पर्वतों पर अच्छे-अच्छे उद्यान निर्मित होते थे, ऐसा पहले किए गए वन-क्रीड़ा के वर्णन से स्पष्ट ही है।

गोष्ठी

हास्य-विनोद के सार्वजनिक स्थल गोष्ठी कहलाते थे।[४६] पद्मचरित में अनेक स्थानों पर गोष्ठी का प्रसङ्ग आया है। किष्कुपुर नगर का स्वामी महोदधि स्त्रियों के साथ महामनोहर उत्तुंग भवन के शिखर पर सुन्दर गोष्ठीरूपी अमृत का स्वाद लेता था।[४७] जब गोष्ठियों में राजाओं के गुणों की चर्चा होती तब विद्वज्जन सबसे पहले नभस्तिलक नगर के राजा मार्तण्डकुण्डल का नाम लेते थे।[४८] पद्मचरित में वीरपुरुष[४९] की गोष्ठी, विद्वानों[५०] की गोष्ठी तथा

---

४३. मिश्रे कामरसे तासां त्रपया पूर्वसङ्गमात्।
मनो दोलामिवारूढं बभूवात्यन्तमाकुलम् ॥ पद्म० ८।१०२।

४४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ४१।

४५. पद्म० ६।२३०।

४६. नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ९८।

४७. पद्म० ५३।११३।

४८. पद्म० ६।३८६।

४९. वही, ६।४७६।

५०. वही, ५३।११३।

मूर्खगोष्ठी[५१] इन तीनों गोष्ठियों के नाम आए हैं। वात्स्यायन तथा जिनसेन ने अपने ग्रन्थों में गोष्ठियों का अच्छा निरूपण किया है।[५२]

कथा

कथा-कहानियाँ कहने और सुनने की मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति रही है। पद्मचरित में भी इस प्रवृत्ति के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ३६वें पर्व में कहा गया है कि राम, लक्ष्मण तथा सीता स्वेच्छानुसार पृथ्वी पर बिहार करते हुए नाना प्रकार के स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथायें और देवों के समान रमण करते हुए वैजयन्तपुर के समीपवर्ती मैदान में पहुँचे।[५३] एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि आत्मीय जनों के साथ मिले हुए राम ने प्रमादरहित हो उत्तमोत्तम कथायें कहते हुए सुख से रात्रि व्यतीत की।[५४] वनवास के समय सघन पत्तों वाले द्रुमखण्ड में बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओं से सीता का मनोविनोद करना[५५] राम-लक्ष्मण अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते थे। इस प्रकार कथाओं की उस समय विशेष महत्ता थी। विशेषकर सत्पुरुषों की कथा को विशेष महत्त्व दिया जाता था। सत्पुरुषों की कथाओं की महत्ता प्रतिपादित हुए करते हुए रविषेण कहते हैं—जिस पुरुष की वाणी में अकार आदि अक्षर व्यक्त है पर जो सत्पुरुषों की कथा को प्राप्त नही कराई गई वह वाणी निष्फल है।[५६] महापुरुषों का कीर्तन करने से विज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है, निर्मल यश फैलता है और पाप दूर चला जाता है।[५७] जीवों का यह शरीर रोगों से भरा हुआ है तथा

---

५१. वही, १५।१८४

५२. जिनसेन ने अपने आदि पुराण मे गीतगोष्ठी (१२।१८८, १४।१९२) वाद्यगोष्ठी (१४।१९२) कथागोष्ठी (१२।१८७), जल्पगोष्ठी (१४।१९१) पदगोष्ठी (१४।१९१), काव्यगोष्ठी (१४।१९१), कलागोष्ठी (२९।९४), विद्यासंवाद गोष्ठी (७।६५) नृत्यगोष्ठी (१४।१९२), प्रेक्षणगोष्ठी (१४।१९२) तथा चित्रगोष्ठी (१४।१९२) के नाम दिए हैं। कामसूत्र के अनुसार विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, आयु और शील में अपने समान मित्रों या सहचरों के साथ, वेश्या के घर में, महफिल में अथवा किसी नागरिक के निवासस्थल पर गोष्ठी का समवाय आयोजित करना चाहिए। ऐसे स्थान पर साहित्य, संगीत और कला जैसे विषयों पर आलोचनात्मक तुलनात्मक चिन्तन किया जाय (कामसूत्र ४।१९),

५३. पद्म० ३६।१०, ११।

५४. वही, ३७।९३।

५५. वही, ३९।५।

५६. वही, १।२३।

५७. वही, १।२४।

अल्पकाल तक ही ठहरने वाला है परन्तु सत्पुरुषों की कथा से जो यश उत्पन्न होता है वह जब तक सूर्य, चन्द्रमा और तारे रहेंगे, तब तक रहता है।[५८] जो मनुष्य सज्जनों को आनन्द देने वाली मनोहारिणी कथा करता है वह दोनों लोकों का फल प्राप्त करता है।[५९] मनुष्य के जो कान सत्पुरुषों की कथा का श्रवण करते हैं, मैं उन्हें ही कान मानता हूँ, बाकी तो विदूषक के कानों के समान केवल कानों का आकार धारण करते हैं।[६०] सत्पुरुषों की चेष्टा का वर्णन करने वाले वर्ण—अक्षर जिस मस्तक में घूमता है वही वास्तव में मस्तक है, बाकी तो नारियल के करंक (कड़े आवरण) के समान है।[६१] जो जिह्वा सत्पुरुषों के कीर्तनरूपी अमृत का स्वाद लेने में लीन है, उसे ही मैं जिह्वा मानता हूँ, बाकी तो दुर्वचनों को कहने वाली छुरी का मानो फलक ही है।[६२] श्रेष्ठ ओंठ वे ही हैं जो महापुरुषों का कीर्तन करने में लगे रहते हैं, बाकी तो शम्बूक नामक जन्तु के मुख से मुक्त जोक के पृष्ठ के समान ही है।[६३] दाँत वही हैं जो शान्त पुरुषों की कथा के समागम से सदा रंजित रहते हैं, उसीमें लगे रहते हैं, बाकी तो कफ निकलने के द्वार को रोकने वाले मानो आवरण ही है।[६४] मुख वही है जो कल्याण की प्राप्ति का प्रमुख कारण है और श्रेष्ठ पुरुषों की कथा कहने में सदा अनुरक्त रहता है बाकी तो मल से भरा एवं दन्तरूपी कीड़ों से व्याप्त मानो गड्ढा ही है।[६५] जो मनुष्य कल्याणकारी वचनों को कहता अथवा सुनता है वही मनुष्य है, बाकी तो शिल्पकार के द्वारा बनाए हुए मनुष्य के पुतले के समान है।[६६] उत्तम कथा के सुनने से मनुष्यों को जो सुख प्राप्त होता है वह कृती लोगों का स्वार्थ (आत्मप्रयोजन) कहलाता है तथा यही पुण्योपार्जन का कारण है।[६७]

कथा के भेद—कथा चार प्रकार की होती है : आक्षेपणी, निक्षेपणी, संवेजनी तथा निर्वेदनी।

आक्षेपणी—वह कथा जिसके द्वारा अन्य मत-मतान्तरों की आलोचना की जाती है।[६८]

निक्षेपणी—वह कथा जिसमें तत्त्व का निरूपण किया जाता है।[६९]

---

५८. पद्म० १।२५।
५९. पद्म० १।७०।
६०. वही, १।२८।
६१. वही, १।२९।
६२. वही, १।३०।
६३. वही, १।३१।
६४. वही, १।३२।
६५. वही, १।३३।
६६. वही, १।३४।
६७. वही, १।३५।
६८. वही, १०६।९२।
६९. वही, १०६।९२।

संवेजनी—संसार से भय उत्पन्न करनेवाली कथा संवेजनी है।[७०]

निर्वेदनी—भोगों से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्द्धक कथा निर्वेदनी है।[७१]

इन्द्रजाल[७२]

मनोरंजन के लिए अलौकिक साधनों से अलौकिक सिद्धियों का प्रदर्शन इन्द्र-जाल है। पद्मचरित के पंचम पर्व में श्रुतसागर मुनि महारक्ष विद्याधर को वैराग्य का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जो करोड़ों कल्प तक प्राप्त होने वाले देवों के भोगों से तथा विद्याधरों के मनचाहे भोग-विलास से सन्तुष्ट नहीं हो सका, वह तू आठ दिन तक प्राप्त होने वाले स्वप्न अथवा जाल (इन्द्रजाल) सदृश भोगों से कैसे तृप्त होगा।[७३] प्राचीनकाल में इन्द्रजाल के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। इन उल्लेखों से इन्द्रजाल के विकास पर[७४] पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

---

७०. पद्म० १०६।९३। ७१. पद्म० १०६।९३।

७२. वही, २८।१६५।

७३. अष्टभिर्दिवसैः स त्वं कथं प्राप्स्यसि तर्पणम्।
स्वप्नजालोपमैर्भोगैरधुना भज्यतां शमः॥ पद्म० ५।३५९।

७४. प्रारम्भ में इन्द्रजाल शब्द का प्रयोग इन्द्र के जाल (माया) के अर्थ में हुआ (अथर्व० ८।८।८)। इन्द्र देवसेना का नेता था। वह असुरों को जब साधारण अस्त्र-शस्त्रों से पराजित न कर सका तो सम्भवतः उसने कुछ अलौकिक और अद्भुत प्रयोगों के द्वारा विजय प्राप्त की थी! ऐसे प्रयोगों को इन्द्र जाल कहा गया। शतपथ ब्राह्मण में असुरविद्या (माया) का नाम मिलता है। यह इन्द्रजाल है और यज्ञ के अवसर पर निष्पन्न होता था (शतपथ ब्राह्मण १३।४।३।११)। बौद्ध साहित्य के अनुसार इन्द्रजाल के निम्नलिखित रूप प्रचलित थे—मन्त्रबल से जीभ बाँधना, ठुड्डी को बाँध देना, किसी के हाथ को उलट देना, किसी के कान को बहरा बना देना, दर्पण पर देवता बुलाकर प्रश्न करना, मुँह से अग्नि निकालना आदि। इसके अति-रिक्त गान्धारी विद्या से बौद्धभिक्षु एक से अनेक और अनेक से एक हो जाते थे। चिन्तामणि विद्या के द्वारा दूसरों की बात जान लेते थे (दीघ-निकाय १।१ महासील १।११)।

सूत्र-कृतांग में इन्द्रजाल के द्वारा मनोरंजन करते हुए अपनी जीविका कमाने वाले मदारियों के उल्लेख मिलते हैं। उनके प्रदर्शन निम्नलिखित प्रकार के होते थे—पुच्छलतारा गिराना, चन्द्र, सूर्य आदि के मार्ग

युद्ध-क्रीडा

प्राचीनकाल में युद्ध बड़े उत्साह और शान के साथ लड़ा जाता था। यही कारण है कि इसे स्थान-स्थान पर युद्धक्रीड़ा, युद्ध-महोत्सव आदि के रूप में अभिहित किया गया है। राम-रावण के युद्ध में रावण के गर्वीले पैदल सैनिक झुण्ड के झुण्ड बनाकर अत्यधिक हर्ष से युक्त हो शस्त्र चमकाते हुए रणभूमि में उछलते जा रहे थे।[७५] वे योद्धा परस्पर एक दूसरे को आच्छादित कर लेते थे, एक दूसरे के सामने दौड़ते थे, एक दूसरे से स्पर्धा करते थे, एक दूसरे को जीतते थे, उनसे जीते जाते थे, उन्हें मारते थे, उनसे मारे जाते थे और वीरगर्जना करते थे।[७६] रावण ने बहुरूपिणी विद्या में प्रवेश कर युद्धक्रीड़ा की। उसका सिर लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था तथापि बार-बार देदीप्यमान कुण्डलों से सुशोभित हो उठता था। एक शिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो उससे दुगुनी वृद्धि को प्राप्त हो जाते थे। दो भुजायें कटती थीं तो चार हो जाती थीं, चार कटती थीं तो आठ हो जाती थीं। हजारों शिरों और अत्यधिक भुजाओं से घिरा रावण ऐसा जान

दिखाना, प्रदाह, मृगचक्र, कौए उड़ाना, धूल उड़ाना, रक्त की वृष्टि करना, मन्त्र के द्वारा दण्ड देने के लिए डण्डा चलाना, किसी व्यक्ति को सुला देना, द्वार खोल देना, किसी को गिरा देना, उठा देना, जँभाई लिवाना, अचल कर देना, चिपका देना, रोगी बना देना, स्वस्थ बना देना, अंतर्धान कर देना आदि। उस समय शबर, चाण्डाल, द्रविड़, कलिङ्ग, गौड़, गान्धार आदि विविध इन्द्रजालों का प्रचलन देशभेद के अनुरूप था (सूयगडंग २।२।२७)।

सातवी शताब्दी के ऐन्द्रजालिक पृथ्वी पर चन्द्र, आकाश में पर्वत, जल में अग्नि, मध्याह्न में सायंकाल, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता तथा सिद्ध, चारण, असुर आदि के सामूहिक नृत्य दिखला सकते थे। सबसे अधिक आश्चर्य तो इन्द्रजाल के द्वारा अन्तःपुर की अग्निदाह का दृश्य दिखलाना था। इसमें तो वास्तविक अग्निदाह के समान कुछ जलता हुआ प्रतीत होता था (रत्नावली, कर्पूरमंजरी एवं दशकुमारचरित में अवन्ति सुन्दरी प्रकरण)। रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ९५४-९५६, ९५७।

७५. पद्म० ७४।४१।

७६. आस्तृणंत्यभिधावन्ति स्पर्द्धन्ते निर्जयन्ती च।
जीयन्ते घ्नन्ति हन्यन्ते कुर्वन्ति भटगर्जितम् ।। पद्म० ७४।४३।

पड़ता था मानो अगणित कमलों के समूह से घिरा हो।[७७] सुरसुन्दर और दशानन के युद्ध में दशानन के अवयव युद्धरूपी महोत्सव पाकर इतने अधिक फूल गए और रोमांचों से कर्कश हो गए कि आकाश में बड़ी कठिनाई से समा सके।[७८] इन सब उल्लेखों से युद्धक्रीड़ा मनोविनोद का एक उत्तम साधन सिद्ध होती है।

पारिवारिक उत्सव

साधारणतः विवाह के अवसर पर या किसी राजकीय उत्सव के अवसर पर ऐसे आयोजनों का भूरिशः उल्लेख पाया जाता है।[७९] राम, लक्ष्मण तथा भरत के विवाहोत्सव के समय मिथिला नगरी पताका, तोरण और मालाओं से सजाई गई, बाजार के लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलों से व्याप्त किए गए, समस्त घरों में शंख और तुरही के मधुर शब्द किए गए।[८०] उस समय धन से सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि' अर्थात् देओ यह शब्द महाप्रलय को प्राप्त हो गया था—नष्ट हो गया था। तदनन्तर अपने पुत्रों तथा बहुओं के साथ दशरथ ने बड़े वैभव से युक्त हो अयोध्या मे प्रवेश किया। उस समय उत्तम शरीर को धारण करने वाली बहुओं को देखने के लिए समस्त नगर-निवासी अपना आधा कार्य छोड़ बड़ी व्यग्रता से राजमार्ग मे आ गए।[८१]

राजा युद्ध आदि की समाप्ति के बाद हाथी आदि पर सवार हो बड़ी धूम-

---

७७. पद्म० ७५।२२।

लक्ष्मीधरशरैस्तीक्ष्णैः शिरो लङ्कापुरीप्रभोः।
छिन्नं छिन्नमभूद् भूयः श्रीमत्कुण्डलमण्डितम्॥ पद्म० ७५।२३।
एकस्मिन् शिरसि च्छिन्ने शिरोद्वयमजायत।
तयोरुत्कृत्तयोर्वृद्धि शिरांसि द्विगुणां ययुः॥ पद्म० ७५।२४।
निकृत्ते बाहुयुग्मे च जज्ञे बाहुचतुष्टयम्।
तस्मिन् छिन्ने ययौ वृद्धि द्विगुणा बाहुसन्ततिः॥ पद्म० ७५।२५।
सहस्रैरुत्तमाङ्गानां भुजानां चातिभूरिभिः।
पद्मखण्डैरगण्यैश्च ज्ञायते रावणो वृतः॥ पद्म० ७५।२६।
नभःकरिकराकारैः करैः केयूरभूषितैः।
शिरोभिश्चाभवत् पूर्णं शस्त्ररत्नांशुपिंजरम्॥ पद्म० ७५।२७।

७८. पद्म० ८।१३१।

७९. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ८६।

८०. पद्म० २८।२६७, २६८।

८१. पद्म० २८।२७६, २७७।

धाम से नगर में प्रवेश करता था। वन्दीजन उसकी स्तुति करते थे। राजा के दोनों ओर चँवर डुलाए जाते थे। सफेद छत्र की राजा पर छाया की जाती थी। नृत्य करते हुए लोग उसके आगे-आगे चलते थे। गवाक्ष (झरोखे) में बैठी हुई स्त्रियाँ उसे अपने नयनों से देखती थीं। रत्नमयी ध्वजाओं से नगर की शोभा बढ़ाई जाती थी। नगर में ऊँचे-ऊँचे तोरण खड़े किए जाते थे, गलियों में घुटने तक फूल बिछाए जाते थे और केशर के जल से समस्त नगर सींचा जाता था।[८२]

पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में बड़ा भारी महोत्सव किया जाता था। दशानन का जन्म होने पर पिता ने पुत्र का बड़ा भारी जन्मोत्सव मनाया।[८३] ऐसे उत्सवों में समस्त भाई, बन्धु और सम्बन्धी सम्मिलित होते थे।[८४]

पंचकल्याणक महोत्सव

प्राचीन साहित्य मे तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और निर्वाण ये पाँच कल्याणक देवों द्वारा मनाये जाने के उल्लेख प्राप्त होते है। पद्मचरित में भी इनमें से अनेक का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है।

गर्भ-महोत्सव (गर्भकल्याणक)—पद्मचरित के तीसरे पर्व में भगवान् ऋषभदेव के गर्भमहोत्सव का विस्तृत वर्णन है। जब ऋषभदेव के गर्भावतार का समय हुआ, उस समय इन्द्र की आज्ञा से सन्तुष्ट हुई दिक्कुमारियाँ माता मरुदेवी की सेवा करने लगीं।[८५] ये देवियाँ निम्नलिखित कार्य करती थी—

१—वृद्धि को प्राप्त होओ (नन्द), आज्ञा देओ (आज्ञापय), जीवित रहो (जीव) इत्यादि शब्दों का सम्भ्रम के साथ उच्चारण।[८६]

२—हृदयहारी गुणो के द्वारा स्तुति करना।[८७]

३—वीणा बजाकर गुणगान करना।[८८]

४—अमृत के समान आनन्द देने वाला आश्चर्यजनक गीत गाना।[८९]

५—कोमल हाथों से पैर पलोटना।[९०]

६—पान देना।[९१]

---

८२. पद्म० ७।१००-१०३। ८३. पद्म० ७।२१२।
८४. वही, २६।१४७। ८५. वही, ३।११२।
८६. वही, ३।११३। ८७. वही, ३।११४।
८८. वही, ३।११४। ८९. वही, ३।११५।
९०. वही, ३।११६। ९१. वही, ३।११६।

७—आसन देना।[९२]

८—हाथ में तलवार लेकर सदा रक्षा करने में तत्पर रहना।[९३]

९—महल के भीतरी और बाहरी द्वार पर भाल, स्वर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि शस्त्र लेकर पहरा देना।[९४]

१०—चमर डुलाना।[९५]

११—वस्त्र लाकर देना।[९६]

१२—आभूषण लाकर उपस्थित करना।[९७]

१३—शय्या बिछाने के कार्य में लगना।[९८]

१४—बुहारना।[९९]

१५—सुगन्धित द्रव्य का लेप लगाना।[१००]

१६—भोजन-पान के कार्य में व्यग्र होना।[१०१]

१७—बुलाने आदि का कार्य।[१०२]

जन्माभिषेकोत्सव (जन्मकल्याणक)—तीर्थंकर के जन्म के अवसर पर इन्द्र का आसन कम्पायमान हो जाता है।[१०३] भवनवासी देवों के भवनों में बिना बजाए शंख बजते हैं।[१०४] व्यन्तरों के भवनों में अपने आप भेरियों का शब्द होता है।[१०५] ज्योतिषी देवों के घर अकस्मात् सिंह की गर्जना होती है और कल्पवासी देवों के घर अपने आप ही घण्टा बजने लगता है।[१०६] पश्चात् अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म जानकर इन्द्र भगवान् के माता-पिता की नगरी के लिए ऐरावत हाथी पर सवार हो प्रस्थान करता है।[१०७] इसके बाद देव अनेक प्रकार[१०८] से आनन्द मनाते हैं। जैसे—

१—नृत्य करना।

२—तालियाँ बजाना।

३—सेना को उन्नत बनाना।

---

९२. पद्म० ३।११६।
९३. पद्म० ३।११६।
९४. वही, ३।११७।
९५. वही, ३।११८।
९६. वही, ३।११८।
९७. वही, ३।११८।
९८. वही, ३।११९।
९९. वही, ३।११९।
१००. वही, ३।११९।
१०१. वही, ३।१२०।
१०२. वही, ३।१२०।
१०३. वही, ३।१६१।
१०४ वही, ३।१६२।
१०५. वही, ३।१६२।
१०६. वही, ३।१६३।
१०७. वही, ३।१६५।
१०८. वही, ३।१६६, १६७।

४—सिंहनाद करना।

५—विक्रिया से अनेक वेष बनाना।

६—उत्कृष्ट गाना गाना।

इसके पश्चात् कुबेर नगरी की रचना करता है। उस नगरी को विशाल कोट, परिखा तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुरों के शिखरों से युक्त किया जाता है।[१०९] पश्चात् इन्द्र देवों के साथ नगर की प्रदक्षिणा कर इन्द्राणी के द्वारा प्रसूतिकागृह से जिन बालक को बुलवाता है।[११०] सौधर्मेन्द्र भगवान् को गोदी में बैठाता है। अन्य देव छत्र, चमर आदि ग्रहण करते हैं। बाद में सुमेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर विशाल कलशों से भगवान् का इन्द्रादि देव अभिषेक करते हैं। पश्चात् इन्द्र उन्हें वस्त्राभूषणों से सज्जित कर स्तुति करता है। इसके बाद वह अन्य देवों के साथ अपने स्थान को चला जाता है।[१११] इस अवसर पर देवों द्वारा की गई क्रियाओं के कुछ रूप निम्नलिखित हैं :

१—तुम्बुरु, नारद और विश्वावसु का उत्कृष्ट मूर्च्छनायें करते हुए अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले गीत गाना।

२—लक्ष्मी का वीणा बजाना।

३—उत्तमोत्तम देवों का गायन, वादन और नृत्य करना।

४—देवियों का गन्ध से युक्त अनुलेपन से भगवान् को उद्वर्तन करना।

५—भगवान् के शरीर को उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों तथा विलेपनों से सज्जित करना।

दीक्षा-महोत्सव (दीक्षाकल्याणक)—किसी कारणवश तीर्थङ्कर को जब विराग हो जाता है और वे दीक्षा लेने को उद्यत होते हैं तब लौकान्तिक देव आकर अनुमोदन करते हैं।[११२] पश्चात् उत्तम पालकी पर सवार हो भगवान् घर से बाहर निकलकर उद्यान आदि रमणीक स्थान में पहुँचते हैं।[११३] उस समय बाजों की झनझनाहट और नृत्य करते हुए देवों के प्रतिध्वनिपूर्ण शब्द से तीनों लोकों का अन्तराल भर जाता है।[११४] 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर भगवान् दीक्षा लेकर मुष्टियों से केशलुंचन करते हैं। इन्द्र उन केशों को रत्नमयी पिटारे में रखकर क्षीरसागर में निक्षिप्त करता है।[११५] इस प्रकार समस्त देव दीक्षा-कल्याणकसम्बन्धी उत्सव मनाकर यथास्थान चले जाते हैं।[११६]

---

१०९. पद्म० ३।१६९, १७०। ११०. पद्म० ३।१७३।

१११. वही, ३।१७३, २१२। ११२. वही, ३।२६३, २७४, २६८।

११३. वही, ३।२७५-२७८, २८०। ११४. वही, ३।२७९।

११५. वही, ३।२८३, २८४। ११६. वही, ३।२८५।

केवलज्ञान-महोत्सव (केवलज्ञानकल्याणक)—शुक्लध्यान के प्रभाव से मोहनीय कर्म का क्षय हो तीर्थङ्कर को लोक और अलोक को प्रकट करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है।[११७] केवल ज्ञान के साथ ही बहुत भारी भा-मण्डल उत्पन्न होता है, उसके प्रकाश के कारण दिन-रात का भेद नहीं रह जाता।[११८] जहाँ तीर्थङ्कर को केवलज्ञान होता है वहीं एक अशोकवृक्ष प्रकट हो जाता है।[११९] तत्पश्चात् देव नाना प्रकार के फूलों की वर्षा करते हैं।[१२०] क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान भारी शब्दों से युक्त देवों द्वारा बजाये दुन्दुभि बाजे बजने लगते हैं। भगवान् के दोनों ओर दो यक्ष चमर ढुलाते हैं। मेरु के शिखर के समान तथा सूर्य की किरणों को तिरस्कृत करने वाला एक सिंहासन उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त मोतियों की लड़ियों से विभूषित छत्र-त्रय उत्पन्न होता है। इस प्रकार समवसरण के बीच सिंहासन पर विराजमान भगवान् की शोभा अवर्णनीय हो जाती है।[१२१] इन्द्र भी इस अवसर पर अपने-अपने परिवारों के साथ वन्दना के लिए वहाँ आते हैं।[१२२]

निर्वाण-महोत्सव (निर्वाणकल्याणक)—तीर्थङ्कर की निर्वाणप्राप्ति के समय भी इन्द्रादिक देव आकर उत्सव करते हैं। पद्मचरित में सामान्य रूप से निर्देश होते हुए भी इस समय देवों के कार्यकलापों का विशेष कथन नहीं है।

वसन्तोत्सव

वसन्तोत्सव के विधानों में कामार्चन का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। साधारण स्त्रियाँ आम्रमंजरी को तोड़कर धनुर्धर कामदेव के लिए समर्पित कर देती थी। यह उत्सव दो-चार क्षणों में समाप्त हो जाता था।[१२३] जैन-परम्परा में इस प्रकार के कामार्चन को कोई स्थान नही था। फलतः सीता के दोहद के बहाने जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना-हेतु राम द्वारा सीता तथा नगरवासियो सहित वसन्त ऋतु में उत्सव मनाने के लिए उद्यान-गमन की कल्पना कर ही ली गई। पद्मचरित के ९५वें पर्व में वसन्त के मनोहारी रूप के चित्रण के साथ इस उत्सव के मनाये जाने का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। राम ने प्रतिहारी से कहा कि बिना विलम्ब किये मन्त्रियों से कहो कि जिनालयों मे अच्छी तरह पूजा

---

११७. पद्म० ४।१२२।
११८. पद्म० ४।१२३।
११९. वही, ४।१२४, २५।
१२०. वही, ४।१२५।
१२१. वही, ४।१२६-३०।
१२२. वही, ४।१३१।
१२३. राम जी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० ९६२।

की जाय। सब लोग बहुत भारी आदर के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में, जाकर जिन-मन्दिरों की शोभा करें। तोरण, पताका, लम्बूष, घंटा, गोले, अर्द्धचन्द्र, चंदोबा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर उपकरणों के द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिन-पूजा करें। निर्वाण-क्षेत्रों के मन्दिर विशेष रूप से विभूषित किये जायें तथा सर्व सम्पत्ति से सहित महाआनन्द बहुत भारी हर्ष के कारण प्रवृत्त किये जायें।[१२४]

राम की आज्ञानुसार विशाल मन्दिरों के द्वारों पर उत्तम हार आदि से अलंकृत पूर्णकलश स्थापित किये गये। मन्दिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये। खम्भों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाये गये और गवाक्षों (झरोखों) के आगे स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाये गये। मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियों मे पाँच वर्ण के सुन्दर रत्नमय चूर्ण से नानाप्रकार के बेल-बूटे खींचे गये। जिनमें सौ अथवा हजार कलिकायें थीं तथा जो लम्बी डंडी से युक्त थे, ऐसे कमल उन मन्दिरों की देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रखे गये। हाथ से पाने योग्य स्थानों में मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली छोटी-छोटी घटियों के समूह लटकाये गये। जिनकी मणिमय डण्डियाँ थी ऐसे पाँच वर्ण के कामदार चमरों के साथ बड़ी-बड़ी हाँडियाँ लटकाई गई। नाना प्रकार की मालायें फैलाई गईं। अनेक की संख्या में जगह-जगह बनाई गई विशाल वादनशालाओं, प्रेक्षकशालाओं (दर्शकगृहों) से वह उद्यान अलंकृत किया गया।[१२५]

नगरवासी, देशवासी स्त्रियों, मन्त्रियों और सीता के साथ राम इन्द्र के समान बड़े वैभव से उस उद्यान की ओर चले। यथायोग्य ऋद्धि को धारण करने वाले लक्ष्मण तथा हर्ष से युक्त एवं अत्यधिक अन्नपान की सामग्रीसहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार जा रहे थे। वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदलीगृहों में तथा अतिमुक्तक लता के सुन्दर निकुंजों में महावैभव के साथ ठहर गईं तथा अन्य लोग भी यथायोग्य स्थानों में सुख से बैठ गये। हाथी से उतरकर राम ने विशाल सरोवर में सुखपूर्वक क्रीड़ा की। पश्चात् फूलों को तोड़कर जल से बाहर निकलकर सीता के साथ पूजन की दिव्य सामग्री से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की।[१२६] उस उद्यान में राम ने अमृतमय आहार,

---

१२४. पद्म० ९५।२९-३४।   १२५. पद्म० ९५।३८-४६।
१२६. वही, ९५।४८-५३।

विलेपन, शयन, आसन, निवास, गन्ध तथा माला आदि से उत्पन्न होनेवाले शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शसम्बन्धी उत्तम सुख प्राप्त किये ।[१२७]

आष्टाह्निक महोत्सव

यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास के अन्त के आठ दिनों में मनाया जाता है। जैन-मान्यतानुसार इस पृथ्वी पर आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप है। उस द्वीप में ५२ जिनालय बने हुए हैं। उनकी पूजा करने के लिए स्वर्ग से देव-गण उक्त दिनों में जाते हैं। चूँकि मनुष्य वहाँ नहीं जा सकते, इसलिए वे उक्त दिनों में पर्व मनाकर यहीं पूजा कर लेते हैं।[१२८] पद्मचरित में इस पर्व का प्राचीन रूप उपलब्ध होता है। इन दिनों मन्दिरों को पताकाओं से अलंकृत किया जाता था।[१२९] एक से एक बढ़कर सभायें, प्याऊ, मंच, पट्टशालायें, मनोहर नाट्यशालायें तथा बड़ी-बड़ी वापिकायें बनाई जाती थी।[१३०] जिनालय स्वर्णादि की पराग से निर्मित नाना प्रकार के मण्डलादि से निर्मित एवं वस्त्र तथा कदली आदि से सुशोभित उत्तम द्वारों से शोभा पाते थे।[१३१] जो दूध, घी से भरे रहते थे, जिनके मुख पर कमल ढँके जाते थे, जिनके कण्ठ में मोतियों की मालायें लटकती थीं, जो रत्नों की किरणों से सुशोभित होते थे, जिनपर विभिन्न प्रकार के बेल-बूटे देदीप्यमान होते थे तथा जो जिन-प्रतिमाओं के अभिषेक के लिए इकट्ठे किये जाते थे, ऐसे हजारों कलश गृहस्थों के घरों में दिखाई देते थे।[१३२] मन्दिरों में कणिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजातक तथा मन्दार आदि फूलों से निर्मित अत्यन्त उज्ज्वल मालायें सुशोभित होती थी। भौंरे सुगन्धि के कारण उनपर मँडराया करते थे।[१३३] उस समय के कार्यों की शोभा देखते ही बनती थी। कोई मण्डल बनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीसने का कार्य करता तो नाना प्रकार की रचना करने में निपुण कोई मालायें गूँथता।[१३४] कोई जल को सुगन्धित करता, कोई पृथ्वी को सींचता,

---

१२७. पद्म० ९५।५६।

१२८. प० कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैनधर्म, पद्म० ६८।१, ५, ९, २९।१, ९।

१२९. पद्म० ६८।१०।

१३०. पद्म० ६८।११।

१३१. वही, ६८।१३।

१३२. वही, ६८।१४, १५।

१३३. वही, ६८।१६, १७।

१३४ पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः।
कश्चिद् ग्रथ्नाति माल्यानि लब्धवर्णः सुभक्तिषु ॥ पद्म० २९।३।

कोई नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थ पीसता।[१३५] कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों से जिनमन्दिर के द्वार की शोभा करता तथा कोई नाना धातुओं के रस से दीवालों को अलंकृत करता।[१३६] इसके बाद उत्तमोत्तम सामग्रियों को एकत्रित कर तुरही के विशाल शब्द के साथ जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक किया जाता।[१३७] व्रत करने वाला व्यक्ति सहज और कृत्रिम पुष्पों (स्वर्ण, चाँदी तथा मणिरत्न से निर्मित कमलों आदि) से महापूजा करता था।[१३८] इसके बाद सब लोग गन्धोदक मस्तक पर लगाते थे।[१३९] इस अवसर पर उत्तमोत्तम नगाड़े, तुरही, मृदंग, शंख तथा काहल आदि वादित्रों से मन्दिर में विशाल शब्द होता था।[१४०] कहीं-कहीं पर बड़ी धूमधाम से नगर में जिनेन्द्र भगवान् का रथ भी निकलवाया जाता था।[१४१] इन दिनों समस्त पृथ्वी पर राजा की ओर से जीवों के मारने का निषेध रहता था।[१४२] यदि दो राजाओं में युद्ध हो रहा होता तो दोनों पक्ष के लोग युद्ध से विरत रहते थे।[१४३]

मदनोत्सव[१४४]

मदनोत्सव चैत्र शुक्ल द्वादशी को प्रारम्भ होता था। उस दिन लोग व्रत रखते थे। अशोकवृक्ष के नीचे मिट्टी का कलश स्थापन किया जाता था। उसमें सफेद चावल भर दिये जाते थे। नाना प्रकार के फल और ईख विशेष रूप से पूजोपहार का काम करती थी। कलश को सफेद वस्त्र से ढँक दिया जाता था और श्वेत चन्दन छिड़का जाता था। कलश के ऊपर एक ताम्रपत्र रखा जाता था और उसके ऊपर कदलीदल बिछाकर कामदेव और रति की प्रतिमा बनाई जाती थी। नाना भाँति के गंध-धूम और नृत्य-वाद्य से कामदेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता था। इसके दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भी मदन की पूजा होती थी और सुसज्जित भाव से स्तुति की जाती थी। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी की रात को केवल पूजा ही नहीं होती थी, नाना प्रकार के अश्लील गान भी गाये जाते थे और पूर्णिमा के दिन छककर उत्सव मनाया जाता

---

१३५. वासयत्युदकं कश्चिद्द्रवयत्यपरः क्षितिम्।
पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीन्॥ पद्म० २९।४।

१३६. द्वारशोभां करोत्यन्यो वासोभिरतिभासुरैः।
नानाधातुरसैः कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम्॥ पद्म० २९।५।

१३७. पद्म० २९।७। | १३८. पद्म० २९।८।

१३९. वही, २९।१०। | १४०. वही, ६८।१९।

१४१. वही, ८।१८४। | १४२. वही, २२।२३५।

१४३. वही, ६८।२। | १४४. वही, ४७।१४०।

था।[१४५] पद्मचरित में मदनोत्सव का विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं होता। हो सकता है जैनों की धार्मिक विचारधारा से इस उत्सव का विरोध होने के कारण रविषेण ने इसका विस्तृत विवरण देना आवश्यक न समझा हो, किन्तु इस उत्सव के आकर्षक लौकिक रूप से वे अवश्य प्रभावित रहे होंगे। इसीलिए ४७वें पर्व में उन्होंने सुग्रीव की कन्या मदनोत्सवा को मदन के उत्सव स्वरूप कहा है।[१४६]

विद्या-निर्मित क्रीड़ायें

विद्याधर लोग विद्या के प्रभाव से अनेक प्रकार की क्रीड़ायें किया करते थे। इनके लिए अनेक प्रकार की विद्यायें आमोद-प्रमोद का अच्छा साधन थीं, साथ ही इनसे विद्या के प्रभाव[१४७] को भी जाना जा सकता था। उदाहरण के लिए विद्या के प्रभाव से दशानन जिन-जिन क्रीड़ाओं को करता था, वे ये हैं :

१—एकरूप होकर भी अनेक रूप धरकर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करना।[१४८]

२—सूर्य के समान सन्ताप उत्पन्न करना।[१४९]

३—चन्द्रमा के समान चाँदनी छोड़ना।[१५०]

४—अग्नि के समान ज्वालायें छोड़ना।[१५१]

५—मेघ के समान वर्षा करना।[१५२]

६—वायु के समान बड़े-बड़े पहाड़ों को चलाना।[१५३]

७—इन्द्र जैसा प्रभाव जमाना।[१५४]

८—समुद्र बन जाना।[१५५]

९—पर्वत बन जाना।[१५६]

१०—मदोन्मत्त हाथी बन जाना।[१५७]

११—महावेगशाली घोड़ा बन जाना।[१५८]

---

१४५. पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १०८।

१४६. मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ।। पद्म० ४७।१४०।

१४७. पद्म० ८।८५।

१४८. पद्म० ८।८६।

१४९. वही, ८।८६।

१५०. वही, ८।८६।

१५१. वही, ८।८७।

१५२. वही, ८।८७।

१५३. वही, ८।८७।

१५४. वही, ८।८७।

१५५. वही, ८।८८।

१५६. वही, ८।८८।

१५७. वही, ८।८८।

१५८. वही, ८।८८।

१२–क्षणभर में पास आ जाना ।[१५९]
१३–क्षणभर में दूर पहुँच जाना ।[१६०]
१४–क्षणभर में दृश्य हो जाना ।[१६१]
१५–क्षणभर में अदृश्य हो जाना ।[१६२]
१६–क्षणभर में महान् हो जाना ।[१६३]
१७–क्षणभर मे सूक्ष्म हो जाना ।[१६४]
१८–क्षणभर में भयंकर दिखाई पड़ना ।[१६५]
१९–क्षणभर मे भयंकर नहीं रहना ।[१६६]

विविध मनोरंजन

उपर्युक्त मनोरंजन के अतिरिक्त पद्मचरित में अन्य मनोरंजनों का भी उल्लेख मिलता है जो कि समय-समय पर मनोविनोद के लिए अपनाये गये थे ।

बानरों का अभिनय, उनका उछलना-कूदना आदि सदा ही लोगों के मनोरंजन का विषय रहा है । राजा श्रीकण्ठ जब बानरद्वीप में पद्माभा के साथ विहार कर रहे थे तो उन्होंने इच्छानुसार अनेक बानर देखे ।[१६७] राजा श्रीकण्ठ ने बानरों के साथ क्रीड़ा की । कभी वह ताली बजाकर उन्हें नचाता था, कभी अपनी भुजाओं से उनका स्पर्श करता था और कभी अनार के फूल के समान लाल तथा चपटी नाक से युक्त एवं चमकीली सुनहली कनीनिकाओं से युक्त उनके मुख में उनके सफेद दाँत देखता था ।[१६८] वे बानर परस्पर विनय से युक्त हो एक दूसरे के जुयें अलग करते थे । प्रेम से खो-खो शब्द करते हुए वे मनोहर कलह करते थे ।[१६९] राजा श्रीकण्ठ ने उनका बड़े प्रेम से स्पर्श किया तथा उन बानरों के कृश पेट पर जो रोम अस्तव्यस्त थे, उन्हें उसने अपने स्पर्श से ठीक किया । साथ ही उनकी भौहों को तथा रेखा से युक्त कटाक्ष प्रदेशों को कुछ-कुछ ऊपर की ओर उठाया । इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए उसने प्रीतिपूर्वक बहुत से बानरों को मधुर अन्न-पान आदि के द्वारा पोषण करने के लिए सेवकों को दिए ।[१७०]

---

१५९. पद्म० ८।८८ ।
१६०. पद्म० ८।८९ ।
१६१. वही, ८।८९ ।
१६२. वही, ८।८९ ।
१६३. वही, ८।८९ ।
१६४. वही, ८।८९ ।
१६५. वही, ८।८९ ।
१६६. वही, ८।८९ ।
१६७. वही, ६।१०७ ।
१६८. वही, ६।११३, ११४ ।
१६९. वही, ६।११५ ।
१७०. वही, ६।११७-११९ ।

प्राचीन भारतीय मनोरंजन में गणिकाओं को प्रमुख स्थान मिला था। गणिकायें राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थी। लक्ष्मण ने सिंहोदर और वज्रकर्ण की जब मित्रता करा दी तब सिंहोदर ने वज्रकर्ण को अपने राज्य का आधा भाग, चतुरंग सेना तथा धन आदि के साथ आधी गणिकायें भी वज्रोदर के लिए दीं।[१७१] मृच्छकटिक में गणिका वसन्तसेना की समृद्धि का जो वर्णन किया गया है वह समाज मे गणिकाओं के सम्मान का संकेत करता है। सम्भवतः उस काल में वेश्याओं के दो वर्ग थे : १. गणिकायें नृत्य गीतादि के द्वारा जीविकोपार्जन करती थीं तथा २. वेश्यायें रूप यौवन के द्वारा। गणिकाओं से समाज के प्रतिष्ठित लोगों का भी सम्बन्ध रहता था। गणिकायें अपनी पेशा छोड़कर कुलवधुयें भी बन सकती थी और ब्राह्मण तक उनसे विवाह कर सकते थे। मृच्छकटिक मे एक नहीं, दो-दो ब्राह्मणों का विवाह गणिकाओं से कराया गया है। चारुदत्त का विवाह वसन्तसेना से होता है, शर्विलक मदनिका को अपनी वधू बनाता है। विलासिनी (वेश्यायें) भी उस समय अच्छा मनोरंजन करती थी। पद्मचरित में एक स्थान पर विट पुरुषों से सेवित विलासिनियों को देव-नर्तकियों के समान कहा गया है।[१७२]

विदूषक[१७३] और नट[१७४] भी मनोरंजन में अत्यधिक योग देते थे। संस्कृत का शायद ही कोई नाटक हो जिसमें विदूषक न हो। शारीरिक अङ्गों में पद्मचरित मे इसके अटपटे कामों की विशेष चर्चा की गई है।[१७५] इस प्रकार के शारीरिक अवयवों तथा चेष्टाओं से हास्य-विनोद करने वाला व्यक्ति ही विदूषक की भूमिका अच्छी तरह निभा सकता था।

नृत्य करना,[१७६] ताल बजाना,[१७७] सिंहनाद करना (उदात्तं नदितं) तथा गीत गाना आदि मनोरंजन के अच्छे साधन थे। इन सबका उल्लेख कला वाले अध्याय में किया गया है। बच्चों के मनोरंजन के लिए विभिन्न प्रकार के खिलौने बनाए जाते थे। बाल्यावस्था की स्मृति के द्योतक होने के कारण ये किसी-किसी की अमूल्य धरोहर हो जाते थे।[१७८] क्षुद्र नाम के मनुष्य के पास एक मयूर-पत्र का खिलौना था। एक दिन वह खिलौना हवा में उड़ गया और राजा के पुत्र को मिल गया। उस कृत्रिम मयूर के निमित्त शोक करता हुआ वह अपने मित्र से बोला कि मित्र ! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरा

१७१. पद्म० ३३।३०७-३०९।
१७२. पद्म० ४०।२३।
१७३. वही, ६।११७।
१७४. वही, ९१।३९।
१७५. वही, ६।११७, ११२८।
१७६. वही, ७।३४८।
१७७. वही, ७।३४८।
१७८. वही, ७।३४९।

वह कृत्रिम मयूरपत्र दे दो।[१७९] पद्मचरित के चौबीसवें पर्व में क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म के तीन भेद बतलाए गए हैं। इन सब उल्लेखों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बालकों के मनोरंजन के लिए अनेक प्रकार के खिलौने बनाने की कला का विकास उस समय तक अच्छी तरह हो गया था।

●

---

१७९. पद्म० ४८।१४७-१४८।

अध्याय ४

कला

कला श्री व सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य व श्री का निवास रहता है। जिस सृष्टि में श्री नहीं वह रसहीन होती है। जहाँ रस नहीं वहाँ प्राण नहीं रहता। जिस स्थान पर रस प्राण और श्री तीनों एकत्र रहते हैं वहीं कला रहती है।[1] श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'परसनेलिटी' नामक पुस्तक में 'व्हाट इज आर्ट' शीर्षक लेख में ज्ञान के दो पक्ष कला और विज्ञान स्वीकार करते हुए लिखा है कि कला मनुष्य की बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है।[2]

कलाओं का वर्गीकरण—कलाओं की गणना के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध संख्या ६४ है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में ६४ कलाओं को गिनाया है। शुक्रनीति तथा तन्त्रग्रन्थों मे कला की संख्या ६४ ही दी गई है, कहीं-कहीं सोलह, बत्तीस और ६४ कलाओं के नाम दिए गए हैं और कहीं ६४ से भी अधिक। ललितविस्तर में पुरुष-कला के रूप से ८६ नाम गिनाए हैं और काम-कला के रूप मे ६४ नाम है। प्रबन्धकोश में कलाओं की संख्या ७१ लिखी हुई है। क्षेमेन्द्र की रचना 'कला विलास' में सर्वाधिक कलाओं के नाम दिए हुए हैं इनमे ६४ लोकोपयोगी कलायें हैं, ३२ धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति की और ३२ मात्सर्य, शील, प्रभाव और मान की है। इसके अतिरिक्त ६४ कलायें सुनारों की सोना चुराने की, ६४ कलाएँ वेश्याओं की नागरिकों को मोहित करने की, १० भेषज कलायें और १६ कायस्थों की कलायें हैं, जिनमें उनके लिखने का कौशल और लेखनकला द्वारा जनता और शासन को धोखा देने की बातें हैं। इनके अतिरिक्त गणकों की कलाओं एवं १०० सार कलाओं का वर्णन है। वात्स्यायन एवं अन्यान्य आचार्यों द्वारा की गई कला-परिगणना पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन आचार्य किसी भी विषय पर कृत्य में निहित कौशल को कला मानते थे। पद्मचरित में भी हमें अनेक कलाओं के दर्शन होते हैं। ये कलायें निम्नलिखित हैं—

---

१. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, पृ० २३०।

२. डॉ० राजकिशोर सिंह यादव : प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, पृ० ४।

३. कामसूत्र की देवदत्त शास्त्रीकृत व्याख्या, पृ० ८३, ८४।

नाट्य-कला

भरत मुनि ने कहा कि कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म ऐसा नही है, जो नाट्य में न आता हो।[४] पद्मचरित के अनुसार गीत, नृत्य, वादित्र इन तीनों का एक साथ होना नाट्य कहलाता है।[५] भरत मुनि ने भी कहा है कि नाट्य के प्रयोक्ता को पहले गीत में परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि गीत नाट्य की शय्या है। गीत और वाद्य भलीभाँति प्रयुक्त होने पर नाट्यप्रयोग में कोई विपत्ति नही होती।[६] नाट्य के सम्पादन के लिए नाट्यशाला और प्रेक्षागृह होना चाहिए। पद्मचरित मे एक से एक बढ़कर नाट्यशालाओं[७] और अनेक की सख्या में बनाई गई प्रेक्षकशालाओं[८] (दर्शकगृहों) के होने का उल्लेख किया गया है।

संगीत-कला

सम् (सम्यक्) और गीत दोनों के मेल से 'संगीत' शब्द बनता है। मौखिक गाना ही गीत है। इसे अभिनव गुप्त ने नाट्य का प्राण कहा है, अतः इसका प्रयोजन नाट्य से भिन्न नही है।[९] सम का अर्थ है अच्छा। वाद्य और नृत्य दोनों के मिलने से गीत अच्छा बन जाता है।[१०] अतः वाद्य और नृत्य को गीत के ऊपर जक एवं उत्कर्षविधायक मात्र कहा जाता है।[११] पद्मचरित में अनेक स्थानों पर संगीत का उल्लेख मिलता है।[१२] यहाँ संगीतशास्त्र के अनेक

---

४. न तच्छ्रुतं न सा विद्या न स न्यायो न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाटके यन्न दृश्यते ।।
—भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय।

५. कलानां तिसृणामासां नाट्यमेकीक्रियोच्यते ।। पद्म० २४।२२।

६. गीते प्रयत्नः प्रथमं तु कार्य्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ।।
—नाट्यशास्त्र, बम्बई संस्करण, अध्याय २२।

७. पद्म० ६८।११।   ८. पद्म० ९५।६६।

९. प्राणभूतं तावद् ध्रुवागानं प्रयोगस्य।
—अभिनव-भारती, बड़ौदा सं० तृतीय खण्ड, पृ० ३८६।

१०. गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते ।।
—के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० १।

११. नृत्तं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च ।।
—आचार्य शार्ङ्ग देव : संगीतरत्नाकर (अड्यार संस्करण, पृ० १५)

१२. पद्म० ६।१४, ३६।९२, ४८।२, ४०।३०।

पारिभाषिक शब्द जैसे स्वर[१३], वृत्ति,[१४] मूर्च्छना,[१५] लय,[१६] ताल,[१७] जाति[१८], ग्राम,[१९] आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है और उनमें से अनेक का विस्तार से वर्णन भी किया गया है।

स्वर—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं।[२०] भरत मुनि ने भी स्वरों की संख्या में इन्हीं को गिनाया है।[२१] स्वर का निजी अर्थ ग्रन्थों में ऐसा दिया गया है—

श्रुत्यनन्तरभावी यः शब्दोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतो रञ्जयते श्रोतुश्चित्तं स स्वर ईर्यते ॥

इस श्लोक में स्वर का लक्षण ऐसा कहा है[२२]—

(१) श्रुतियों को लगातार उत्पन्न करने से स्वर की उत्पत्ति होती है।

(२) शब्द का अनुरणन रूप ही स्वर कहलाता है। अर्थात् प्रत्येक शब्द मे आहति के बाद होने वाला शब्द, लहरों के क्रम से उत्पन्न होकर फिर क्रम से लीन हो जाता है। इसका नाम अनुरणन है। अनुरणन ही स्वर का मुख्य स्वरूप है, क्योंकि अनुरणन में स्वर श्रुतियों का प्रकाशन होता है।

(३) प्रत्येक स्वर दूसरे स्वर की सहायता के बिना स्वयं रञ्जक है।

वृत्ति—पद्मचरित में द्रुता, मध्यमा और विलम्बिता इन तीन वृत्तियों के प्रयोग का उल्लेख किया है।[२३]

मूर्च्छना—क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं।[२४] मूर्च्छना

---

१३. पद्म० १७।२७७।
१४. पद्म० १७।२७८।
१५. वही, १७।२७८।
१६. वही, २४।९।
१७. वही, २४।९।
१८. वही, २४।१५।
१९. वही, ३७।१०८।
२०. षड्जर्षभौ तृतीयश्च गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चापि निषादश्चेत्यमी स्वराः ॥ पद्म० २४।८।
२१. षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव सप्तमश्च निषादवान् ॥
—नाट्यशास्त्र ब० सं० अ० २८, पृ० ४३२।
२२. संगीतशास्त्र, पृ० १४।
२३. पद्म० १७।२७८।
२४. क्रमयुक्त स्वराः सप्त मूर्च्छनास्त्वभिसंज्ञिताः ॥
—नाट्यशास्त्र, बम्बई सं० अ० १२८, पृ० ४३५।

शब्द मूर्च्छ धातु से बना है जिसका अर्थ मोह और समुच्छ्राय (उत्सेध, उभार, चमकना, व्यक्त होना) है। मूर्च्छन धातु का अर्थ चमकना या उभारना है। श्रुति की मृदु (उतरी हुई अवस्था) को कुछ लोगों ने मूर्च्छना कहा है, कुछ लोगों का कथन है कि रागरूपी अमृत के ह्रद (सरोवर) में गायकों और श्रोताओं के हृदय का निमग्न होना ही मूर्च्छना है परन्तु भरत-संगीत में मूर्च्छना का अर्थ सात स्वरों का क्रमपूर्वक प्रयोग ही है।[२५] पद्मचरित में गन्धर्व द्वारा इक्कीस मूर्च्छना[२६] और ४९ ध्वनियो[२७] के प्रयोग का उल्लेख है। यहाँ इक्कीस मूर्च्छना से तात्पर्य षड्ज ग्राम की इक्कीस औडुव तानें तथा ४९ ध्वनियों से तात्पर्य सब मूर्च्छनाओ मे की जानेवाली उनचास (षाडव) तानों से है।

षड्ज ग्राम की इक्कीस[२८] औडुव तानें

उत्तरमध्यमा—

१ × रे ग म × ध नि
२ स × ग म × ध नि
३ सरे × म प ध

रजनी—

४ नी × रे ग म × ध
५ नी स × ग म × ध
६ × स रे ग म प ध

उत्तरायता—

७ ध नी × रे ग म ×
८ ध नी स × ग म ×
९ ध × स रे × म प

शुद्धषड्जा—

१० × ध नी × रे ग म
११ × ध नी स × ग म
१२ प ध × स रे × म

मत्सरीकृता—

१३ म × ध नी × रे ग
१४ म × ध नी स × ग
१५ म प ध × स रे ×

---

२५. कैलाशचन्द्रदेव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ३५, ३६।
२६. पद्म० १७।१२८।   २७. पद्म० १७।२८०।
२८. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ४६।

अश्वक्रान्ता—

१६ ग म × ध नी × रे
१७ ग म × ध नी स ×
१८ × म प ध × स रे

अभिरुद्गता—

१९ रे ग म × ध नी ×
२० × ग म × ध नी स
२१ रे × म प ध × स

सब मूर्च्छनाओं में की जाने वाली उनचास[२९] (षड्व) तानें—

उत्तरमन्द्रा—

१ × रे ग म प ध नि
२ स × ग म प ध नि
३ स रे ग म × ध नि
४ स रे ग म प ध ×

रजनी—

५ नी × रे ग म प ध
६ नी सा × ग म प ध
७ नी सा रे ग म × ध
८ × सा रे ग म प ध

उत्तरायता—

९ ध नी × रे ग म प
१० ध नी स × ग म प
११ ध नी स रे ग म ×
१२ ध × स रे ग म प

शुद्ध षड्जा—

१३ प ध नी × रे ग म
१४ प ध नी सा × ग म
१५ × ध नी सा रे ग म
१६ प ध × सा रे ग म

---

२९. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ४३-४५।

मत्सरीकृता—

१७ म प ध नी × रे ग
१८ म प ध नी सा × ग
१९ म × ध नी सा रे ग
२० म प ध × सा रे ग

अश्वक्रान्ता—

२१ ग म प ध नी × रे
२२ ग म प ध नी स ×
२३ ग म × ध नी स रे
२४ ग म प ध × स रे

अभिरुद्गता—

२५ रे ग म प ध नी ×
२६ × ग म प ध नी स
२७ रे ग म × ध नी स
२८ रे ग म प ध × स

सौवीरी (मध्यम ग्राम)

२९ म प ध नी × रे ग
३० म प ध नी स × ग
३१ म प ध नी स रे ×

हरिणाश्वा—

३२ ग म प ध नी × रे
३३ ग म प ध नी स ×
३४ × म प ध नी स रे

कलोपनता—

३५ रे ग म प ध नी ×
३६ × ग म प ध नी स
३७ रे × म प ध नी स

शुद्धमध्या—

३८ × रे ग म प ध नि
३९ स × ग म प ध नि
४० स रे × म प ध नि

मार्गी—

४१ नी × रे ग म प ध
४२ नी सा × ग म प ध
४३ नी सा रे × म प ध

पौरवी—

४४ ध नी × रे ग म प
४५ ध नी स × ग म प
४६ ध नी स रे × म प

हृष्यका—

४७ प ध नी × रे ग म
४८ प ध नी स × ग म
४९ प ध नी स रे × म

लय—तालक्रिया के अनन्तर (अगली तालक्रिया से पूर्व तक) किया जाने वाला विश्राम लय कहलाता है।[३०] पद्मचरित मे लय के द्रुत, मध्य और विलम्बित ये तीन भेद किए हैं।[३१] शीघ्रतम लय द्रुत, उससे द्विगुण मध्य तथा उससे द्विगुण विलम्बित कहलाती है। चित्र, वार्तिक एवं दक्षिण मार्ग मे विश्रान्तिकाल के परिणाम में भेद होने के कारण लय के अनेक भेद हो जाते हैं। फलत. क्षिप्रभाव में द्रुत, मध्य, विलम्बित, मध्यभाव मे द्रुत, मध्य एवं चिरभाव में द्रुत. मध्य एवं विलम्बित भेदो का पृथक्-पृथक् रूप होता है।[३२]

तीनों मार्गों में एक मात्रा का काल पाँच लघु अक्षरों के उच्चारणकाल के समान होता है, तथापि चित्रमार्ग में दस लघु अक्षरों के उच्चारणकाल से परिमित काल के पश्चात् होनेवाली लय द्रुत कहलाती है, वार्तिक मार्ग में बीस लघु अक्षरों के उच्चारण काल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय मध्य कहलाती है, दक्षिण मार्ग मे चालीस लघु अक्षरों के उच्चारणकाल के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली लय विलम्बित कहलाती है।[३३]

---

३०. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४२।

३१. पद्म० २४।९।

३२. क्रियानन्तरविश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।
द्रुतो मध्यो विलम्बश्च द्रुतः शीघ्रतमो मतः।
द्विगुणद्विगुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविलम्बितौ।
मार्गभेदाच्चिरमप्रमध्यभावैरनेकधा ॥

—भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४२।

३३. वही, पृ० २४२।

किसी स्थान को जाने के तीन मार्ग हैं, दूसरा मार्ग पहले मार्ग की अपेक्षा दुगुना लम्बा है, तीसरे मार्ग की लम्बाई दूसरे मार्ग की अपेक्षा भी दुगुनी है। एक ही गति से चलने वाले तीन व्यक्तियों में प्रथम व्यक्ति प्रथम मार्ग से लक्ष्य स्थल पर जितने समय में पहुँचेगा, दूसरे मार्ग से चलने वाला उससे दुगुने और तीसरे मार्ग से चलने वाला उससे भी तिगुने समय में लक्ष्यस्थल तक पहुँचेगा। अपेक्षया पहले व्यक्ति के पहुँचने का काल द्रुत, दूसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल मध्य और तीसरे व्यक्ति के पहुँचने का काल विलम्बित होगा। मार्गभेद से लय-भेद की भी स्थिति ऐसी ही है। इस लय का उपयोग अक्षर, शब्द या वाक्य में नहीं होता, क्योंकि बोलचाल के समय इनकी जो लय होती है, उसका संगीत से कोई सम्बन्ध नहीं है।[३४]

ताल—प्रतिष्ठार्थक 'तल' धातु के पश्चात् अधिकरणार्थक 'ञ' प्रत्यय लगने से 'ताल' शब्द बनता है, क्योंकि गीत-वाद्य-नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं। लघु, गुरु प्लुत से युक्त सशब्द एवं निःशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य और नृत्य को परिमित करने वाला ताल कहलाता है।[३५] लघु, गुरु, प्लुत-पाँच निमेष या पाँच अक्षरों का उच्चारणकाल भरत[३६] वर्णित तालों में लघु या मात्रा कहलाता है। दो लघु एक गुरु का निर्माण करते हैं और तीन लघुओं से एक प्लुत बनता है। ये लघु, गुरु, प्लुत छन्दःशास्त्र या व्याकरण शास्त्र के ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत से भिन्न हैं।[३७] गुरु का पर्याय कला भी है, तालभाग को भी कला कहते हैं तथा निःशब्द एवं सशब्द क्रियायें भी कला कहलाती हैं। तालशास्त्र में लघु का चिन्ह '।', गुरु का चिन्ह 'ऽ' और भरतवर्णित तालों में प्लुत का भी चिन्ह 'ऽ' है।[३८]

ताल का स्वरूप स्पन्दन है। संसार की सारी शक्तियाँ स्पन्दनरूप में हैं। कहा गया है कि ताल का अर्थ शिवशक्ति (ता = शिव, ल = शक्ति) है।[३९] पद्मचरित मे अस्र और चतुरस्र ये ताल की दो योनियाँ कही गई हैं।[४०]

---

३४. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २४३।

३५. वही, पृ० २३४।

३६. निमेषाः पञ्च मात्रा स्यात्—नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), बं० सं०, पृ० ४७५।

३७. भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २३४।

३८. वही, पृ० २३५।

३९. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २०६।

४०. पद्म० २४।९।

भरतोक्त तालों में चतुरस्र अर्थात् च च्त्पुट (चच्चत्पुट, चञ्चत्पुट) और त्र्यस्त्र अर्थात् चाचपुट (चापपुट) मुख्य हैं।[४१] इन दोनों के तीन भेद, यथाक्षर (एककल) द्विकल और चतुष्कल होते हैं।[४२] यथाक्षर से द्विगुण मात्रायें होने के कारण द्विगुण और चतुर्गुण मात्रायें होने पर चतुष्कल रूपों का निर्माण होता है।[४३]

तालों का रूप जब ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों की स्थिति के अनुसार होता है, तब ये यथाक्षर कहलाते हैं। यथाक्षर चञ्चत्पुट में अन्तिम अक्षर ट प्लुत होता है और चाचपुट में नहीं। संयुक्त वर्ण से पूर्व वर्ण ह्रस्व होने पर भी दीर्घ या गुरु माना जाता है, फलतः चञ्चत्पुट शब्द में क्रमशः गुरु, गुरु, लघु, प्लुत हैं। इसलिए यथाक्षर चञ्चत्पुट का रूप 'ऽऽ।ऽ' और यथाक्षर चाचपुट का रूप 'ऽ।।ऽ' है। यथाक्षर चञ्चत्पुट में आठ और यथाक्षर चाचपुट में छः मात्रायें होती हैं।[४४]

जाति—रञ्जन और अदृष्ट अभ्युदय को जन्म देते हुए विशिष्ट स्वर ही विशेष प्रकार के सन्निवेश से युक्त होने पर जाति कहे जाते हैं। दश लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश जाति कहलाता है।[४५]

जातियाँ श्रुति, ग्रह, स्वर आदि के समूह से जन्म लेती हैं, इसलिए जातियाँ कहलाती हैं, जातियों से रस की प्रतीति उत्पन्न या आरम्भ होती है। अथवा

---

४१. त्र्यस्रश्च चतुरस्रश्च स तालो द्विविधः स्मृतः।
चतुरस्रस्तु विज्ञेयस्तालश्चञ्चू (च) त्पुटेऽम्बुधैः॥
—भरत : नाट्यशास्त्र, पृ० ४७६।

४२. त्र्यस्रः स खलु विज्ञेयस्तालश्चापपुटो भवेत्।
—भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० ३४३।

४३. तौ चञ्चत्पुट-चाचपुटौ (द्विगुणौ) द्विकलापेक्षया द्विगुणीकृतौ सन्तौ चतुष्कला-विन्युच्येते। अष्टगुरुसंमितो द्विकलचञ्चत्पुटो द्विगुणीकृत्य षोडशगुरु-संमितः संश्चतुष्कलो भवति। षड्गुरुसम्मितो द्विकलचाचपुटो द्विगुणीकृत्य द्वादशगुरुसम्मितः संश्चतुष्कलो भवति।
—संगीत-रत्नाकर, मल्लिनाथकृत टीका, अ० सं०, त्यला, पृ० ९।
(भरत का संगीतशास्त्र, पृ० २३६)

४४. कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धान्त, पृ० २३६।

४५. तत्र केयं जातिर्नाम? उच्यते—स्वरा एव विशिष्टसन्निवेशभाजो महा-ष्टाभ्युद्यं च जनयन्तो जातिरित्युक्ताः। कोऽसौ सन्निवेश इति चेत् जाति-लक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः।
—आचार्य अभिनवगुप्त : भरतकोश, पृ० २२७।

राग आदि के जन्म का कारण होने से विशिष्ट स्वरसन्निवेश जाति की संज्ञा ले लेता है। अथवा ये जातियाँ मनुष्य की ब्राह्मणत्व आदि जातियों के समान हैं।[४६]

जातियों के भेद—पद्मचरित में धैवती, आर्षभी, षड्ज, षड्जोदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी, षड्जमध्यमा, गान्धारोदीच्या, मध्यमपंचमी गान्धारपञ्चमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कौशिकी ये अठारह जातियाँ कही हैं।[४७] भरतमुनि ने भी जातियों के ये ही अठारह भेद गिनाए हैं।[४८]

धैवती—आरोह में षड्ज और पंचम लंघ्य या वर्ज्य है। रि ध बहुल स्वर हैं। ताल पंचपाणि है। मार्ग, गीति, प्रयोग इत्यादि षाड्जी जाति की तरह होते हैं। कलायें बारह हैं। इस जाति में चौक्ष, केशिकी, देशी, सिंहली इत्यादि रागों की छाया है।[४९]

आर्षभी—इस जाति में गान्धार और निषाद का दूसरे पाँच स्वरों के साथ मिलाकर प्रयोग करना पड़ता है। इस जाति में गान्धार और निषादबहुल स्वर हैं। पंचम अल्प स्वर है। पंचम का लंघन होता है। ताल चञ्चत्पुट (८ अक्षर) है। कलायें आठ हैं। नैष्क्रामिक ध्रुवा में प्रयोग किया जाता है। इस जाति में देशी मधुकरी की छाया है।[५०]

षड्ज—इसे षाड्जी भी कहते हैं। इस जाति में (१) षाडव और मांडव-रहित सम्पूर्ण रूप में काकली स्वरों का प्रयोग है। (२) सगा सधा जोड़कर प्रयोग करना है। (३) गान्धार जब अंश होता है तब निषाद का लोप नहीं है। (४) इस जाति के प्रबन्ध में ताल है। पंचपाणि में जो षट्पितापुत्रक नामक ताल का एक भेद है, ताल है। (५) यह ताल एक कला, द्विकला और चतुष्कला में प्रयुक्त किया जाता है। इस ताल के मार्ग में चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण का (अर्थात् हर कला

---

४६. श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः। अतो जातय इत्युच्यन्ते यस्माज्जायते रसप्रतीतिरारभ्यत इति जातयः। अथवा सकलस्य रागादेः जन्महेतुत्वाज्जातय इति। यद्वा जातय इव जातयः, यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः। —मतङ्ग : भरतकोष, पृ० २२७।

४७. पद्म० २४।१२-१५।

४८. भरत : नाट्यशास्त्र, (बम्बई संस्करण), पृ० ४३९।

४९. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५३।

५०. वही, पृ० ५२।

की दो, चार और आठ मात्राओं का) प्रयोग होता है। (६) गीति में मागधी, संभाविता और पृथुला इन तीनों का प्रयोग है। (७) नाटक में इस जाति का प्रयोग नैष्क्रामिक ध्रुवा में पहले दृश्य में किया जाता था। संगीतरत्नाकार-काल के (ई० सन् १२०० के) बराटी राग की छाया इस जाति में थी।[५१]

षड्जोदीच्या—स म नि और ग इन चारों में दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। मद्रव गान्धारबहुल स्वर है। षड्ज और ऋषभ अतिबहुल स्वर हैं। निषाद और गांधार अंश होते हैं तो निषाद का अल्पत्व नही होता। गीति, ताल, कला, विनियोग आदि षाड्जी के ही समान है। इसका प्रयोग दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान में होता था।[५२]

निषादी—स म प ध अल्पत्व स्वर हैं और नि रि ध बहुल स्वर हैं। विनियोग षाड्जी की ही तरह होता है। ताल चच्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। चौक्ष, साधारित, देशी बेलावली आदि की छाया इस जाति में पाई जाती है।[५३]

गांधारी—इस जाति में न्यास, स्वर एवं अंशस्वर अन्य स्वरों के साथ प्रयुक्त किये जाते है। रि और ध का साथ प्रयोग किया जाता है। पंचम के अंश होने पर जाति षाडव और ओडवरहित अर्थात् पूर्ण होती है। नि, स, म, इनमें कोई एक स्वर अंश होता है तो ओडव रूप नहीं होता। पूर्ण और षाडव रूप ही होते हैं। इसका ताल चच्चत्पुट है। प्रत्येक अक्षर की कलायें सोलह हैं। इसका प्रयोग तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में होता था। गांधारपंचमी, देशी बेलावली इन दोनों रागों की छाया इस जाति में है।[५४]

षड्ज कैशिकी—ऋषभ और मध्यम अल्पत्व स्वर हैं। ताल चच्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। दूसरे दृश्य मे प्रावेशिकी ध्रुवा मे इसका प्रयोग होता था। इस जाति में गांधार पंचम, हिंदोल और देशी बेलावली की छायायें हैं।[५५]

षड्ज मध्यमा—इस जाति में सब अंश स्वरों में से (स रि ग म प ध नि) दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। इस जाति मे अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है। निषाद का अल्पत्व है। गांधारांश न होने पर षाडव-औडव में गांधार और निषाद विवादी स्वर हैं। गीति, ताल, कला ये षाड्जी की तरह हैं। यह दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान मे प्रयुक्त होती है।[५६]

---

५१. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५२।
५२. वही, पृ० ५४। ५३. वही, पृ० ५५।
५४. वही, पृ० ५२-५३। ५५. वही, पृ० ५३।
५६. वही, पृ० ५४।

गांधारोदीच्या—पूर्ण स्वरूप में अंश के सिवा अन्य स्वर अल्पत्व के हैं। षाडव रूप में भी नि, ध, प तथा गा का अल्पत्व है। रि और ध साथ-साथ आते हैं। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। चौथे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग है।[५७]

मध्यपंचमी (पंचमी)—इस जाति में स ग और म अल्पत्वस्वर हैं। रिम और गनि के प्रयोग साथ-साथ होते है। इस जाति में भी अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है। ऋषभ, अंश रहता है तो औडव रूप नहीं होता। पूर्ण और षाडव मात्र होते हैं। ताल चञ्चत्पुट है। तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था। चोक्ष पंचम तथा देशी आंधाली की रागच्छायायें इस जाति में है।[५८]

गांधारपंचमी—इस जाति में गांधारी और पंचमी दोनों जातियों के समान, स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। चौथे दृश्य में ध्रुवा गान मे इसका प्रयोग होता था।[५९]

रक्तगांधारी—षड्ज और गांधारी का साथ-साथ प्रयोग होता है। धैवत और निषाद बहुल स्वर है। ताल, गीति और कला षाड्जी के ही अनुसार है। तीसरे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था।[६०]

मध्यमा—इस जाति में षड्ज और मध्यम बहुल स्वर हैं। इस जाति में साधारण स्वर अर्थात् अन्तर काकली स्वरों का प्रयोग है। गांधार और निषाद अल्पत्व स्वर हैं। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें आठ हैं। इसका प्रयोग दूसरे दृश्य में ध्रुवा गान मे होता था। चोक्ष (शुद्ध) षाडव और देशी आंधाली इन दोनों की छाया इस जाति में है।[६१]

आन्ध्री—इस जाति में रि ग ध और नि इन स्वरों को मिला-मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। अंशस्वर से न्यासस्वर तक का क्रमसचार है। अन्य लक्षण गांधारपंचमी के अनुसार ही है।[६२]

मध्यमोदीच्या (मध्यमोदीच्यवा)—इस जाति में अल्पत्व, बहुत्व और स्वरसंगति गांधारोदीच्यवा के समान हैं। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। चौथे दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था।[६३]

कर्मारवी—इस जाति में जो स्वर अंश के नहीं हैं, वे अन्तरमार्ग प्रयोग के बहुत स्वर हैं। गांधार अति बहुल स्वर हैं। अंश स्वरों में से दो-दो स्वरों का

---

५७. वासुदेवशास्त्री, संगीतशास्त्र, पृ० ५४।
५८. वही, पृ० ५३।
५९. वही, पृ० ५५।
६०. वही, पृ० ५४।
६१. वही, पृ० ५३।
६२. वही, पृ० ५५।
६३. वही, पृ० ५५।

साथ-साथ प्रयोग होता है। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें सोलह हैं। पाँचवें दृश्य में ध्रुवा गान में इसका प्रयोग होता था।

नन्दनी—(नन्दयन्ती) इस जाति में गांधार ग्रहस्वर है। मतान्तर में पंचम भी ग्रहस्वर है। मन्द्र ऋषभ बहुल स्वर है। ताल चञ्चत्पुट है। कलायें बत्तीस हैं। नाटक में पहले दृश्य में ध्रुवागान में इसका प्रयोग होता था।[६४]

कौशिकी—इस जाति में निषाद और धैवत अंश हों तो पंचम न्यास रहना चाहिए। इस विषय में मतान्तर भी है कि नि एवं ग अंश होने पर नि ग और प इन तीनों को न्यासस्वर रहना चाहिए। ऋषभ अल्पस्वर है। निषाद और पंचम बहुल स्वर हैं। सारे अंश स्वरों में अर्थात् स ग म प ध नि में दो-दो स्वरों का प्रयोग साथ-साथ होता है। ताल, कला और गीति षाड्जी के समान है। इसका प्रयोग पाँचवें दृश्य में और ध्रुवागान में होता था।[६५]

संगीत की अभिव्यक्ति—संगीत की अभिव्यक्ति कंठ, शिर और उरःस्थल से होती है।[६६]

सङ्गीत के चार पद—स्थायी, संचारी, आरोही और अवरोही इन चार प्रकार के वर्णों के सहित होने के कारण चार प्रकार के पद कहे गये हैं। संगीत इन चार पदों में स्थित होता है।[६७]

स्थायी पद के अलङ्कार—प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नावसान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं।[६८]

संचारी पद के अलङ्कार—निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेङ्खोलित, तार, मन्द्र और प्रसन्न ये छः संचारी पद के अलंकार हैं।[६९]

आरोही पद के अलङ्कार—आरोही पद का प्रसन्नादि नामक एक ही अलंकार है।[७०]

अवरोही पद के अलङ्कार—अवरोही पद के प्रसन्नान्त और कुहर दो अलंकार हैं।[७१]

ग्राम[७२]—ग्राम शब्द समूहवाची है। जिस प्रकार कुटुम्ब में लोग मिल-जुलकर मर्यादा की रक्षा करते हुए इकट्ठे रहते हैं उसी प्रकार संवादी स्वरों का वह

६४. के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० ५५।
६५. वही, पृ० ५४।
६६. पद्म० २४।७।
६७. पद्म० २४।१०।
६८. वही, २४।१६।
६९. वही, २४।१७।
७०. वही, २४।१८।
७१. वही, २४।१८।
७२. वही, ३७।१०८।

समूह ग्राम है, जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान, वर्णन, क्रम, अलंकार आदि का आश्रय हो।[७३]

नृत्य-कला

पद्मचरित में कई स्थानों[७४] पर नृत्य का उल्लेख तथा वर्णन किया गया है। साधारण[७५] लोगों से लेकर राजपरिवार[७६] (भूमगोचरी[७७] और विद्याधरों[७८] तक के यहाँ) तक सभी स्थानों पर नृत्यकला सीखी जाती थी। राजा सहस्रार के यहाँ छब्बीस हजार नृत्यकार नृत्य करते थे।[७९] पशुओं को भी नृत्य की शिक्षा दी जाती थी। राजा सहस्रार के पुत्र-जन्मोत्सव पर मनुष्यों की तो बात ही दूर रही, हाथियों ने भी अपनी चंचल सूँड़ उठाकर गर्जना करते हुए नृत्य किया था।[८०]

सुन्दर नृत्य के लिए आवश्यक बातें—

१—सुन्दर नृत्यों के लक्षण का ज्ञान।[८१]

२—मनोहर वेषभूषा (हार, माल्यादि) से अलंकृत होना।[८२]

३—परम लीला से युक्त होना।[८३]

४—स्पष्ट रूप से अभिनय दिखलाना।[८४]

५—शरीर के अंग-प्रत्यङ्ग (बाहु आदि) सुन्दर होना।[८५]

६—हाव-भाव आदि के दिखलाने में निपुण होना।[८६]

७—चरणों का विन्यास शब्दरहित होना।[८७]

८—नृत्य करते समय एक जाँघ चलना।[८८]

७३. समूहवाचिनौ ग्रामौ स्वरश्रुत्यादिसंयुतौ।
यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूय वसन्ति हि॥
सर्वलोकेषु स ग्रामो यत्र नित्यं व्यवस्थितः।
षड्जमध्यम संज्ञौ तु द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ किल॥
—मतङ्ग : भरतकोश, पृ० १८९ (भरत का संगीतसिद्धान्त, पृ० ५)

७४. पद्म० ३८।१३०, ३९।५३, ५६, ४०।२३, ३७।९५, ८८।२८, ३७।१०८, ७।३४८, ७।१६, १०३।६६, २।२२, २४।६, ७१।८, ३७।१०९।

७५. पद्म० ७१।८।

७६. पद्म० २४।६।

७७. वही, १०३।६६।

७८. वही, १०३।६६।

७९. वही, ७।२५।

८०. वही, ७।१६।

८१. वही, ३९।५३।

८२. वही, ३९।५३।

८३. वही, ३९।५४।

८४. वही, ३९।५४।

८५. वही, ३९।५४।

८६. वही, ३९।५४।

८७. वही, ३९।५५।

८८. वही, ३९।५५।

९—शरीर की समस्त चेष्टायें संगीतशास्त्र के अनुरूप होना।[८९]

१०—दर्शकों के नेत्रों को रूप से, कानों को मधुर स्वर से और मन को रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बाँधने की चेष्टा करना।[९०]

११–साथ में नृत्य करने वाले के स्वर में स्वर मिलाकर गाना।[९१]

नृत्य की मुद्रायें—पद्मचरित में नृत्य की निम्नलिखित मुद्राओं के दर्शन होते हैं :

१—मन्द-मन्द मुस्कान के साथ देखना।[९२]

२—भौंहों का चलाना।[९३]

३—सुन्दर स्तनों को कँपाना।[९४]

४—धीमी-धीमी सुन्दर चाल से चलना।[९५]

५—स्थूल नितम्ब का मटकाना।[९६]

६—भुजाओं का चलाना।[९७]

७—उत्तम लीला के साथ हस्तरूपी पल्लवों का गिराना।[९८]

८—शीघ्रता से स्पर्श कर जिसमें पृथ्वीतल छोड़ दिया जाता है ऐसे पैर रखना।[९९]

९—शीघ्रता से नृत्य की अनेक मुद्राओं का बदलना।[१००]

१०–केशपाश का चलाना।[१०१]

११–कटि की अस्थि हिलाना।[१०२]

१२–नाभि आदि शरीर के अवयवों का दिखलाना।[१०३]

नृत्य के भेद—अङ्गहाराश्रय, अभिनयाश्रय और व्यायामिक ये नृत्य के तीन भेद हैं। इनके अवान्तर भेद भी होते हैं।[१०४] इन सभी नृत्यों के करते समय पैरों मे नूपुर[१०५] पहने जाते हैं जिनकी झनकार आकर्षक होती है।

---

८९. पद्म० ३९।६०।
९०. पद्म० ३७।११०।
९१. वही, ३७।१०८।
९२. वही, ३७।१०४।
९३. वही, ३७।१०४।
९४. वही, ३७।१०४।
९५. वही, ३७।१०५।
९६. वही, ३७।१०५।
९७. वही, ३७।१०५।
९८. वही, ३७।१०५।
९९. वही, ३७।१०६।
१००. वही, ३७।१०६।
१०१. वही, ३७।१०६।
१०२. वही, ३७।१०७।
१०३. वही, ३७।१०७।
१०४. वही, २४।६।
१०५. वही, ३८।१३।

वाद्य-कला

पद्मचरित में वीणा[106], पणिव[107], वेणु[108], मृदंग[109], वंश[110] (बाँसुरी), मुरज[111], झर्झर[112] (झांझ), आनक[113] (नगाड़ा), शङ्ख[114], भेरी[115], तूर्य[116], काहल[117], दुन्दुभि[118], झल्लरी[119] (झालर), पटह[120], तंत्री[121] (वीणा), ढक्का[122] आदि वाद्यों का प्रयोग मिलता है।

वाद्यों के चार भेद—पद्मचरित में वाद्यों के चार प्रकार कहे गये हैं :

१. तत—तन्त्री अर्थात् वीणा से उत्पन्न होनेवाले।[123]

२. अवनद्ध—मृदङ्ग से उत्पन्न होनेवाले।[124]

३. सुषिर—बाँसुरी से उत्पन्न होनेवाले[125] अर्थात् छिद्रों में फूक मारने से ध्वनित होनेवाले[126] वाद्यों का नाम सुषिर वाद्य है।

४. घन—ताल से उत्पन्न होने वाले।[127]

के० वासुदेव शास्त्री के अनुसार तत वाद्य अनेक प्रकार की वीणायें अर्थात् एकतन्त्री, नकुल, त्रितन्त्रिका, चित्रा, विपञ्ची, मत्तकोकिला, आलापिनी, किन्नरी, पिनाकी और आधुनिक तन्त्रीवाद्य अर्थात् जन्त्र, चतुस्तन्त्री, विचित्र-वीणा, रुद्रवीणा, सितार, सरोद, स्वरवत, बाल सरस्वती, स्वरमण्डली, सारङ्गी, दिलरुबा, वायलिन, तानपुरा, मोरसिंह आदि हैं।

सुषिर वाद्य में वंशी आदि विविध प्रकार की बाँसुरियाँ, शहनाई, सुन्दरी, नाँगस्वर, मुखवीणा या छोटा नागस्वर, काहल, श्रीचिह्न, (तिरुच्चिन्न), शङ्ख, शृङ्ग, कलारिनट, ट्रम्पेट, साक्सफोन आदि हैं।

---

१०६. पद्म० ३९।४७, ३६, ९२, ४८।२, १२।१६।

१०७. वही, १७।२७५।

१०८. पद्म० १७।२७५।

१०९. वही, ३६।९२।

११०. वही, ४०।३०।

१११. वही, ४०।३०।

११२. वही, ४०।३०।

११३. वही, ४०।३०।

११४. वही, ४०।३०।

११५. वही, ४०।३०।

११६. वही, ६८।९।

११७. वही, ६८।९।

११८. वही, ८८।२७।

११९. वही, ८८।२७।

१२०. वही, ३।१६२।

१२१. वही, २४।२०।

१२२. वही, ८०।५५।

१२३. वही, २४।२०।

१२४. वही, २४।२०।

१२५. वही, २४।२०।

१२६. के० वासुदेव शास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २५३।

१२७. पद्म० २४।२०।

अनवद्य वाद्यों में प्राचीनकाल के वाद्य मृदङ्ग या मार्दल या मुद्दल, मुरज, पणव, दर्दुर, हुडुक्का, पुष्कर, घट, डिंडिम, ढक्का, आवुज, कुडुक्का, कुडुवा, ढवस, घढस, रुञ्जा, डमरुक, मण्डि, ढक्का, ढक्कुलि, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुन्दुभि, भेरी, निस्साण आदि हैं।[१२८]

तन्त्री—प्राचीन ग्रन्थों में वीणा के अनेक प्रकारों का उल्लेख हुआ है। संगीत-रत्नाकर के अनुसार एकतन्त्री नामक वीणा के दण्ड की लम्बाई तीन हस्त अर्थात् ७२ अंगुल (५४ इंच) होती थी। दण्ड की परिधि या घेरे का नाप एक वितस्ति या विता (९ इंच) होता था। दण्ड का छिद्र पूरी लम्बाई में डेढ़ अंगुल (१$\frac{1}{2}$ इंच) व्यास का रहता था। एक सिरे से १७ अंगुल की दूरी पर अलाबु या कद्दू को बाँधना होता था। दण्ड आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। कद्दू का व्यास ६० अंगुल (४५ इञ्च) होता था। दूसरे सिरे में ककुभ रहता था। ककुभ के ऊपर धातु से बनाई हुई कूर्मपृष्ठ की भाँति पत्रिका होती थी। कद्दू के ऊपर नागपाशसहित रस्सी बाँधी जाती थी। ताँत अर्थात् स्नायु की तन्त्री को नागपाश में बाँधकर ककुभ के ऊपर की पत्रिका के ऊपर शंकु या खूँटी से बाँधा जाता था। तन्तु और पत्रिका के बीच में नादसिद्धि के लिए वेणु-निर्मित जीवा रखते थे। इस वीणा में सारिकायें नहीं हैं। बायें हाथ के अँगूठा कनिष्ठिका और मध्यमा पर वेणुनिर्मित कम्रिका को धारण करके तथा कद्दू को अधोमुख करके, ककुभ को दाहिने पाँव पर रखकर कद्दू को कंधे के ऊपर रहने की स्थिति में रखकर जीवा से एक बित्ता की दूरी पर ऊँगली से वादन किया जाता था।[१२९] पद्मचरित में तत का स्वरूप समझाते हुए तन्त्री शब्द का प्रयोग किया गया है।[१३०]

अवनद्ध वाद्य

मृदङ्ग—मृदङ्ग शब्द आदिकाल में पुष्कर वाद्य का नाम था। पुष्करवाद्य में चमड़े से मढ़े हुए तीन मुख थे। दो मुख बायीं और दाहिनी ओर रहते थे, तीसरा मुख ऊपर रहता था। उसका पिण्ड मृत् या मिट्टी से बनाया जाता था। इसी कारण इसका नाम मृदङ्ग पड़ा। कुछ समय बाद बायीं और दाहिनी ओर दो ही मुखवाले वाद्य की सृष्टि हुई, पश्चात् उसका पिण्ड लकड़ी से बनाया गया।

---

१२८. संगीतशास्त्र, पृ० २५३, २५४।
१२९. वहीं, पृ० २५५।
१३०. पद्म० २४।२०।

मृदङ्ग का पिण्ड बीजवृक्ष (तमिल में वेङ्गैः) या पनस की लकड़ी से बनाया जाता है। उसकी लम्बाई २१ (२५¾ इञ्च) है। लकड़ी का दल आधे अंगुल का है। दाहिना मुख १४ अंगुल और बाँया मुख १३ अंगुल है, मध्य में १५ अंगुल है। दोनों ओर के मुख चमड़े से मढ़े जाते थे। किनारे पर चमड़ा घनता से युक्त रहता था। उस चमड़े के घेरे में २४ छिद्र रहते थे। छिद्रों का पारस्परिक अन्तर एक अंगुल रहता था। उन छिद्रों में से वेणी की तरह चमड़े की रस्सी (वघ्र, बद्धी) से बाँधा जाता था। इन दोनों पूड़ियों को चमड़े की रस्सी से दोनों ओर खीचकर दृढ़ता से बाँधा जाता था। रस्सी के बन्धन को ढीला करने पर तानने से मृदङ्ग के स्वर को ऊँचा या नीचा कर सकते थे। पकाये हुए चावल को अपामार्ग के भस्म के साथ मिलाकर दोनों पूड़ियों के मध्य में लगाया जाता था। उसका नाम वोहण है। संगीत-रत्नाकर में कहा गया है कि बायीं ओर अधिक और दाहिनी ओर थोड़ा कम लगाया जाता था। पर आजकल बायें मुख मे बजाने से पूर्व गुंथा हुआ आटा छोटी आकृति में लगाते हैं और दाहिने मुख में मृदङ्ग बनाते समय ही लकड़ी का कोयला, पकाया हुआ चावल तथा गोंद को मिश्रित कर तीन इञ्च व्यास के चक्राकार मे लगाते हैं। उसे स्थिर रहने देते है।[१३१]

पटह[१३२] (नगाड़ा)—आबनूस की लकड़ी से बनाया जाता था। उसकी लम्बाई २।। हाथ की है। मध्य में घेरे का नाप ६० अंगुल है। दाहिने मुख का व्यास ११।। अंगुल है। बायें मुख का व्यास १० अङ्गुल है। दाहिनो ओर लोहे का पट्टा होता है। बायी ओर लताओं का पट्टा लगाना पड़ता है। उससे चार अङ्गुल दूर लोहनिर्मित तीसरा पट्टा लगता है। दोनों ओर मृत बछड़े के चमड़े से मढ़ाया जाता है। बायीं ओर के चमड़े के घेरे में सात छिद्र बनाकर उनमें पतली रस्सी से सोने, चाँदी आदि से बनाए हुए चार अंगुल लम्बे सात कलशों को ढीला बाँधा जाता है। दाहिनी ओर से उन्हें फिर उस चमड़े से बाँध दिया जाता है। इसे कोण नामक साधन या हाथ से बजाते हैं। इसी तरह का पटह कुछ छोटा रहे तो उसे देशी पटह या अड्डावुज कहते हैं। पटह का देवता स्कन्द है।[१३३]

ढक्का[१३४]—इसकी लम्बाई एक हस्त की है। परिधि ३९ अंगुल और मुख का व्यास १३ अंगुल है। लता का वलय है। चमड़े से मढ़ा रहता है। चमड़े

---

१३१. के० वासुदेवशास्त्री : संगीतशास्त्र, पृ० २७३, २७४।

१३२. पद्म० ८२।३०, ८०।५४।

१३३. संगीतशास्त्र, पृ० २७९, २८०।

१३४. पद्म० ८०।५५।

में सात छिद्र रहते हैं। यह छिद्रों के द्वारा रस्सी से बाँधा जाता है। मध्यभाग के हाथ से कुडुप नामक कोण के द्वारा वादन किया जाता है।[१३५]

पणिघ (तबला)[१३६]—तबले में मृदङ्ग के दो भाग अलग-अलग हैं। दोनों भागों में मुख रहते हैं। दाहिने भाग में मृदङ्ग की दाहिनी ओर उत्पन्न होनेवाले शब्द उत्पन्न होते हैं। बायें में मृदङ्ग की बायीं ओर के शब्द बोलते हैं। दाहिना भाग लकड़ी से और बायाँ भाग धातु से बनाया जाता है। उत्तरभारत में तबला मृदङ्ग के स्थान में है।[१३७]

घनवाद्य ताल[१३८]

कांस्य धातु से बनाया जानेवाला वाद्य घनवाद्य है। इस धातु को आग में भलीभाँति पकाकर पहले चक्राकार कर लेते हैं। इस चक्र का मुख सवा दो अंगुल का होता है। उसका मध्य भाग अंगुल भर नीचा रहता है। उस निम्न देश के ठीक बीच में एक रंध्र होता है जिसमें डोरा पिरोया जाता है जो उन्नत भाग निम्न प्रदेश को घेरे रहता है। वह डेढ़ अंगुल का बनाना चाहिए, जिससे तालों की ध्वनि कानों को अच्छी लगेगी। उसी रंध्र में टिका रखने के लिए सूत्र को एक ग्रन्थि से ग्रथित करते हैं।

ऐसे दोनों तालों को दोनों हाथों की तर्जनी व अंगूठे के सूत्रों को पकड़कर बजाते हैं। ध्वनि कम उत्पन्न होती हो तो वह शक्ति है, अधिक होती हो तो वह शिव है। बायें हाथ के ताल से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि अल्प होनी चाहिए। वैसे ही दाहिने हाथ के ताल से उत्पन्न ध्वनि घनता से युक्त होनी चाहिए। ऐसे नियम के वादन करने में वादक को अश्वमेध का फल प्राप्त होता है। अन्यथा वादक का अमङ्गल होता है। इन दोनों तालों का देवता तुंबुरु है, अलग-अलग रूप में शक्तिताल का देवता शक्ति और शिवताल का देवता शिव है। इस वाद्यताल को बजाने में भी कल्पना होती है, जो अंगुलियों को ऊँचा करके बजाने से सिद्ध होती है।[१३९]

चित्रकला

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्र-सूत्र में कहा गया है कि समस्त कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाली है। जिस गृह में यह कला रहती है वह गृह मांगल्य होता है (तृतीय स्कन्ध ४५।४८) एक

---

१३५. संगीतशास्त्र, पृ० २८०।
१३६. पद्म० १७।२७५।
१३७. संगीतशास्त्र, पृ० २८१।
१३८. पद्म० २४।२०।
१३९. संगीतशास्त्र, पृ० २८२।

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह कही गई है कि नृत्य और चित्र में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मार्कण्डेय मुनि ने कहा था कि नृत्य और चित्र दोनों ही त्रैलोक्य की अनुकृति होती है। महानृत्य में दृष्टि, हाव-भाव आदि की जो भङ्गी बताई गई है वह चित्र मे भी प्रयोज्य है, क्योंकि वस्तुतः नृत्य ही परम चित्र है। 'नृत्यं चित्रं परं स्मृतम्।'[१४०] पद्मचरित में स्वर्ण से चित्रित आसन और सोने के स्थाल बनाये जाने का उल्लेख है।[१४१] जिनेन्द्र भगवान् के चरित्र से सम्बन्धित चित्रपट फैलाने का भी यहाँ उल्लेख किया गया है।[१४२]

चित्र के भेद—चित्र दो प्रकार का होता है : १. शुष्क चित्र, २. आर्द्र चित्र।

शुष्क चित्र के भेद—नाना शुष्क और वर्जित के भेद से शुष्क चित्र दो प्रकार का है।[१४३]

आर्द्र चित्र के भेद—चन्दन आदि के द्रव्य से उत्पन्न होनेवाला आर्द्रचित्र अनेक प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है।[१४४]

सोमेश्वर की अभिलाषार्थ-चिन्तामणि नामक पुस्तक में चार[१४५] प्रकार के चित्रों का उल्लेख है : (१) विद्ध चित्र—जो इतना अधिक वास्तविक वस्तु से मिलता हो कि दर्पण में पड़ी परछाईं के समान लगे। (२) अविद्ध चित्र—जो काल्पनिक होते थे और चित्रकार के भावोल्लास की उमंग में बनाए जाते थे। (३) रस-चित्र जो भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति के लिए बनाए जाते थे। (४) धूलि-चित्र। पद्मचरित के २८वें पर्व मे रुषित नारद द्वारा सीता का सुन्दर चित्र बनाये का उल्लेख मिलता है।[१४६] इस चित्र को विद्ध-चित्र कहा जा सकता है, क्योंकि रविषेण ने इसकी विशेषता प्रत्यक्ष के समान (प्रत्यक्षमिव, अर्थात् यथार्थ के समान दिखाई दे, ऐसा) कही है। इस चित्र मे अंकित बहिन सीता को देखकर भामण्डल शीघ्र ही लज्जा, शास्त्रज्ञान तथा स्मृति से रहित

---

१४०. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ६४।

१४१. पद्म० ४०।१६।

१४२. पद्म० २४।३६।

१४३. वही, २४।३६।

१४४. वही, २४।३६-३७।

१४५. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ६४।

१४६. पद्म० २८।१९।

हो गया।[१४७] वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीर को वह चाहे जहाँ उपेक्षा से डालने लगा।[१४८] उसे न रात्रि में नींद आती थी, न दिन में चैन पड़ता था। वह दिन-रात उसीके ध्यान में मग्न रहता था। सुन्दर उपचारों से उसे कभी सुख नहीं मिलता था।[१४९] वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहार से द्वेष करने लगा मानो उन्हें विषमय समझता हो।[१५०] उसकी समस्त चेष्टायें ऐसी हो गई मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषों ने उसकी आतुरता का पता लगाया।[१५१] नारद के प्रकट होने पर लोगों ने उनसे पूछा—'यह कोई नागकुमार देव की अङ्गना है या पृथ्वी पर आई हुई किसी कल्पवासी देव की स्त्री, किस तरह की देवी है।[१५२] आदि। इसी प्रकार ४०वें पर्व मे वंश-स्थल पर्वत के शिखर पर शुद्ध दर्पणतल के समान उत्कृष्ट भूमि तैयार कर पाँच वर्णों की धूलि से अनेक चित्र बनाए जाने का उल्लेख है। इन्हें स्पष्ट रूप से धूलि-चित्र कहा जा सकता है।[१५३]

मूर्ति-कला

डा० रायकृष्णदास के अनुसार सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा, पीतल, अष्ट-धातु आदि प्राकृतिक तथा कृत्रिम धातु, पारे के मिश्रण, रत्न उपरत्न, काँच, कड़े और मुलायम पत्थर, मसाले, कच्ची या पकाई मिट्टी, मोम, लाख, गंधक, हाथी दाँत, शंख, सीप, अस्थि, सींग, लकड़ी एवं कागद के कुट आदि उपादानों को उनके स्वभाव के अनुसार गढ़कर, खोदकर, उभारकर, कोरकर (चारों ओर

---

१४७. तत्राज्ञानात् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम्।
ह्रीश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत्॥ पद्म० २८।२२।

१४८. ततः शोचति निःश्वासान्मुञ्चतेऽत्यन्तमायतान्।
शुष्यति क्षिपति स्रस्तं गात्रं पत्रक्वचिद् द्रुतम्॥ पद्म० २८।२३।

१४९. न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः।
उपचारेण कान्तेन न जातु सुखमश्नुते॥ पद्म० २८।२४।

१५०. पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि क्ष्वेडं यथा भृशम्।
करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिमे॥ पद्म० २८।२५।

१५१. ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्तैर्विचेष्टितैः।
ज्ञातं तदाऽऽतुरत्वस्य कारणं मतिशालिभिः॥ पद्म० २८।२७।

१५२. महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किंवा विमानजा।
मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथञ्चन॥ पद्म० २८।२१।

१५३. पद्म० ४०।७।

से गढ़कर) पीटकर, हाथ से या औजार से डौलिया कर (हाथ से उपकरण को जहाँ जैसी आवश्यकता हो, ऊँचा उठाकर तथा नीचे दबाकर आकृति उत्पन्न करना) ठप्पा करके या साँचा छापकर (अर्थात् जो प्रक्रिया जिस उपादान के अनुकूल हो एवं जिस प्रक्रिया में जो खिलता हो), उत्पन्न की हुई आकृति को मूर्ति कहते हैं।[१५४]

जिन-प्रतिमा—पद्मचरित मे हमे अनेक स्थलों पर विभिन्न मूर्तियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें सर्वाधिक उल्लेख तीर्थंकर की मूर्ति या प्रतिमा के विषय में मिलते हैं। यहाँ जिन-प्रतिमा को चैत्य भी कहा है।[१५५] ये चैत्य कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों प्रकार के थे।[१५६] प्रतिमायें विशेषतया पंचवर्ण (काला, नीला, हरा, लाल, सफेद) की निर्मित होती थीं।[१५७] रथनूपुर के वन मे निर्मित जैनमन्दिर मे राजा जनक ने जिस जिन-प्रतिमा का दर्शन किया था वह प्रतिमा अग्नि की शिखा के समान गौर थी। उसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था। वह पद्मासन से स्थित तथा बहुत ऊँची थी। उसके सिर पर जटाएँ थी।[१५८] साथ ही साथ वह आठ प्रातिहार्यों से युक्त थी।[१५९] प्रातिहार्यों से युक्त जिन-प्रतिमा बनाये जाने के उल्लेख से यह सिद्ध होता है कि उस समय यक्षों और देवों की मूर्तियाँ भी तीर्थंकर मूर्ति के साथ बनाई जाती थी। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि कुषाण-काल की जिन-मूर्तियों में प्रतीक-संयोजना के अतिरिक्त यक्ष-यक्षिणी-अनुगामित्व प्राप्त नहीं होता। यह विशेषता गुप्त-काल से प्रारम्भ होती है, जबसे तीर्थंकर की प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षणियों आदि का साहचर्य अनिवार्य बन गया।[१६०]

---

१५४. रायकृष्णदास : भारतीय मूर्तिकला, पृ० १५, १६।

१५५. पद्म० ९८।५६।

१५६. पद्म० ९८।५६।

१५७. वही, ९५।२७।

१५८. वही, २८।९५।

१५९. पद्म० २८।९६, जैनग्रन्थों में तीर्थङ्करों के ४६ मूलगुणों का उल्लेख आता है। इनमें आठ प्रातिहार्य भी सम्मिलित हैं। ये प्रातिहार्य तीर्थङ्कर के केवलज्ञान के बाद प्रकट होते हैं। इनकी गणना इस प्रकार है—१. अशोकवृक्ष का होना, २. रत्नमय सिंहासन, ३. भगवान् के सिर पर तीन छत्र का फिरना, ४. भगवान् के पीछे भामण्डल का होना, ५. निरक्षरी दिव्यध्वनि, ६. देवों द्वारा पुष्पवृष्टि, ७. यक्षों द्वारा चौंसठ चवरों का डुलाना, ८. दुन्दुभि-बाजों का बजना।

१६०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ४९३।

जैन-साधु केशों का लुंचन करते हैं, उनके लिए जटा रखना निषिद्ध है, फिर भी पद्मचरित में जिनमूर्ति को जटारूपी मुकुट से युक्त[१६१] कहा है। इससे अनुमान होता है कि इस प्रकार की मूर्तियाँ उनके तप की अवस्था का द्योतन कराने के लिए बनाई जाती होंगी। चक्रवर्ती भरत ने कैलास पर्वत पर सर्वरत्नमय दिव्य मन्दिर बनवाकर ऋषभदेव की प्रतिमा विराजमान कराई थी। वह सूर्य के समान देदीप्यमान थी, पाँच सौ धनुष ऊँची थी, दिव्य थी। उसकी पूजा गन्धर्व, देव, किन्नर, अप्सरा, नाग तथा दैत्य आदि किया करते थे।[१६२] वंशगिरि पर्वत पर राम ने हजारों जिन-चैत्य (जिन-प्रतिमायें) बनवाए थे।[१६३] बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत भगवान् के समय समस्त भरतक्षेत्र मे वह पृथ्वी अर्हन्त भगवान् की पवित्र प्रतिमाओं से अलंकृत थी।[१६४] उन मन्दिरों मे स्वर्ण, चाँदी आदि की बनी छत्रत्रय, चामरादि परिवार से सहित पाँच वर्ण की अत्यन्त सुशोभित जिन-प्रतिमायें थी।[१६५] विभीषण के भवन मे पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मरागमणिनिर्मित अनुपम प्रतिमा विराजमान थी जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमलसमूह की शोभा प्रकट करती थी।[१६६]

शासनदेव—जैन-साहित्य में मन्दिरों के रक्षक के रूप में शासन-देवों का उल्लेख आया है। पद्मचरित में जैन मन्दिरों (जैनाः प्रासादः) को समीचीन रक्षा करने में निपुण, कल्याणकारी तथा भक्तियुक्त शासन-देवों से अधिष्ठित बतलाया गया है।[१६७]

रविमूर्ति (सूर्यमूर्ति)—सीता की तमोमयी अवस्था का वर्णन करते हुए रविषेण ने कहा है कि वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने वाली आर्या सीता बाह्य अलंकारों से यद्यपि रहित थी, तथापि वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो रवि की मूर्ति की तरह संयत हो।[१६८] इस उल्लेख से उस समय रविमूर्ति बनाने की प्रथा का संकेत मिलता है।

मुनिमूर्ति—मुनि-मूर्तियाँ भी प्राचीनकाल मे स्थापित कराई जाती थीं।

---

१६१. पद्म० २८।९५।   १६२. पद्म० ९८।६३-६५।
१६३. वही, ४०।२७।   १६४. वही, ६७।९, १०।
१६५. वही, ६७।१९।   १६६. वही, ७८।६८, ६९।
१६७. अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदेवतैः।
सद्धर्मपक्षरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः॥ पद्म० ६७।१२।
१६८. बाह्यालङ्कारमुक्ताऽपि वस्त्रमात्रपरिग्रहा।
आर्या रराज वैदेही रविमूर्त्येव संयता॥ पद्म० १०५।१०३।

शत्रुघ्न ने सुन्दर अवयवों के धारक सप्तर्षियों की प्रतिमायें विराजमान कराई थीं।[१६९] ये सप्तर्षि सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान्, विनय लालस और जयमित्र नाम के सात निर्ग्रन्थमुनि थे जो विहार करते हुए मथुरा पुरी आए थे।[१७०]

प्रतिहार-मूर्ति (द्वारपाल-मूर्ति)—रावण के महल में प्रवेश करते समय अङ्गद के किसी सुभट (योद्धा) ने हाथ में स्वर्णमयी वेत्रलता को धारण करने वाला एक (कृत्रिम) प्रतिहार (द्वारपाल) देखा। उससे उसने शान्ति जिनालय का मार्ग पूछा परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो 'अरे ! यह अहकारी तो कुछ भी नहीं कहता' यह कहकर किसी सुभट ने वेग से उसे एक थप्पड़ मार दी, पर इससे उसकी अंगुलियाँ चूर हो गईं। बाद में हाथ के स्पर्श से उन्होंने जाना कि यह सचमुच का द्वारपाल नहीं, अपितु कृत्रिम द्वारपाल है।[१७१] इससे स्पष्ट है कि प्रतिहार आदि की भी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं तथा ये मूर्तियाँ इतनी सजीव सी होती थीं कि कोई भी अपरिचित इनको देखकर भ्रम मे पड सकता था।

पशुमूर्तियाँ—पशुओं की भी मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। रावण के आलय में प्रवेश करते समय अंगद के सैनिकों ने ऐसे हाथी देखे जो अंजनगिरि के समान थे, उनके गण्डस्थल अत्यन्त चिकने थे, दाँत बड़े-बड़े और अत्यन्त देदीप्यमान थे तथा इन्द्रनीलमणि से निर्मित थे। उनके मस्तक पर ऐसे सिंहों के बच्चों ने पैर जमा रखे थे, जिनकी पूँछ ऊपर को उठी हुई थी, जिनके मुख दाढ़ों से अत्यन्त भयंकर थे, जिनके नेत्र भीषण थे तथा जिनकी मनोहर जटायें थीं।[१७२] इस

---

१६९. पद्म० ९२।८२।   १७० पद्म० ९२।१-३।

१७१. दृष्टं कश्चित्प्रतीहारं हेमवेत्रलताकरम्।
जगाद शान्तिगेहस्य पन्थानं देशयाश्विति ।। पद्म० ७१।३५।
कथं न किञ्चिदुत्सिक्तो ब्रवीत्येष विसम्भ्रमः।
इति घ्नन् पाणिना वेगादवापाङ्गुलिचूर्णनम् ।। पद्म० ७१।३६।
कृत्रिमोऽयमिति ज्ञात्वा हस्तस्पर्शनपूर्वकम्।
किञ्चित् कक्षान्तरं जग्मुर्द्वारं विज्ञाय कृच्छ्रतः ।। पद्म० ७१।३७।

१७२. अञ्जनादिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान्।
स्निग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान् ।। पद्म० ७१।१९।
सिंहे बालांश्च तन्मूर्द्धन्यस्ताङ्घ्रीन् वालधीन्।
दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान् ।। पद्म० ७१।२०।

प्रकार के हाथी और सिंहों को सचमुच का हाथी और सिंह समझ पैदल सैनिक भयभीत और अत्यन्त विह्वलता को प्राप्त हो भागने लगे थे।[१७३]

वास्तु-कला

मानसार के अनुसार भूमि, हर्म्य (भवन आदि), मान एवं पर्यंक इन चारों का ही वास्तु-शब्द से बोध होता है। वास्तु की इस चतुर्मुखी व्यापकता की सोदाहरण व्याख्या करते हुए डा० प्रसन्नकुमार आचार्य वास्तु विश्वकोश (पृ० ४५६) में लिखते हैं—'हर्म्य में प्रासाद, मण्डप, सभा, शाला, प्रपा तथा रंग ये सभी सम्मिलित हैं। यान आदिक स्यन्दन, शिविका एवं रथ का बोधक है। पर्यंक में पंजर, मंचली, मंच, फलकासन तथा बाल-पर्यंक सम्मिलित हैं। वास्तु-शब्द ग्रामों, पुरों, दुर्गों पत्तनों, पुटभेदनों, आवासभवनों एवं निवेश्यभूमि का भी वाचक है। साथ ही मूर्तिकला अथवा पाषाणकला वास्तुकला की सहचरी कही जा सकती है।[१७४]

नगर वास्तु

नगरप्रभेद—नगरप्रभेद के अन्तर्गत खेट, कर्वट, द्रोणमुख आदि आते हैं। इन सबका विवरण राजनैतिक जीवनवाले अध्याय में दिया जा चुका है।

मठ[१७५]—मठ या विहार उस स्थान को कहते हैं जहाँ छात्रों के आवास एवं अध्ययन के स्थान हों। परन्तु कालान्तर पाकर ये ही छोटे-छोटे गुरुगृह, कुलपति-कुटीर, छात्रावास तथा भिक्षु-उटज बड़े-बड़े नगरों के आकार मे परिणत हो गए।[१७६] पद्मचरित के ३३वें पर्व के उल्लेख से इन मठों के वातावरण की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

एक बार भ्रमण करते हुए राम जटिल (जटाधारी) तापसियों के आश्रम में पहुँचे। उस आश्रम में अनेक मठ बने थे। मठों पर विशाल पत्ते छाए थे। सबके आगे बैठने के लिए चबूतरे बने हुए थे। इन चबूतरों पर एक ओर पलाश तथा ऊपर की लकड़ियों को गड्डियाँ थी। बिना जोते-बोए अपने आप उत्पन्न होने वाले धान उनके आश्रम मे सूख रहे थे। निश्चिन्तता से हरिण वहाँ रोमन्थ कर रहे थे। जटाधारी बालक उन मठों में जोर-जोर से रटा करते थे। गायों के

---

१७३. दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ताः सत्यव्यालाभिशङ्किताः।
पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम्॥ पद्म० ७१।२१।

१७४. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १७।

१७५. पद्म० ३३।३।

१७६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ५८।

बछड़े पूँछ उठाकर उनके आंगनों में चौकड़ियाँ भर रहे थे। फूलों से सुन्दर लताओं की छाया में बैठे हुए तोता, मैना आदि पक्षी भी बैठकर स्पष्ट उच्चारण करते थे। मठों में छोटे-छोटे वृक्ष थे, जिन्हें कन्यायें अपना भाई समझकर सींचा करती थीं। उन तपस्वियों ने विभिन्न प्रकार के मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदर से भरे स्वागत के शब्द, अर्घ्य के साथ दिए भोजन, मधुर संभाषण, कुटी का दान और कोमल पत्तों की शय्या आदि थकावट को दूर करने वाले उपचार से उनका बहुत सम्मान किया।[१७७] उस आश्रम में रहने वाले तापस सूखे पत्ते खाकर तथा वायु का पानकर जीवन बिताते थे।[१७८] तापसों के साथ उनकी स्त्रियाँ भी रहती थीं।[१७९]

विद्वानों के अनुसार कालान्तर पाकर ये ही छोटे-छोटे गुरुगृह, कुलपति कुटीर, छात्रावास, भिक्षु-उटज बड़े-बड़े नगरों के आकार में परिणत हो गए। ऐसे विश्वविद्यालयीय नगर आज भी पाए जाते हैं। जैसे कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, वाराणसी, प्रयाग आदि विश्वविद्यालयीय नगर।[१८०]

दुर्ग—प्राचीन काल में दुर्ग नगर के रूप में तथा नगर दुर्ग के रूप में सन्निविष्ट होते थे। इसीलिए शब्द-कल्पद्रुम में पुर का अर्थ दुर्ग, अधिष्ठान, कोट्ट तथा राजधानी लिखा है।[१८१] प्राचीन काल में जब शासनपद्धति तथा शासन-व्यवस्था के वे सुन्दर केन्द्रीय साधन उपलब्ध नहीं थे, जिनसे किसी विशाल भूभाग पर शासन की सुव्यवस्था तथा शान्तिरक्षा का प्रबन्ध किया जा सके। विभिन्न बस्तियाँ, चाहे वे ग्राम हों अथवा नगर, अपनी-अपनी रक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं सँभालती थी।[१८२] इसीलिए दुर्गम दुर्ग बनाए जाते थे। पद्मचरित में ऐसे दुर्गम दुर्ग[१८३] का उल्लेख मिलता है। कालान्तर में साधनों और आबादी के विकास के साथ-साथ इस प्रकार के कुछ दुर्ग नगर के रूप में परिणत हो गए।

देश-चयन—प्रकृति, जनपद, एवं जलवायु को दृष्टि में रखकर देशभूमिचयन किया जाता है। राजधानी-नगर के निवेश के सम्बन्ध में आचार्य शुक्र

---

१७७. पद्म० ३३।३-९। १७८. पद्म० ३३।१२।

१७९. वही, ३३।१५।

१८०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ५९।

१८१. 'पुरं कोट्टमधिष्ठानं कोट्टो स्त्री राजधान्यपि'—शब्दकल्पद्रुम (भारतीय स्थापत्य, पृ० ६६)।

१८२. भारतीय स्थापत्य, पृ० ६५-६६।

१८३. पद्म० २६।४७।

कहते हैं—उस सुरम्य एवं समतल भू प्रदेश पर राजधानी नगर का निवेश करना चाहिए, जो विविध प्रकार के विटपो, लताओं और पौधों से आकीर्ण हो, जहाँ पर पशु-पक्षी तथा जीव-जन्तुओं की पूर्ण सम्पन्नता हो, जहाँ पर खाद्य एवं जल की पूर्ण सुलभता हो, जहाँ पर चारों ओर हरियाली, बाग-बगीचे, जंगल के प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय हों। जहाँ पर समुद्र तट पर गमनशील नौकाओं के यातायात द्वारा उनका संचार दृष्टिपथ रहता हो और वह स्थान पर्वत से बहुत दूर न हो।[१८४] शुक्राचार्य द्वारा कथित ये सभी लक्षण न्यूनाधिक संख्या में पद्मचरित में वर्णित नगर के वातावरण में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए रविषेण की आदर्शभूत विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर स्थित रथनूपुर आदि नगरियों के वातावरण पर प्रकाश डाला जाता है।

रथनूपुर आदि नगरियाँ वापिकाओं और बगीचों से व्याप्त हैं। स्वर्ग-सम्बन्धी भोगों का उत्सव प्रदान करने वाली है। बिना जोते उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के फलों से सहित हैं, सब प्रकार की ओषधियों से आकीर्ण है और सबके मनोरथों को सिद्ध करने वाली है।[१८५] वहाँ पर्वतों के समान अनाज की राशियाँ है, वहाँ की खत्तियों का कभी क्षय नहीं होता, वापिकाओं और बगीचों से घिरे हुए वहाँ के महल बहुत भारी कान्ति धारण करते हैं।[१८६] मार्ग धूलि और कण्टक से रहित तथा सुख उपजाने वाले हैं।[१८७] जिनकी मधुर ध्वनि कानों को आनन्दित करती हैं ऐसे मेघ वहाँ चार मास तक योग्य देश तथा योग्य काल में अमृत के समान वर्षा करते हैं।[१८८] वहाँ की हेमन्त ऋतु शीतल वायु से रहित तथा आनन्दप्रद होती है।[१८९] वहाँ ग्रीष्म ऋतु में भी सूर्य मन्द तेज का धारक रहता है।[१९०] वहाँ की अन्य ऋतुएँ भी मनोवांछित वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली हैं तथा वहाँ की निर्मल दिशायें नीहार (कुहरा आदि) से रहित हैं।[१९१] वहाँ ऐसा एक भी स्थान नहीं जो सुख से युक्त न हो। वहाँ की प्रजा सदा भोगभूमि के समान क्रीड़ा करती रहती है,[१९२] इत्यादि।

मार्ग-विनिवेश—पुरनिवेश में स्थापत्य का परम कौशल मार्ग-विनिवेश है। मार्गों का निवेशन केवल पुर की विभिन्न वर्गीय आवास-मालिकाओं के लिए

---

१८४. शुक्रनीति प्र० अ० (भारतीय स्थापत्य, पृ० ७४)।
१८५. पद्म० ३।३१६-३१७।
१८६. पद्म० ३।३२४।
१८७. वही, ३।३२५।
१८८. वही, ३।३२६।
१८९. वही, ३।३२७।
१९०. वही, ३।३२८।
१९१. वही, ३।३२९।
१९२. वही, ३।३३०।

ही आवश्यक नहीं, वरन् नगर के जनपद के साथ सम्बन्ध स्थापन के लिए भी कम उपादेय नही है। तीसरे मार्ग-विनिवेश का परम प्रयोजन दिक्साम्मुख्य वास्तु-कला के आधारभूत सिद्धान्त के अनुरूप प्रत्येक वस्ती के लिए सूर्यकिरणों का उपभोग एवं प्रकाश तथा वायु का स्वच्छन्द सेवन भी कम अभिप्रेत नहीं है। चौथे मार्गों का विनिवेश इस प्रकार हो कि प्रधान मार्ग पुर के मध्य से जाते हों। प्रधान मार्ग या राजमार्गों पर ही नगर के केन्द्र-भवन, राजहर्म्य, सभा, देवायतन एवं पण्यवीथी (बाजार) निविष्ट किए जाते हैं। पाँचवें मार्ग-विनिवेश में संचार-सौकर्य के लिए मार्ग की चौड़ाई आदि भी कम अपेक्षित नहीं है। मार्गों की संख्या कितनी हो, यह पुर पर आश्रित है।[१९३] पद्मचरित में मार्ग-द्योतक राजमार्ग और रथ्या ये दो शब्द ही मिलते हैं। राजमार्ग उस समय सीधे (कौटिल्यवर्जिता) बनाए जाते थे।[१९४]

राजमार्ग का मार्गों में पहला स्थान है। इसका निवेश नगर के मध्य में बताया जाता है। समराङ्गण के अनुसार राजमार्ग की चौड़ाई का प्रमाण ज्येष्ठ, मध्य एवं कनिष्ठ त्रिविध पुरप्रभेदों के अनुसार २४, २०, १६ हस्त (३६, ३० २४ फुट) क्रमशः होना चाहिए। इतना विस्तारपूर्ण होना चाहिए जिससे पदातियों विशेषकर चतुरंगिणी सेना, राजसी जुलूस तथा नागरिकों के सुविधापूर्ण संचार में किसी प्रकार की रुकावट न हो। यह केन्द्रमार्ग पक्का बनाना चाहिए।[१९५] शुक्राचार्य के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ भेद से राजमार्गों की चौड़ाई ४५, ३०, २२।। फुट होनी चाहिए।[१९६]

समराङ्गण सूत्रधार में तीन प्रकार की रथ्यायें बतलाई गई है—(१) महारथ्या, (२) रथ्या, (३) उपरथ्या। आदर्शपुर में कम से कम दो महारथ्यायें होनी चाहिए जो पुर के बाहर जनपद महामार्गों में अनुस्यूत हो जायें। इन दोनों महारथ्याओं की चौड़ाई का प्रमाण १२, १० तथा ८ हस्त (१८,१५, १२ फुट) ज्येष्ठ, मध्यम एवं पुरप्रभेद से क्रमशः बताया गया है।[१९७] रथ्या की चौड़ाई राजमार्ग से आधी तथा उपरथ्या की चौड़ाई राजमार्ग से चौथाई होनी चाहिए। ये रथ्यायें एवं उपरथ्यायें पुर के आन्तरिक निवेश में सहायक बनती हैं। ये

---

१९३. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८५।

१९४. पद्म० ६।१२१।

१९५. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८५।

१९६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ८९।

१९७. वही, पृ० ८५।

उपमार्ग पुर को मुहल्लों में बाँटते हैं।[१९८] पद्मचरित में रथ्याओं को तिराहों और चौराहों सहित कहने से इस बात की पुष्टि होती है।[१९९]

त्रिक-चत्वर (तिराहा, चौराहा)—प्राचीन मार्गविन्यास में मार्ग-संगमों पर विशेष अन्तर प्रदान करके वहाँ पर कोई न कोई सुन्दर वस्तु रखकर उसकी शोभा बढ़ाई जाती थी। तिराहों और चौराहों पर भी किसी न किसी वास्तुकृति के योग से ये संगम सुन्दर बनाए जाते थे।[२००] किसी विशेष अवसर पर तो इनकी शोभा में चार चाँद लग जाते थे। पद्मचरित में ऐसे ही एक विशेष अवसर पर (सीता के आगमन पर) इन तिराहों, चौराहों तथा इनसे सहित मार्गों को सुगन्धित जल से सींचने तथा फूलों से आच्छादित किए जाने का उल्लेख है।[२०१]

जिनालय (जैना प्रासादाः)[२०२]—पुरनिवेश की बहुमुखी योजना में देवा-यतन-विधान प्राचीन पुरनिवेश का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पद्मचरित के एक उल्लेख के अनुसार पर्वत-पर्वत पर, गाँव-गाँव में, पत्तन-पत्तन मे, महल-महल में, नगर-नगर में, संगम-संगम में तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे-चौराहे पर मन्दिर (जिनालय) बनाये जाने की परम्परा की सूचना मिलती है।[२०३] इससे यह ज्ञात होता है कि नगर के अंदर तथा बाहर सभी स्थानों पर मंदिर बनाये जाते थे। ये मन्दिर देश के अधिपति राजाओं तथा गाँव का उपभोग करने वाले सेठों द्वारा बनाये जाते थे।[२०४] इन मन्दिरों में तीनों काल में वन्दना के लिए उद्यत साधुसमूह (साधुसंघ) रहता था।[२०५] साधुसंघ के रहने के उल्लेख से मन्दिरों के व्यावहारिक महत्त्व पर भी प्रकाश पड़ता है। प्राचीन काल के मन्दिर महा-विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का काम तो देते ही थे, साथ ही जनता की धार्मिक जिज्ञासा के पूर्ण समाधाता थे। जिज्ञासु धार्मिक जनता मन्दिरों में जाकर धर्म का उपदेश सुनती थी तथा भजन-संकीर्तन में भाग लेकर उपास्य देव की भक्ति में विभोर होकर अपने को कृतकृत्य करती थी। ये मन्दिर नगर की शिक्षा, दीक्षा, धर्म एवं भक्ति, अध्यात्म एवं चिन्तन, योग एवं वैराग्य के जीते-जागते केन्द्र थे।[२०६]

---

१९८. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ८६।

१९९. पद्म० ९९।१२।

२००. भारतीय स्थापत्य, पृ० ८९।

२०१. पद्म० ९९।१३।

२०२. पद्म० ६७।११।

२०३. वही, ६७।१४-१५।

२०४. वही, ६७।११।

२०५. वही, ६७।१७।

२०६. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० ९७।

उद्यान—पुरनिवेश के लिए कृत्रिम तथा अकृत्रिम (प्राकृतिक) दोनों प्रकार के उद्यान होने चाहिए। इनमें से अकृत्रिम उद्यानों के विषय में देश परीक्षा के प्रसंग में कहा जा चुका है। कृत्रिम उद्यान प्रत्येक नगर में बनाये जाते थे और उनको आकर्षक बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाता था। पद्मचरित में प्रसंगानुसार नगरों में स्थान-स्थान पर उद्यानों के होने की चर्चा की गई है।[२०७] रावण ने जिस देवारण्य उद्यान में सीता को ठहराया था, रविषेण ने उसकी उपमा स्वर्ग से दी है।[२०८] जिस प्रकार स्वर्ग में सभी वस्तुयें सुलभ होती हैं, उसी प्रकार इन उद्यानों में भी सभी प्रकार के भोगोपभोग की वस्तुयें जुटाई जाती होंगी। उस उद्यान के वृक्षों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके बड़े-बड़े वृक्षों की कान्ति कल्प-वृक्ष के समान थी।[२०९] वापी,[२१०] सरोवर तथा कूप उद्यान के चिर सहचर होते थे।[२११] उद्यानों में मन्दिर बनाये जाते थे तथा मन्दिरों में फूल आदि से सजावट तथा अर्चन आदि किया जाता था।[२१२] उद्यानों में वापियाँ बनाने के अनेक[२१३] उल्लेख प्राप्त होते हैं। ये वापिकायें स्वच्छ जल से भरी होती थी। इनमें सीढ़ियाँ भी होती थीं तथा कमल और उत्पल आदि लगाए जाते थे।[२१४] सरोवरों में भी सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं तथा कमल आदि उगाकर मनोहर बनाने का यत्न किया जाता था।[२१५]

रक्षा-संविधान—समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार नगर के रक्षार्थ प्राकारादि निवेश के १. वप्र एवं परिखा, २. प्राकार, ३. द्वार एवं गोपुर, ४. अट्टालक ५. रथ्या ये पाँच प्रधान अंग हैं।[२१६]

वप्र एवं परिखा—नगर की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर परिखा या खाई खोदी जाती थी। पद्मचरित में राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कहा

---

२०७. पद्म० ८५।६, ७ पर्व ७८।

२०८. उदीचीनं प्रतीचीनं तत्रास्ति परमोज्ज्वलम्।
गीर्वाणरमणं ख्यातमुद्यानं स्वर्गसन्निभम्॥
तत्र कल्पतरुच्छाय-महापादपसंकुले।
स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश स्वनिकेतनम्॥ पद्म० ४६।२७, २८।

२०९. पद्म० ४६।२८।

२१०. पद्म० ४६।५२।

२११. वही, ४८।४८।

२१२. वही, ६८।१६, १७।

२१३. वही, ६८।११, ४६।१६०, १४७, १५२, १५८, ९५।१९।

२१४. वही, ५१।४।

२१५. वही, ६८।२।

२१६. द्विजेन्द्र शुक्ल : भारतीय स्थापत्य पृ० १०१, १०२।

गया है कि समुद्र के समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुई थी।[२१७] नगर के अतिरिक्त बड़े-बड़े मन्दिरों के चारों ओर भी सुरक्षा की दृष्टि से परिखायें खोदी जाती थीं।[२१८]

परिखाओं का खनन एवं वप्र भूमि का निर्माण संयुक्त कार्य है।[२१९] कौटिल्य के अनुसार खाई से चार दण्ड की दूरी पर ६ दण्ड (चौबीस हाथ) ऊँचा नीचे से मजबूत, ऊपर की ऊँचाई से दुगुना विस्तृत वप्र (मिट्टी का चबूतरा) बनवाये। इन वप्रों को बनाते समय बैलों और हाथियों द्वारा भलीभाँति खोदवाकर और दबवाकर खूब मजबूत कर दें। उस पर कटीली झाड़ियाँ और विषैली लतायें लगा दे।[२२०]

प्राकार—प्राकार का साधारण अर्थ उत्तुङ्ग मोटी दीवार है, जो पुर के चारों ओर विन्यस्त की जाती थी।[२२१] प्राकारों का विन्यास वप्रों के ऊपर कराया जाता था। उसकी ऊँचाई वप्र के विस्तार से दूनी होनी चाहिए। इसका निर्माण ईंटों या पत्थरों से होता था। ईंटों की अपेक्षा पत्थरों का प्राकार प्रशस्त माना जाता था।[२२२] पद्मचरित में अत्यधिक ऊँचे प्राकार बनाने का उल्लेख किया गया है। राजगृह नगर का जो प्राकार था वह मानुषोत्तर पर्वत के समान जान पड़ता था।[२२३] इसीसे उसकी ऊँचाई का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। कौटिल्य के अनुसार प्राकार की नीव का विस्तार इतना होना चाहिए कि उसके ऊपर एक हाथी रथ पर बैठकर यातायात कर सके।[२२४] पद्मचरित में लंका नगरी के प्राकार को महाप्राकार[२२५] कहा है। प्राकारों पर पर चढ़कर शत्रुओं की अथवा नगर के बाहर की गतिविधियों की देखरेख की जाती थी।[२२६] मायामय कोटों की भी उस समय रचना की जाती थी।[२२७] यह कोट विरक्त स्त्री के मन के समान दुष्प्रवेश होते थे।[२२८] उनमें अनेक आकार के मुख होते थे, सबको भक्षण करने की शक्ति होती थी तथा वे देवों के

---

२१७. पद्म० २।४९।
२१८. पद्म० ४०।२९।
२१९. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०२।
२२०. कौटिलीय अर्थशास्त्र २।३।
२२१. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०३।
२२२. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।
२२३. पद्म० २।४९।
२२४. कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।
२२५. पद्म० ५।१७५।
२२६. पद्म० ४६।२१५।
२२७. वही, ५२।७।
२२८. वही, ५२।८।

द्वारा भी दुर्गम्य होते थे।[२२९] उनके अग्रभाग संकट से उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण करोंती की श्रेणी से विष्टित होते थे। चंचल सर्पों की तनी हुई फणाओं की फूत्कार से यह शब्दायमान होता था तथा धुयें से युक्त अङ्गारों से दु:सह होता था।[२३०] शूरवीरता के अहंकार से उद्धत जो मनुष्य उसके पास जाता था वह उसी प्रकार लौटकर नहीं आता था जैसे कि साँप के मुँह से मेंढक।[२३१] इस कोट के घेरे को सूर्य के मार्ग तक ऊँचा कहा गया है। इसके अतिरिक्त यह दुनिरीक्ष्य, सब दिशाओं मे विस्तीर्ण तथा हिंसामय शास्त्र के समान अत्यन्त पापकर्मा मनुष्यों के द्वारा निर्मित होता था।[२३२]

अट्टाल (अट्टालक)[२३२(१)]—प्राकार के ऊपर अट्टालक (भवन) बनाए जाते थे। उनका विस्तार और उनकी उच्चता समान रखी जाती थी। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार उनकी ऊँचाई के अनुरूप ऐसी सीढ़ी बनाई जानी चाहिए, जो हटाई जा सके। प्रत्येक अट्टालक एक दूसरे से तीस दण्ड (एक सौ बीस हाथ) दूरी पर रहना चाहिए। इस प्रकार बनी प्रत्येक दो अट्टालिकाओं के बीच में एक ऐसी गली बनवाना चाहिए जिस पर रथ चल सके और अगल-बगल ईंटों का दोतल्ला श्वेत भवन (अट्टालक) तथा प्रतोली के मध्य में इन्द्रकोश नाम का स्थान बनवाना चाहिए। वह इतना लम्बा चौड़ा हो कि उसपर तीन धनुर्धारी सैनिक आराम से रह सकें। उसमें इस प्रकार का काठ का अनेक छिद्रों से युक्त एक तख्ता लगा होना चाहिए जिसकी आड़ में धनुर्धर छिपकर बैठे और उसके सामने आगन्तुक शत्रुसैनिकों को देखकर बाणवर्षा कर सके[२३२(२)] पद्मचरित में नगरियों के विशाल अट्टालकों से विभूषित होने का उल्लेख किया गया है।[२३३]

गोपुर[२३४] (महाद्वार)—गोपुर शब्द शब्दकल्पद्रुम के अनुसार गुपु रक्षणे धातु से निष्पन्न हुआ है।[२३५] अतएव गोपुर भी नगररक्षण का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। पद्मचरित में नगर में अनेक ऊँचे-ऊँचे गोपुर बनाने के

---

२२९. पद्म० ५२।९।
२३०. पद्म० ५२।१०-११।
२३१. वही, ५२।१२।
२३२. वही, ५२।१४।
२३२ (१). वही, ३।३१६।
२३२ (२). कौटिलीय अर्थशास्त्र, पृ० ७८ अधि० २।३।
२३३. पद्म० ३।३१६।
२३४. पद्म० ३।३१६।
२३५. भारतीय स्थापत्य, पृ० १०५।

अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।[२३६] इनको शक्त्यनुसार मणि आदि से आच्छादित किया जाता था।[२३७] आज भी प्राचीन अथवा मध्यकालीन महानगरियों (राजधानियों) में महाद्वारों की भव्य रचना दिखाई पड़ती है। पाटलिपुत्र के वर्णन में मेगस्थनीज ने उस प्राचीन महानगरी के ६४ महाद्वारों एवं प्राकार-भित्ति पर पर प्रतिष्ठित ५७० अट्टालकों का उल्लेख किया है।[२३८] गोपुरों का पद्मचरित में बहुवचन से उल्लेख होने के कारण इनके अनेक की संख्या में बनाए जाने की पुष्टि होती ह। पद्मचरित के ६३ वें अध्याय मे एक स्थान पर कपड़े के डेरे बनाते तथा मण्डप बनाकर सात गोपुरों पर योद्धा खड़े कर विश्राम करते हुए सैनिकों की सुरक्षा करने का उल्लेख आया है।[२३९] कपड़े के अस्थायी मण्डपों में जब इतने गोपुर बनाए जाते थे तब स्थायी नगरों में तो स्वाभाविकतया अधिक बनाए जाते होंगे।

भवन-निवेश

जन्म एवं विकास—पद्मचरित के अनुसार इस भरत क्षेत्र में पहले भोग, भूमि थी।[२४०] उस समय लोग सर्वलक्षणों से पूर्ण थे।[२४१] यहाँ स्त्री-पुरुष का जोड़ा साथ ही साथ उत्पन्न होता था, तीन पल्य की उनकी आयु होती थी और प्रेमबन्धनबद्ध रहते हुए साथ ही साथ उसकी मृत्यु होती थी।[२४२] वृक्ष सब ऋतुओं के फल और फूलों से सुशोभित रहते थे तथा गाय, भैंस, भेड आदि पशु स्वतन्त्रतापूर्वक सुख से निवास करते थे।[२४३] वहाँ न तो अधिक शीत पड़ती थी, न अधिक गर्मी होती थी, न तीव्र वायु चलती थी।[२४४] वहाँ बड़े-बड़े बाग-बगीचे और विस्तृत भूभागसहित दूर तक फैलने वाली सुन्दर गन्ध तथा इनके सिवा और भी अनेक प्रकार की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती थी।[२४५] इस प्रकार वहाँ के दम्पती देव-दम्पती के समान रात-दिन क्रीड़ा करते रहते थे।[२४६] तृतीय काल का अन्त होने के कारण जब क्रम से कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे तब चौदह कुलकर उत्पन्न हुए।[२४७] ये सब प्रकार की व्यवस्थाओं का

---

२३६. पद्म० ५।१७५, ९६।१६, ६।१३२, १३।४।
२३७. वही, ६।१३२।
२३८. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १०५।
२३९. पद्म० ६३।२८-३४।
२४०. पद्म० ३।४९।
२४१. वही, ३।५०।
२४२. वही, ३।५१।
२४३. वही, ३।५४।
२४४. वही, ३।५९।
२४५. वही, ३।६१-६२।
२४६. वही, ३।६३।
२४७. वही, ३।६४।

निर्देश करने वाले थे।[२४८] जब कल्पवृक्ष पूर्णरूप से नष्ट हो गये तब पृथ्वी अकृष्टपच्य अर्थात् बिना जोते-बोये अपने आप ही उत्पन्न होने वाले धान्य से सुशोभित हुई।[२४९] इक्षुरस ही उस समय प्रजा का आहार था।[२५०] पहले तो इक्षुरस अपने आप निकलता था, पर काल के प्रभाव से अब उसका निकलना बन्द हो गया। लोग बिना बतलाये यन्त्रों के द्वारा ईख पेरने की विधि नहीं जानते थे।[२५१] सामने खड़ी हुई धान को लोग देख रहे थे, पर उसके संस्कार की विधि नहीं जानते थे, इसलिए भूख से पीड़ित हो व्याकुल हो उठे।[२५२] तब नाभिराज की सलाह से प्रजा के लोग ऋषभदेव की शरण में पहुँचे। ऋषभदेव ने प्रजा को सैकड़ों प्रकार की शिल्पकलाओं का उपदेश दिया। नगरों का विभाग, ग्राम आदि का बसाना और मकान आदि के निर्माण की कला प्रजा को सिखाई।[२५३] इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि भवन का प्रथम रूप (मॉडेल) वृक्ष था। इस बात की पुष्टि तृतीय पर्व के एक श्लोक के इस मन्तव्य से और अधिक होती है कि चौदहवें (अन्तिम) कुलकर नाभिराज के समय जबकि सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे, तब इन्होंके क्षेत्र के मध्य एक कल्पवृक्ष रह गया जो प्रासाद अर्थात् भवन के रूप में स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था।[२५४] इसका सीधा तात्पर्य यही है कि कल्पवृक्ष ही उस समय प्रासाद होते थे। इन्हींका आगे चलकर विकास हुआ और बड़े-बड़े प्रासाद बनाये जाने लगे। इस वस्तु-स्थिति को सम्भवतः बाद में लोग नहीं भूले, या भूल भी गये हों तो भी इस तथ्य की एक अस्पष्ट रूपरेखा उनके मस्तिष्क में रह गई थी। इसलिए प्रासाद को कल्पवृक्ष के रूप में मानकर भी रविषेणाचार्य ने आगे कह दिया कि उनका वह प्रासाद मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्ण और रत्नों से उसकी दीवालें निर्मित थीं। वह वापी और उद्यान से सुशोभित था तथा पृथ्वी पर एक अद्वितीय ही था।[२५५] हो सकता है कि उस वृक्ष की शाखाओं से ही उन्होंने उस वृक्ष के चारों ओर भित्ति बना ली हो। बहुत बाद में लोगों की दीवालें स्वर्णमय और रत्नमय होने लगीं। अतः उन दीवालों के भी स्वर्ण और रत्नमय होने को उन्होंने कल्पना कर ली हो। शाल-भवन या शाला-भवन के निर्माण के पीछे यह

---

२४८. पद्म० ३।७४। २४९. पद्म० ३।२३१।
२५०. वही, ३।२३३। २५१. वही, ३।२३४।
२५२. वही, ३।२३५। २५३. वही, ३।२५५।
२५४. अथ कल्पद्रुमो नाभेरस्य क्षेत्रस्य मध्यतः।
स्थितः प्रासादरूपेण विभात्यत्यन्तमुन्नतः॥ पद्म० ३।८९।
२५५. पद्म० ३।९०।

कहानी छिपी हुई है, भले ही बाद में इन भवनों का रूप कितना ही परिवर्द्धित क्यों न हो गया हो।

शाला-भवन या शाल-भवन—शाल-भवनों की परम्परा बहुत प्राचीन है। इसका विविध विकास हुआ। मन्त्रशाला, यज्ञशाला, गजशाला, पाठशाला, अश्वशाला, पाकशाला आदि शब्द इसके परिचायक है। पद्मचरित मे भी गोशाला[२५६], यज्ञशाला[२५७], आतोद्यशाला[२५८] (वादनशाला), प्रेक्षकशाला[२५९], नाट्यशाला[२६०], चतुःशाला[२६१], चन्द्रशाला[२६२] आदि शाला-भवनों के नाम मिलते हैं। मानसार (अध्याय ३६) मे शाल-भवन की जो व्याख्या दी है, तदनुसार शाल-भवन में चारों ओर अलिन्दों (बरामदों) का विन्यास होना चाहिए। सम्मुख मण्डप भी हो सकता है। इसके ऊपर एक से लगाकर अनेक भूमियाँ विनिर्मित हो सकती है और वे चुल्ली (एक प्रकार का भवन) एवं हर्म्य (एक प्रकार का भवन) आदि से मण्डित हो सकती है।[२६३]

यज्ञशाला—रामायण के उल्लेख से विदित होता है कि यज्ञशालायें प्रायः अस्थायी रूप से बनाई जाती थी,[२६४] पर कभी-कभी वे इंटों की भी बनी होती थी। दशरथ के अश्वमेध यज्ञ मे अट्ठारह-अट्ठारह इंटों से छः गरुणाकार त्रिगुण वेदियाँ बनायी जाती थी (१।१४।१८-९)। शुल्बसूत्रो में भी गरुड़ाकार वेदी बनाने का विधान है। उस समय के देवालय कैसे बनाये जाते थे, इसका कोई संकेत नही मिलता। यज्ञीय यूपों का शिल्पिगण कुशलता से निर्माण करते थे उनके अठपहलू (अष्टास्रयः) होते थे (१।१४।२६)। ब्राह्मण-ग्रन्थो के समय से ही भारती स्थापत्य मे आठ पहलू यज्ञीय यूपों का निर्माण होता आ रहा है।[२६५]

चतुःशाला—पद्मचरित के ८३वे पर्व मे कहा गया है कि राम तथा लक्ष्मण के पक्के फर्शों से युक्त अत्यन्त सुखदायी चौशालें (चतुःशालाः)[२६६] थीं। समराङ्गण-सूत्रधार में भी यद्यपि एक से लेकर दश-शाल-भवनों का वर्णन है,

२५६. पद्म० ३।२३१। २५७. पद्म० ३५।९।
२५८ वही, ९५।४६। २५९. वही, ९५।५७।
२६०. वही, ६८।११। २६१. वही, ८३।१८।
२६२. वही, १४।१३१
२६३. भारतीय स्थापत्य, पृ० १३२।
२६४. पद्म० ३५।९।
२६५. शान्तिकुमार नानूराम व्यास : रामायणकालीन संस्कृति, पृ० २०८।
२६६. पद्म० ८३।१८।

तथापि शाल-भवनों की अवतारणा में चतुःशाल का प्रथम निर्देश है। चतुःशाल उसे कहते हैं जो एक चौकोर, विशाल एवं स्फीत प्राङ्गण के चतुर्दिक् संस्थानों से निष्पन्न होता है। इसी प्रकार मोटे तौर से आँगन के तीन ओर संस्थानों से त्रिशाल, दो ओर से विशाल तथा एक ओर से एकशाल भवन विनिर्मित होते हैं। ये ही चार आदर्श भवन हैं जिनके संयोजन से पंचशाल, षट्शाल, सप्तशाल, अष्टशाल, नवशाल तथा दशशाल भवन विन्यस्त होते हैं।[२६७]

द्वार—महल का द्वार ऊँचे प्राकार से युक्त रहता था। द्वार पर सैकड़ों देदीप्यमान बेल-बूटे लगाये जाते थे तथा वह इन्द्रधनुष के समान रंगबिरंगे तोरणों से सुशोभित रहता था।[२६८] दरवाजों पर पूर्ण कलश रखे जाते थे।[२६९] बड़े-बड़े द्वार भी बनाये जाते थे। बृहदाकार होने के कारण एक स्थान पर एक द्वार की उपमा सुमेरु की गुहा के आकार से दी गई है।[२७०] सामान्यतः द्वार के लिए काष्ठ का अधिक प्रयोग किया जाता है, किन्तु विशेष आकर्षण के लिए किसी विशेष महल आदि के द्वार[२७१] रत्नों, मणियों तथा स्वर्ण आदि से भी निर्मित किये जाते थे।[२७२] इस प्रकार के द्वारों पर मोतियों की मालायें लटकाई जाती थीं।[२७३] द्वार की देहली के सम्बन्ध मे एक स्थान पर कहा गया है कि किष्कुपुर नगर के द्वार की देहली पद्मराग मणि से निर्मित होने के कारण लाल-लाल दीखती थी, इस कारण ऐसी जान पड़ती थी मानों ताम्बूल के द्वारा जिसकी लाली बढ़ गई थी ऐसा ओठ ही धारण कर रही हो। इस प्रकार पद्मचरित में द्वार का जो वर्णन किया गया है, उससे उसकी बाहरी साज-सज्जा पर ही विशेष प्रकाश पड़ता है। प्रमुख द्वार दो ही होते थे जिन्हें अभ्यन्तर द्वार (भीतरी द्वार) और बाह्य द्वार (बाहरी द्वार) कहा गया है।[२७४] वास्तुशास्त्र की शब्दावली के अनुसार चौखट के ऊपर जो लकड़ी अथवा निर्मिति होती है उसे उदुम्बर कहते हैं। इसी उदुम्बर अथवा लिंटल के नीचे द्वार की स्थापना होती है। दोनों दीवारों का यह मध्यावकाश देहली के नाम से पुकारा जाता है। इसका दूसरा नाम कपाटाश्रय है। द्वार के अन्य घटकों अर्थात् पल्लों को कपाटयुगल कहते हैं।[२७५] पद्मचरित में एक कम्प नाम के व्यक्ति का उल्लेख आता है जो कपाट

---

२६७. भारतीय स्थापत्य, पृ० १३२।

२६८. पद्म० ३८।८३।

२६९. पद्म० १२।३६८।

२७०. वही, ७१।८।

२७१. वही, ७१।८।

२७२. वही, ६।१२४।

२७३. वही, ६।१२७।

२७४. वही, ३।११७।

२७५. भारतीय स्थापत्य, पृ० १७१।

बनाकर जीविका किया करता था।[२७६] द्वार का तीसरा अङ्ग कलिका अथवा अर्गला है जो दोनों दरवाजों को बन्द करने में सहायक होती है। पद्मचरित से इसका भी सद्भाव सूचित होता है।

स्तम्भ—भवन का दूसरा प्रमुख अङ्ग स्तम्भ है। भारतीय स्थापत्य में मन्दिर, गोपुर और स्तम्भ ये ही सर्वोपरि सुन्दरतम कृतियाँ हैं। पद्मचरित में अनेक स्थान पर[२७७] भवन तथा मन्दिरों में खम्भे लगाने का उल्लेख किया गया है। सामान्य स्तम्भ के अतिरिक्त हेमस्तम्भ[२७८] तथा रत्नस्तम्भ भी उस समय लगाये जाते थे।[२७९]

आस्थान-मण्डप—आस्थानमण्डप शब्द का प्रयोग पद्मचरित में कई बार किया गया है।[२८०] इसे सभा, सभामण्डप, आस्थान, आस्थानी और आस्थायिका (नलचम्पू नवीं शती) भी कहा जाता था।[२८१] राजकुल की दूसरी कक्षा में इसकी स्थिति होती थी। इसे ही मुगल-महलों में 'दर्बारे आम' कहा गया है। इसके सामने अजिर या खुला मैदान रहता था। अजिर से कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर आस्थान-मण्डप मे पहुँच जाता था। दिल्ली के किले में दर्बारे आम के सामने जो खुला भाग है वही प्राचीन शब्दों में अजिर है। सम्राट् सार्वजनिक रीति से दरबार में मंत्रणा करते या मिलते-जुलते वह सब इसी बाह्य मण्डप में होता था।[२८२] पद्मचरित के ७३वें पर्व में रावण को ऐसे ही आस्थानमण्डप में बैठा दिखलाया गया है।[२८३]

अन्य मण्डप—पद्मचरित में अन्य प्रकार के मण्डपों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे आहार-मण्डप[२८४], सन्नाह-मण्डप[२८५], लता-मण्डप[२८६], कुन्द-मण्डप[२८७] आदि। भोजन करने के विशेष स्थान को आहार-मण्डप कहते थे।

---

२७६. पद्म० ९१।२४।

२७७. वही, ५३।२६४, ८०।८, ६५, ३।२२५, ६७।२६, ४०।२८।

२७८. वही, ८०।८, ६५, ६७।२६, २८।८९।

२७९. वही, ७।३३९।

२८०. वही, ७३।१, ८।६०, ५३।२२१, ३।१, ७१।३।

२८१. वासुदेवशरण अग्रवाल : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०५।

२८२. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०५।

२८३. ततो दशाननोऽन्यत्र दिने परमभासुरः।
आस्थानमण्डपे तस्थावुदिते दिवसाधिपे॥ पद्म० ७३।१।

२८४. पद्म० ८४।१४।

२८५. पद्म० १२।१८१।

२८६. वही, ४२।८५।

२८७. वही, २८।८७।

आहार-मण्डप में मित्रों, मन्त्री आदि परिजनों और भामियों के साथ भरत आहार करते थे।[२८८] सन्नाह-मण्डप आयुधशाला को कहते थे। इसमें युद्ध के शस्त्रास्त्र और बरजे आदि रखे जाते थे।[२८९] लताओं से बने मण्डपाकार गृह को लता-मण्डप कहते थे। डॉ० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल के अनुसार क्षेत्रों, उद्यानों, सरिताओं, तड़ागतीरों तथा सागरवेला पर मण्डपों का विकास हुआ। इन मण्डपों की रचना-कला सभा-भवनों से आई। एक दो मृण्मय अथवा काष्ठमय स्तम्भों के न्यास से एवं ऊपर की छावनी, वनशालाओं अथवा तालपत्रों से सम्पन्न कर छोटे-छोटे कामचलाऊ मण्डपों का आज भी विन्यास हम देखते हैं। मण्डप को आज की भाषा में मँड़वा तथा मड़इया कहते हैं। इसमें स्तम्भ और छाद्य दोनों आवश्यक हैं। चूँकि यह एक प्रकार का क्षणिक निवेश है अतः स्तम्भ का स्थान कोई भी काष्ठ-पठिका ग्रहण करती है।[२९०] कालान्तर में केन्द्र स्तम्भ के अतिरिक्त अनेक स्तम्भ जोड़कर विशाल मण्डप बनाये जाने लगे और इनसे विशाल भवनों का निर्माण हुआ। मण्डपाकार रचना होने के कारण इनको मण्डप के नाम से कहा जाने लगा। पद्मचरित में अयोध्या में ऐसे मण्डप बनाये जाने का उल्लेख है, जिनमें हजारों खम्भे (स्तम्भ) लगे थे, जो मोतियों की मालाओं से सुशोभित थे, नाना प्रकार के पुतलों से युक्त थे तथा विविध प्रकार के थे।[२९१]

भवन-रचना—पद्मचरित में भवन-रचना गेह[२९२], प्रासाद[२९३], आगार[२९४], मन्दिर[२९५], निलय[२९६], सद्म[२९७], आलय[२९८], वेश्म[२९९], गृह[३००], आगार[३०१], कूट[३०२], चैत्य[३०३], शाला[३०४], विमान[३०५], मण्डप आदि के रूप में मिलती है। सुन्दर भवन ऊँचे-ऊँचे शिखरों से युक्त होना चाहिए।[३०६] भवन में एक विशाल आँगन हो। सम्भवतः आँगन की लम्बाई, चौड़ाई भवन के आकार के अनुरूप बनाई जाती होगी। नाभिराज के भवन का आँगन (अजिर)

---

२८८. पद्म० ८४।१४-१५। २८९. पद्म० १२।१८१।
२९०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९४।
२९१. पद्म० ८१।१०४। २९२. पद्म० ६।१३०।
२९३. वही, ८३।४१। २९४. वही, २।३७।
२९५. वही, २।३९। २९६. वही, २।४०।
२९७. वही, २।४०। २९८. वही, ८०।६३।
२९९. वही, ५३।२०३। ३००. वही, ५३।२६६।
३०१. वही, २।३७। ३०२. वही, ११२।३२।
३०३. वही, ६७।१५। ३०४. वही, ६८।११।
३०५. वही, ११२।३४। ३०६. वही, ३३।३३२।

इतना बड़ा था कि वह रथों से, मदोन्मत्त हाथियों से, वायु के समान वेगशाली घोड़ों से, उपहार के अनेक द्रव्यों से युक्त ऊँटों के समूह से, छत्र, चमर, वाहन आदि विभूति त्यागकर राजाधिराज महाराज के दर्शन की इच्छा करने वाले मण्डलेश्वर राजाओं से तथा नाना देशों से आये हुए अन्य अनेक बड़े-बड़े लोगों से सदा क्षोभ को प्राप्त होता रहता था।[३०७]

भवनों को अत्यन्त सफेद (अथवा अन्य वर्णयुक्त) नाना आकारों का धारक तथा रत्न आदि उत्तमोत्तम वस्तुओं से पूर्ण होना चाहिए।[३०८] भवन में पक्का फर्श होना चाहिए।[३०९] पद्मचरित में पद्मराग, दधिराग तथा विचित्र-विचित्र मणियों से जड़े फर्शों से युक्त, जिनमें मोतियों की मालायें लटकती थी, जो अनेक वातायनो (झरोखों) से युक्त थे, ऐसे भवनों का वर्णन किया गया है।[३१०] भवन में उत्तमोत्तम फल से युक्त बगीचे तथा अनेक दीर्घिकाये (वापिकाये) होना चाहिए।[३११] राजा के भवन में अनेक गोपुर, कोट, सभा, शालाये, कूट, प्रेक्षागृह तथा कार्यालय आदि होना आवश्यक था। राम-लक्ष्मण के यहाँ अनेक द्वारों तथा उच्च गोपुरों से युक्त इन्द्रभवन के समान सुन्दर **नन्द्यावर्त** भवन था। किसी महागिरि के शिखरों के समान ऊँचा **चतुःशाल** नाम का कोट था, **वैजयन्ती** नाम की सभा थी। चन्द्रकान्तमणियों से निर्मित **सुवीथी** नाम की मनोहर शाला थी, अत्यन्त ऊँचा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला **प्रासाद कूट** था, विन्ध्यगिरि के समान ऊँचा **वर्द्धमानक** नामका प्रेक्षागृह था, अनेक प्रकार के उपकरणों से युक्त कार्यालय थे, उनका गर्भगृह कुक्कुटी के अण्डे के समान अत्यन्त आश्चर्यकारी था। वह गर्भगृह एक खम्भे पर खड़ा था और कल्पवृक्ष के समान मनोहर था।[३१२]

भवन की भूमियाँ चाँदी तथा स्वर्णादि के लेप से सुन्दर बनाना चाहिए। महल ऊँचे होना चाहिए, इनमें अनेक स्तम्भ लगाये जायें, मोतियो आदि मालाओं से सुशोभित हो, इनमें अनेक प्रकार के पुतलो से युक्त विविध प्रकार के मण्डप बनाये जायें। दरवाजे किरणो से चमकते हुए बड़े-बडे रत्नों से खचित किये जायें। पद्मचरित मे हमे अयोध्या के भवनों की रचना इसी प्रकार की देखने को मिलती है।[३१३] भवन का द्वार विशाल आकार का होना चाहिए।[३१४]

---

३०७. पद्म० २।८१-८३।
३०८. पद्म० ८३।१७।
३०९. वही, ८३।१८।
३१०. वही, १४।१२९।
३११. वही, ८३।१९।
३१२. वही, ८३।४-८।
३१३. वही, ८१।११२, ११३-११५।
३१४. वही, ७१।१८।

सद्म—सभा, वापिका, विमान तथा बाग-बगीचे से सुशोभित भवन को सद्म कहते थे।[३१५] राजभवन को राजसद्म[३१६] कहा जाता था। इसमें राजा लोग रहते थे।[३१७] राजाओं के साथ-साथ उनके भाई-बन्धुओं के रहने के लिए यह उपयुक्त होता था।[३१८] स्वर्णमय सद्म (काञ्चनसद्म[३१९]) भी उस समय बनाये जाते थे।

गेह—रचना की दृष्टि से किष्कुपुर नगर का वर्णन प्रकट करने योग्य है। पद्मचरित के अनुसार किष्कुपुर नगर में विद्याधरों ने महलों की ऐसी ऊँची-ऊँची श्रेणियाँ बनाकर तैयार की थीं जिनके सामने उत्तुङ्ग दरवाजे थे, जिनकी दीवालें मणि और स्वर्ण से निर्मित थीं, जो अच्छे-अच्छे बरामदों सहित था, रत्नों के स्तम्भों पर खड़ी थी, जिनकी कपोतपाली के समीप का भाग महानीलमणियों से बना था और ऐसा जान पड़ता था कि रत्नों की कान्ति ने जिस अन्धकार को सब जगह खदेड़ दिया था मानो उसे यहाँ अनुकम्पावश ही स्थान दिया गया था। इन महलों की देहली पद्मरागमणि से निर्मित होने के कारण लाल-लाल दीख रही थी। उनके दरवाजों के ऊपर अनेक मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं। मालाओं की किरणों से वे ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्य भवनों की सुन्दरता की हँसी उड़ा रहे हों। भवनों के शिखरों के ऊपर चन्द्रमा के समान आकार वाले मणि लगे हुए थे। मणियों के कारण रात्रि के समय असली चन्द्रमा के विषय में भ्रम हो जाता था। चन्द्रकान्त मणियों की कान्ति से विद्याधरों के गेह उत्तम चाँदनी की शोभा प्रकट करते थे तथा उनमें लगे नाना रत्नों की प्रभा से ऊँचे-ऊँचे तोरणों का सन्देह होता था। गेहों के मणिनिर्मित फर्शों पर रत्नमय चित्र बनाये गये थे।[३२०]

गृह—सामान्यतः गृह राजन्यवर्ग से लेकर मध्यमवर्ग तक के व्यक्तियों के होते थे। पद्मचरित में विशेष वर्णन राजन्यवर्ग के गृहों का ही मिलता है। इस दृष्टि से बड़े-बड़े प्रासाद और गृहों में कोई अन्तर नहीं रह जाता। ५३वें पर्व में गृह और वेश्म का प्रासाद के अर्थ में प्रयोग करना इसका बहुत बड़ा प्रमाण है।[३२१] सामान्यतः गृह की यह विशेषता थी कि उसके वातायन सड़क के दोनों ओर खुले रहते थे। छत पर अलिन्द—झरोखे भी होते थे। गृह का अग्रभाग

---

३१५. पद्म० ५३।२०२।
३१६. पद्म० ६५।९।
३१७. वही, ४९।४८।
३१८. वही, ५।१७८।
३१९. वही, ६।६५।
३२०. वही, ६।१२४-१३०।
३२१. वही, ५३।२६४-२६६।

मुख कहलाता था, जिसको दूसरे शब्दों में द्वार भी कहते हैं। द्वार के ऊपर तोरण होता था, जो मत्स्य या मकर की आकृति का होता था। मथुरा की कला में मकराकृति तोरण अनेक उपलब्ध हैं। तोरण भवन का सबसे पहला फाटक होता था। यह कभी-कभी अस्थायी भी होता था। यहीं पर अतिथियों की अगवानी की जाती थी।[३२२] पद्मचरित में कुन्द के समान सफेद, महानीलमणि के समान नील, पद्मरागमणि के समान लाल, पुष्पराज मणियों के समान प्रभास्वर और वारुन्मणि के समान गहरे नीले वर्णवाले गृहों का वर्णन आया है।[३२३] गृहों में सुरंगें होती थी। चोर लोग सुरग द्वारा दूसरों के यहाँ जाते थे।[३२४] सामान्यतः आपत्तिकाल में घर से बाहर निकलने के लिए इस प्रकार की सुरंगें बनाई जाती होंगी। जिस उद्देश्य के लिए गृह निर्मित होता था उस उद्देश्य के आधार पर उसका नाम पड़ जाता था। जैसे—सूतिगृह।[३२५] रावण का गृह इन्द्रभवन के समान था। उसका स्वर्णमय कोट था। तथा उसमें अनेक स्तम्भ लगे हुए थे।[३२६]

वेश्म[३२७]—भवनों का एक प्रकार वेश्म है। साधारण साफ, स्वच्छ और भव्य भवन को वेश्म कहा जाता है। वेश्म में उपयोग की सभी वस्तुयें वर्तमान रहती हैं। वेश्म ग्रीष्म ऋतु में सुखप्रद होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह शीतल बनाया जाता था। वायु-प्रवेश के लिए दोनों ओर गवाक्ष रहते थे और छत पर्याप्त ऊँची होती थी। वेश्म दुमंजिले और तिमंजिले भी होते थे।[३२८]

आगार[३२९]—आगार भी घर का एक प्रकार है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार आगार ऐसे भवन को कहा जाता था जिसमें आँगन और छोटे उपवन का रहना आवश्यक था। आगार का जैसा वर्णन उपलब्ध होता है, उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह प्राकारमण्डित होता था। आगार को सामान्य व्यक्ति भी पसन्द करते थे। यह ईंटों और मिट्टी दोनों से बनाया जाता था। इष्टिकानिर्मित आगार पक्के होते थे और मृतिका से बनाए गए आगार कच्चे होते थे। आगार में वातायन और गवाक्ष भी रहते थे। पुष्प तथा लतायें भी आगार के सामने वाले आँगन में शोभित रहती थी। आगार का द्वार

---

३२२. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०४।
३२३. पद्म० ८।५११, ५१२।
३२४. पद्म० ५।१०३, १०४।
३२५. वही, ७।२१३।
३२६. वही, ५३।२६४-२६६।
३२७. वही, ५३।२०३।
३२८. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०५।
३२९. पद्म० ७।१७७, १२।३७।

बृहदाकार रहता था और उसमें मजबूत किवाड़ लगाए जाते थे। आगारों का ही एक प्रकार अट्टालिका और तल्प है। अट्टालिका वस्तुतः लगाए प्रकोष्ठ वाले भवन को कहा जाता है। तल्प केवल शिखर प्रदेश में स्थित कमरे को कहा जाता है।[३३०] पद्मचरित में राजगृह नगर के आगारों के विषय में कहा गया है कि वे आगार चूने से पुते सफेद महलों की पंक्ति से लसे जान पड़ते थे मानो टाँकियों से गढ़े चन्द्रकान्त मणियों से ही बनाए गए हों।[३३१] एक स्थान पर प्रसवागार का भी उल्लेख हुआ है।[३३२]

आलय[३३३]—आलय का सामान्य अर्थ होता है : निवास। जिसका जहाँ निवास हो वह उसका आलय है। जैसे विद्यालयः = विद्यायाः (विद्या का) आलय (निवास) = विद्यालयः। विद्या का जहाँ निवास हो वह विद्यालय कहलाता है। पद्मचरित के रावणालय[३३४] (रावण का आलय), शत्रुन्दमालये[३३५] (शत्रुंदम का आलय) आदि शब्द इस अभिप्राय के द्योतक हैं। रावणालय इस प्रकार का था कि जब अङ्गद के पदाति उसकी मणिमय भूमि में पहुँचे तब मगरमच्छों से युक्त सरोवर समझकर भय को प्राप्त हुए। पश्चात् उस भूमि के रूप की निश्चलता देख जब उन्हें निश्चय हो गया कि यह तो मणिमय फर्श है तब कहीं आश्चर्यचकित होते हुए आगे बढ़े।[३३६] सुमेरु की गुहा के आकार बड़े-बड़े रत्नों से निर्मित तथा मणिमय तोरणों से देदीप्यमान जब भवन के विशाल द्वार पर पहुँचे तो वहाँ अंजनगिरि के समान, चिकने गण्डस्थल वाले बड़े-बड़े दांतों वाले तथा अत्यन्त देदीप्यमान इन्द्रनीलमणि निर्मित हाथियों को देखा। हाथियों के मस्तक पर सिंह के बच्चों ने पैर जमा रखे थे। उन बच्चों की पूँछ ऊपर को उठी हुई थी। उनके मुख दाढ़ों से अत्यन्त भयकर थे, नेत्रों से भय टपक रहा था तथा उनकी सटाएँ मनोहर थी। इन सबको सचमुच के हाथी और सिंह

---

३३०. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०५।

३३१. सुधारससमासङ्गपाण्डुरागारपङ्क्तिभिः।
टङ्ककल्पितशीतांशुशिलाभिरिव कल्पितम्॥ पद्म० २।३७।

३३२. पद्म० ३।१७२।   ३३३. पद्म० ८०।६३।

३३४ वही, ७१।१६।   ३३५. वही, ३८।८२।

३३६. रावणालयबाह्यक्ष्मामणिकुट्टिमसङ्गताः।
ग्राहावत्सरसोऽभिज्ञास्त्राससमीयुः पदातयः॥ पद्म० ७१।१६।
रूपमिश्चलता दृष्ट्वा निर्ज्ञातमणिकुट्टिमाः।
पुनः प्रसरणं चक्रुर्भटाः विस्मयपूरिताः॥ पद्म० ७१।१७।

समक्ष पैदल सैनिक भयभीत हो गए और उद्विग्न होकर भागने लगे।[३३७] बाद में उनके यथार्थ रूप को जानने वाले अङ्गद ने उन पैदल सैनिकों को बहुत समझाया तब बड़ी कठिनाई से वे लोग वापिस लौटे।[३३८] भवन में डरते-डरते उन्होंने इस प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार को मृगों के झुण्ड सिंह के स्थान में प्रवेश करते हैं। बहुत से द्वारों को लांघकर जब वे आगे जाने मे असमर्थ हो गए तब सघन भवनों की रचना में जन्मान्ध के समान इधर-उधर भटकने लगे।[३३९] वे इन्द्रनीलमणिनिर्मित दीवालों को देखकर उन्हे द्वार समझने लगते थे और स्फटिक मणियों से खचित भवनों को आकाश समझ उनके पास जाते थे जिसके फलस्वरूप दोनों ही स्थानों में शिलाओं से मस्तक टकरा जाने के कारण वे गिर जाते थे। वे अत्यधिक आकुलता को प्राप्त होते थे और वेदना के कारण उनके नेत्र बन्द हो जाते थे।[३४०] किसी तरह उठकर आगे बढ़ते तो दूसरी कक्ष में पहुँचकर फिर आकाशस्फटिक की दीवालों मे वेग से टकरा जाते थे।[३४१] उनके पैर और घुटने टूट रहे थे तथा वे ललाट की चोट से तिलमिला रहे थे। ऐसी स्थिति मे वे लौटाना चाहते थे पर उन्हे निकलने का मार्ग ही नही मिलता था।[३४२] जिस किसी प्रकार इन्द्रनीलमणिमय भूमि का स्मरण कर वे लौटे तो उसी के समान दूसरी भूमि देख उससे छकाए गए और पृथ्वी के नीचे जो घर बने थे उनमे जा गिरे।[३४३] बाद में कही पृथ्वी फट तो नही गई इस शंका से दूसरे घर मे गए और वहाँ इन्द्रनीलमणिमय जो भूमियाँ थी, उनमे जान-जानकर धीरे-धीरे कदम बढ़ाने लगे।[३४४] कोई एक स्त्री स्फटिक की सीढ़ियों के ऊपर जाने के लिए उद्यत थी, उसे देखकर पहले तो उन्होंने समझा कि यह स्त्री अधर

---

३३७. पर्वतेन्द्रगुहाकारे महारत्नविनिर्मिते।
गम्भीरे भवनद्वारे मणितोरणभासुरे॥ पद्म० ७१।१८।
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशानिन्द्रनीलमयान् गजान्।
स्निग्धगण्डस्थलान् स्थूलदन्तानत्यन्तभासुरान्॥ पद्म० ७१।१९।
सिंहबालांश्च तन्मूर्द्धन्यस्ताङ्घ्रीनुद्धर्ववालधीन्।
दंष्ट्राकरालवदनान् भीषणाक्षान् सुकेसरान्॥ पद्म० ७१।२०।
दृष्ट्वा पादचरास्त्रस्ताः सत्यव्यालाभिशङ्किताः।
पलायितुं समारब्धाः प्राप्ता विह्वलतां पराम्॥ पद्म० ७१।२१।

३३८. पद्म० ७१।२२।
३३९. पद्म० ७१।२३-२४।
३४०. वही, ७१।२५-२६।
३४१. वही, ७१।२७।
३४२. वही, ७१।२८।
३४३. वही, ७१।२९।
३४४. वही, ७१।३०।

आकाश में स्थित है परन्तु बाद में पैरों के रखने-उठाने की क्रिया से निश्चय कर सके कि यह नीचे ही है।[३४५] 'हे विलासिनि ! मुझे मार्ग दिखाओ' इस प्रकार कह कर किसी सुभट ने स्तम्भ में लगी शालभंजिका का हाथ पकड़ लिया।[३४६] आगे चलकर हाथ में स्वर्णमयी वेत्रलता को धारण करने वाला एक कृत्रिम द्वारपाल दिखाई दिया। उसे किसी सुभट ने पूछा कि शीघ्र ही शान्तिगेह का मार्ग कहो।[३४७] परन्तु वह कृत्रिम द्वारपाल क्या उत्तर देता ? जब कुछ उत्तर नहीं मिला तो अरे यह अहंकारी युवक कुछ कहता ही नही है, यह कहकर किसी सुभट ने उसे एक वेग से थप्पड मार दी, पर इससे उसकी अंगुलियाँ चूर-चूर हो गई।[३४८] बाद मे हाथ से स्पर्श कर उन्होंने जाना कि यह सचमुच का द्वार-पाल नही, अपितु कृत्रिम द्वारपाल[३४९] है। ऐसा तो नही है कि कहीं यह द्वार न हो किन्तु महानीलमणियों से निर्मित दीवाल हो, इस प्रकार के संशय को प्राप्त हो उन्होंने पहले हाथ पसारकर देख लिया।[३५०] उन सबकी भ्रांति इतनी कुटिल हो गई कि वे स्वयं जिस मार्ग से आए थे उसी मार्ग से निकलने में असमर्थ हो गए, अतः निरुपाय हो उन्होंने शान्ति जिनालय में पहुँचने का ही विचार स्थिर कर दिया।[३५१] पश्चात् किसी मनुष्य को देख उसकी बोली से सचमुच मनुष्य जानकर उससे कहा कि मुझे शान्ति-जिनालय (शान्तिहर्म्यस्य) का मार्ग दिखाओ।[३५२] उसके निर्देश से वे शान्ति-जिनालय में पहुँचे।

पृथ्वी के भीतर वस्तुयें छिपाकर रखने के लिए गर्भालय बनाए जाते थे। इनका दूसरा नाम भूमिगृह था। एक बार अयोध्या में भरत ने जब भेरी बज-वाई तब वहाँ के किसी धनी मनुष्य ने अनिष्ट की आशका कर अपनी स्त्री से कहा कि ये स्वर्ण और चाँदी के घट तथा मणि और रत्नों के पिटारे भूमिगृह मे रख दो। रेशमी वस्त्र आदि से भरे हुए इन गर्भालयों को शीघ्र ही बन्द कर दो और जो सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरह से रख दो।[३५३]

राजभवन को राजालय कहा जाता था। शत्रुंदम का आलय अनेक प्रकार के निर्व्यूहों से युक्त था, रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाओं से सुशोभित था तथा सफेद मेघा-वली के समान था।[३५४] विभीषणालय के मध्य मे श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र का मन्दिर था। यह मंदिर रत्नमयी तोरणोंसहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप

---

३४५. पद्म० ७१।३१।
३४६. पद्म० ७१।३४।
३४७. वही, ७१।३५।
३४८. वही, ७१।३६।
३४९. वही, ७१।३७।
३५०. वही, ७१।३८।
३५१. वही, ७१।३९।
३५२. वही, ७१।४०।
३५३. वही, ६५।१७-१८।
३५४. वही, ३८।८२।

स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य स्थित था, स्वर्णमय हजार स्तम्भों से युक्त था, उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई तथा विस्तार से युक्त था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चन्द्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की वलभियों से युक्त था, झरोखों के समीप लटकते हुए मोतियों के जालों से सुशोभित था, अनेक अद्भुत रचनाओं से युक्त तथा प्रतिसर आदि विविध प्रदेशों से सुन्दर था और पापनाशक था।[३५५]

शालभञ्जिका[३५६]—ऊपर शालभञ्जिका शब्द आया है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन' नामक ग्रंथ में इस शब्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। शालभञ्जिका शब्द का इतिहास बहुत पुराना है। आरम्भ में यह स्त्रियों की एक क्रीड़ा थी। खिले हुए साल के नीचे एक हाथ से उसकी डाली झुकाकर फूल चुनचुनकर स्त्रियाँ यह खेल खेलती थीं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में प्राचां क्रीडायां (६, ७, ७४) नित्यं क्रीडाजीविकयोः (२, २, १७) और संज्ञायां (३, ३, १०९) सूत्रों के उदाहरणों में शालभञ्जिका, उद्दालक पुष्पभञ्जिका आदि कई क्रीडाओं के नाम आए हैं, जो पूर्वी भारत में प्रचलित थीं। वात्स्यायन की जयमंगला टीका में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। बुद्ध की माता माया देवी लुम्बिनी उद्यान में इसी प्रकार की शालभञ्जिका मुद्रा में खड़ी थीं, जब बुद्ध का जन्म हुआ था। धीरे-धीरे इस मुद्रा मे खड़ी हुई स्त्री के लिए शालभंजिका शब्द रूढ हो गया। साची, भरहुत और मथुरा मे तोरण की बंडेरी और स्तम्भ के बीच में तिरछे शरीर से खड़ी हुई स्त्रियों के लिए तोरणशालभञ्जिका शब्द चल गया था। कुषाणकाल में अश्वघोष ने इसका उल्लेख किया है।[३५७] इसी मुद्रा में खड़ी हुई स्त्री मूर्तियाँ मथुरा के कुषाणकालीन वेदिका-स्तम्भों पर बहुतायत से मिलती हैं। उनके लिए स्तम्भशालभंजिका शब्द रूढ़ हो गया। खम्भे पर बनी हुई स्त्री मूर्ति के लिए चाहे वह किसी मुद्रा में हो, यह शब्द गुप्तकाल में चल गया था।[३५८] इसी को रविषेण ने 'स्तम्भसभासक्तामगृहीतशालभञ्जिकाम्' पद द्वारा व्यक्त किया है।[३५९]

---

३५५. पद्म० ८०।६३-६७।   ३५६. पद्म० ७१।३४।
३५७. अवलम्ब्य गवाक्षपार्श्वमन्या शयिता चापविभुग्नगात्रयष्टिः।
  विरराज विलम्बिचारुहारा रचिता तोरणशालभंजिकेव ॥
  —बुद्धचरित ५।५२, (हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६१)
३५८. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६१, ६२।
३५९. पद्म० ७१।३४।

प्रासाद—प्रासाद-रचना वास्तुकला (स्थापत्य) का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रासाद शब्द वैसे तो जन-साधारण में राजाओं के महलों के लिए प्रायः प्रयुक्त होता है परन्तु वास्तुशास्त्रीय परिभाषा में प्रासाद का तात्पर्य विशुद्धरूप में देवमन्दिर से है। प्रासाद में राज शब्द जोड़ देने से वह राजमहल का बोधक बन जाता है। अतः संक्षेप में प्रासाद शब्द परम्परा से देवमन्दिरों एवं राजमहलों दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अमरकोश में 'हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्' जो उल्लेख है वह उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। शिल्परत्न में लिखा है :

'देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम्।
मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः॥'

अर्थात् जिन भवन-विशेषों में पाषाण शिलाओं, इष्टिकाओं तथा सुधा एवं वज्रलेप आदि दृढ वस्तु संभारों से स्थायित्व प्रदान करने वाले वस्तुसौन्दर्य की चिर प्रतिष्ठा संस्थापित हो चुकी है और इसी सौन्दर्य के कारण ये भवन देवादिक एवं मनुष्यादि दोनों के मनों को प्रसन्न करते हैं, अन्तःकरण की कलिका खिलाते हैं, अतः ये भवन प्रासाद कहलाते हैं।[३६०] पद्मचरित में प्रासाद शब्द का प्रयोग प्रायः राजप्रासाद के लिए ही हुआ है। नाभिराय के क्षेत्र के मध्य जो कल्पवृक्ष था वह प्रासाद के रूप में स्थित था और अत्यन्त ऊँचा था।[३६१] उनका वह प्रासाद मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्ण और रत्नों से उसकी दीवालें बनी थीं, बायीं ओर उद्यान से सुशोभित था और पृथ्वी पर एक अद्वितीय ही था।[३६२] भीमवन में दशानन का जो प्रासाद था, उसके सात खण्ड थे।[३६३] एक अन्य स्थान पर रावण के प्रासाद की उपमा शक्र-प्रासाद से दी गई है। इस प्रासाद में अनेक स्तम्भ थे।[३६४] राजा जनक ने विद्याधरों के ऐसे प्रासाद देखे थे जिनके शिखर सन्ध्या के बादलों के समान सुशोभित थे, जो गोलाकार स्थित थे तथा राजप्रासाद की सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे।[३६५] क्षेमाञ्जलि नगर में लक्ष्मण ने विमान के समान आभा वाले तथा चन्द्रमा के समान धवल उत्तमोत्तम भवनों को देखा।[३६६] इन सब उल्लेखों से प्रासादों के सौन्दर्य, रचना

---

३६०. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० २२०, २२१।
३६१. पद्म० ३।८९।
३६२. पद्म० ३।९०।
३६३. वही, ८।२९, ३०।
३६४. वही, ५३।२६४।
३६५. वही, २८।८४।
३६६. वही, ३८।८०।

काल आदि का ज्ञान होता है। एक उल्लेख के अनुसार प्रासादों में झरोखे (गवाक्ष) लगाये जाते थे।[३६७]

हर्म्य—हर्म्य को सात मंजिल वाला भवन कहा है। हर्म्य की छत बहुत ऊँची होती थी। महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत काव्य में हर्म्य का निर्देश किया है। हर्म्य ऊँची अट्टालिका वाले ऐसे भवन थे, जिनमें कपोत भी निवास करते थे। अमर कोष में ('हर्म्यादि धनिनां वासः' अमरकोष २।२।९) धनिकों के भवन को हर्म्य कहा है।[३६७•]

मन्दिर—मन्दिर शब्द के दो अर्थ हैं : भवन तथा नगर। समराङ्गण सूत्रधार (१८ वाँ अध्याय) में नगर-पर्यायों मे मन्दिर शब्द का प्रथम उल्लेख किया गया है। अमरकोश तथा अन्य कोशों मे मन्दिर शब्द भवन-वाचक है। प्राचीन भारत के इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तो पता चलेगा कि बहुत प्राचीन नगर मन्दिर स्थानों के विकास मात्र हैं। संसार के अन्य प्राचीन नगरों की यही कथा है।[३६८] प्राचीनकाल में किसी देवायतन के पूत पावन भूभाग के निकट थोड़े से जिज्ञासु एवं साधक सज्जनों ने सर्वप्रथम अपने आवासों का निर्माण किया। धीरे-धीरे वह स्थान अपने निजी आकर्षण से एक विशाल तीर्थस्थान या नगर में परिणत हो गया। इसके अतिरिक्त मन्दिर यदि सुचारु रूप से संचालित है तो उसके निकट किसी सुरम्य जलाशय, पुष्करिणी अथवा सरिता का होना आवश्यक है। अतः जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में जलपूर्ति की साधन सम्पन्नता के कारण मन्दिर के सुन्दर, स्वास्थ्यप्रद एवं पावन वातावरण के कारण वहाँ आवास स्थापन सहज हो जाता है।[३६९] पद्मचरित मे राजगृह नगर का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उसे शत्रुओं ने काममन्दिर तथा विज्ञान के ग्रहण करने में तत्पर मनुष्यों ने विश्वकर्मा का मन्दिर (विश्वकर्मणः मन्दिरम्) समझा था।[३७०] पद्मचरित के इस उल्लेख से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

सभा—अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् आदि में सभाओं के निर्देश आये हैं। अति प्राचीन वैदिक युगीन सभाभवनों के विन्यास में दो ही प्रधान उपकरण थे—स्तम्भ तथा वेदियाँ। सभा एक प्रकार का द्वार, भित्ति आदि से विरहित स्तम्भ-प्रधान निवेश था। प्राचीन सभाभवन

---

३६७. पद्म० १९।१२२।

३६७.• नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ३०३।

३६८. भारतीय स्थापत्य, पृ० ५३।

३६९. वही, पृ० ५४।

३७०. पद्म० २।३९, २।४१।

की यह रूपरेखा सदा वर्तमान रही। बाद में द्वारों और भित्तियों की प्रकल्पना से इन भवनों को अन्य भवनों के सादृश्य में लाने की परम्परा पल्लवित हुई। सम्भवतः यह प्रभाव राजनैतिक था। सभा राजनैतिक निवेश का एक प्रधान अंग थी जिसको आजकल की भाषा में दरबार के नाम से पुकारते हैं।[३७१] पद्मचरित में इस प्रकार के दरबार (राजसभा[३७२]) का वर्णन किया गया है। ३८वें पर्व में कहा गया है कि क्षेमाञ्जलि नगर में लक्ष्मण ऊँचे-ऊँचे देव मन्दिर, कुँओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकार के मनुष्यों को देखते हुए प्रविष्ट हुए।[३७३] राजसभा के अतिरिक्त अन्य लोगों की सभायें होती थीं। अष्टाह्निक पर्व के अवसर पर लंका में मनुष्यों ने एक से एक बढ़कर सभायें बनाई थी।[३७४] राजसभा के चारों ओर बहुत बड़ा खुला मैदान होता था जहाँ पर बहुत से लोग आकर बैठते थे। यह मैदान राजमहल की दीवारों से घिरा रहता था। राजमहल के सघन गवाक्षों (खिड़कियों) से स्त्रियाँ झाँककर सभा में होने वाले कार्यकलापों को देखा करती थीं।[३७५] सघन गवाक्षों से एक प्रकार का धुँधला चित्र ही दिखाई देता होगा अतः आगे मैदान की ओर छपरियाँ (निर्व्यूह) बनाई जाती थी, जहाँ से सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे सके। ऐसे ही निर्व्यूह पर आकर जितपद्मा लक्ष्मण पर मोहित हो उसे शक्ति झेलने से इशारे से मना करने लगी थी।[३७६]

महाभारत में सभाओं के बहुत सुन्दर वर्णन मिलते हैं। महाभारत का एक पर्व ही सभापर्व के नाम से विख्यात है, जिसमें इन्द्रसभा, वरुणसभा, कुबेरसभा तथा ब्रह्मसभा के वर्णन हैं। उन सभाभवनों मे प्राचीन वैदिक सभा की रचना-प्रसृति ही देखने को मिलती है। गणराज्यों में सभाभवनों की एक नवीन परम्परा विकसित हुई। तत्कालीन सभाभवनों में न केवल राजनीतिक चर्चा अथवा व्यवहार-निर्णय ही सम्पन्न होते थे वरन् वाणिज्य-वार्ताओं के लिए भी वे स्थानविशेष उपयुक्त समझे जाते थे। सभाभवन के विकास का तीसरा सोपान वह था जब सभाभवनों में मनोरंजन, द्यूत, आमोद, वादविवाद तथा विभिन्न प्रतियोगितायें पल्लवित हुई।[३७७] पद्मचरित में इस तीसरे सोपान की परम्परा में एक नृत्य-सभा का वर्णन मिलता है जहाँ इस प्रकार की नर्तकियों ने

---

३७१. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९३।
३७२. पद्म० ३८।८९।
३७३. पद्म० ३८।६३-६४।
३७४. वही, ६८।११।
३७५. वही, ३८।९६।
३७६. वही, ३८।९७।
३७७. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० १९३।

नृत्य किया कि वे नर्तकियाँ जिस स्थान में ठहरती थीं, सारी सभा उसी स्थान में अपने नेत्र लगा देती थी। सारी सभा के नेत्र उसके रूप से, कान मधुर स्वर से और मन रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बँध गये थे। सामन्त लोग नर्तकियों को पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे, उनके शरीर पर केवल पहिनने के वस्त्र ही बाकी रह गये थे।[३७८] सभा का दूसरा नाम सद्स भी मिलता है।[३७९] सभायें रमणीक उद्यान मे भी बनाई जाती थी। ४६वें पर्व में प्रमदवन में अनेक खण्डों से युक्त सभागृह विद्यमान होने का कथन रविषेण ने किया है।[३८०]

दीर्घिका—राजा भरत के क्रीड़ास्थल (क्रीडनक स्थान) मे सुन्दर-सुन्दर दीर्घिकाओं के होने का कथन ८३वें पर्व में किया गया है।[३८१] दीर्घिका एक लम्बी नहर होती थी जो राजमहलों के भागों मे प्रवाहित होती हुई गृहोद्यान तक जाती थी। दीर्घिका के बीच मे गन्धोदक से पूर्ण क्रीडावापियाँ बनाकर कमल, हंस आदि के विहारस्थल बनाये जाते थे।[३८२] पद्मचरित मे इस प्रकार की अनेक दीर्घिकाओं का वर्णन है जो उत्तमोत्तम बगीचों के मध्य मे स्थित, अनेक प्रकार के फूलों से सुशोभित, उत्तम सीढ़ियों से युक्त एवं क्रीड़ा के योग्य थी।[३८३] गृहदीर्घिका छठी-सातवीं शताब्दी के राजप्रासादों की वास्तुकला की विशेषता थी। लम्बी होने के कारण इसका नाम दीर्घिका पड़ा।[३८४]

गवाक्ष[३८५]—रावण के रूप का वर्णन करते हुए पद्मचरित मे कहा गया है कि जब वह नगर में गमन करता हुआ आगे जाता था तब उसे देखने के लिए स्त्रियाँ अत्यन्त उत्कण्ठित हो समस्त कार्यों को छोडकर झरोखो में आ जाती थी।[३८६] गवाक्षों मे झाँकते हुए स्त्रीमुख गुप्तकाल की विशेषता थी।[३८७] कालिदास ने लिखा है कि झाँकते हुए पुरस्त्रियो के मुखों से गवाक्ष भरे हुए थे।[३८८]

---

३७८. पद्म० ३७।१०९-१११। ३७९. पद्म० ११०।८।
३८०. वही, ४६।१५२। ३८१. वही, ८३।४२।
३८२. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६।
३८३. पद्म० ८३।४२।
३८४. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २०६।
३८५. पद्म० १२।३७। ३८६ पद्म० ११।३२८, ३२९।
३८७. वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, —पृ० ८५, ८६।
३८८. सान्द्रकुतूहलानां पुरसुन्दरीणां मुखैः गवाक्षाः व्याप्तान्तराः ॥ —रघुवंश ७५।११।

डॉ० कुमारस्वामी ने भारतीय रोशनदान या खिड़कियों (प्राचीन वातायन[३८९], पाली-वातापान) के विकास का अध्ययन करते हुए बताया है कि शुङ्गकाल और कुषाणकाल में वातापान तीन प्रकार के थे—वेदिका वातापान, जाल वातापान तथा शलाका वातापान, किन्तु गुप्तकाल की वास्तुकला में तोरणों के मध्य में बने हुए वातायन गोल हो गये हैं। तभी उनका गवाक्ष (बैल की आँख की तरह गोल) यह अन्वर्थ नाम पड़ा।[३९०] रविषेण ने निबिड विशेषण से (गवाक्षा निबिडास्त्वावत्पिहिता वनितानतैः, पद्म० ३८।९६) इनकी सघनता की ओर संकेत किया है। जाल के समान होने के कारण इन्हें जालक भी कहते थे।[३९१] इस प्रकार के जो जालक मणियों से युक्त या मणिनिर्मित होते थे, उन्हें 'मणिजालक' कहा जाता था।[३९२]

क्रीडनक स्थान[३९३]—(क्रीड़ास्थल) पद्मचरित में भरत के ऐसे क्रीडनक स्थान या क्रीडास्थल का वर्णन किया गया है जो निर्व्यूह (छपरी) वलभी (अट्टालिका, शृङ्ग (शिखर) प्रघण (देहली) की मनोहर कांति से युक्त पंक्तिबद्ध रचित बड़े-बड़े प्रासादों (महलों) से सुशोभित था, जहाँ के फर्श (कुट्टिम) नाना प्रकार के रङ्ग-बिरङ्गे मणियों से बने हुए थे, जहाँ सुन्दर-सुन्दर दीर्घिकायें थीं, जो मोतियों की मालाओं से व्याप्त था, स्वर्णजटित था, जहाँ वृक्ष फूलों से युक्त थे, जो अनेक आश्चर्यकारी पदार्थों से व्याप्त था, समयानुकूल मन को हरण करने वाला था, बांसुरी (वंश) और मृदङ्ग (मुरज) के बजने का स्थान था, सुन्दरी स्त्रियों से युक्त था, जिसके समीप ही कपोलों से युक्त हाथी विद्यमान थे, जो मद की सुगन्ध से सुवासित था, घोड़ों की हिनहिनाहट से मनोहर था, जहाँ कोमल संगीत हो रहा था, जो नाना रत्नों के प्रकाशरूपी पट से आवृत था तथा देवों के लिए भी रुचिकर था। इस वर्णन को देखकर ऐसा लगता है मानो क्रीडनक स्थान के बहाने रविषेण सुन्दर राजप्रासाद का ही वर्णन कर रहे हों। सुन्दर राजप्रासाद निर्व्यूह, वलभी, शृङ्ग और प्रघण से युक्त होता है। उसमें अच्छा फर्श होता है। स्नान आदि के लिए सुवासित जल से परिपूर्ण दीर्घिकायें होना तो उस काल के राजप्रासाद की विशेषता ही मानी जाती थी। प्रासाद के अन्तःपुर में सुन्दर स्त्रियों का निवास होता ही था। मुख्य भवन के साथ-साथ उससे

---

३८९. पद्म० १९।१२२।

३९० हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन।

३९१. पद्म० १९।१२२।

३९२. पद्म० १९।१२२।

३९३. वही, ८३।४१-४५।

सटे हुए अन्य भवन भी होते थे जहाँ अश्वशाला, गजशाला आदि का निर्माण किया जाता था। विनोद के नृत्य, गीत, वादित्र भी राजप्रासादों में हुआ करते थे।

प्रपा[३९४]—(पानीयशाला या प्याऊ) प्राचीनकाल में स्थान-स्थान पर लोगों को पानी पीने के लिए प्याऊ (प्रपाः) बनाई जाती थी। निजी उद्देश्य की पूर्ति के साथ-साथ इनसे जनकल्याण भी होता था। ये प्याऊ नगरों[३९५] उद्यानों[३९६] तथा मन्दिरों[३९७] के साथ-साथ पथों (मार्गों) में भी बनाई जाती थीं। मार्ग में बनाई गई प्रपाओं के ऊपर वृक्षों की छाया होती थी। इनके पानी को रविषेण ने सब प्रकार के रसों से युक्त (सर्वरसान्विताः) कहा है।[३९८]

कूटगृह—भवन-निर्माण के प्रकारों में एक कूटरचना भी है। पद्मचरित में जिनकूट[३९९] भानुकूट[४००] तथा प्रासादकूट[४०१] का उल्लेख मिलता है। राम, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का अत्यन्त ऊँचा सब दिशाओं का अवलोकन कराने वाला प्रासादकूट था।[४०२] ११२वें पर्व में पाण्डुकवन के जैन-भवन (जैनमंदिर) का वर्णन करते हुए इसकी उपमा भानुकूट से दी गई है तथा मन्दिर को उत्तमोत्तम प्राकार, तोरण, ऊँचे-ऊँचे गोपुर, नाना रंग की पताकाओं, स्वर्णमय स्तम्भों एवं गम्भीर तथा सुन्दर छज्जे से युक्त बतलाया है। डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने हेमकूट को पंचशाल-भवन (द्विशाल + त्रिशाल के संयोजन से) का एक प्रकार माना है। इस आधार पर उपर्युक्त कूटों को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

समवसरण—तीर्थंकर भगवान् की वह सभा, जिसमें विराजमान होकर वे धर्मोपदेश देते हैं, समवसरण कहलाती है। समवसरण में तीन कोट बनाए जाते हैं।[४०३] कोटों की चारों दिशाओं में चार गोपुर होते हैं जो बहुत ही ऊँचे होते हैं। इन गोपुरों में चार वापियाँ होती हैं।[४०४] गोपुर अष्टमंगलद्रव्य से युक्त होते हैं तथा इनकी शोभा अद्भुत होती है।[४०५] समवसरण में स्फटिक की

---

३९४. पद्म० ३८।६३।
३९५. पद्म० ३८।६३।
३९६. वही, ४६।१५२।
३९७. वही, ६८।११।
३९८. रेणुकण्टकनिर्मुक्ता रथ्यामार्गाः सुखावहाः।
महातरुकृतच्छायाः प्रपाः सर्वरसान्विताः॥ पद्म० ३।३२५।
३९९. पद्म० ११२।३२।
४००. पद्म० ११२।४४।
४०१. वही, ८३।६।
४०२. वही, ८३।६।
४०३. वही, २।१३५।
४०४. वही, २।१३६।
४०५. वही, २।१३७।

दीवालों से बारह कोठे बने होते हैं जो प्रदक्षिणा रूप से स्थित होते हैं ।[४०६] बीच में अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर तीर्थंकर विराजमान होते हैं, यह अशोक वृक्ष पार्थिव होता है । इसकी शाखायें वैडूर्य मणि की होती हैं, यह कोमल पल्लवों से शोभायमान होता है । फूलों के गुच्छों की कान्ति से यह समस्त दिशाओं को व्याप्त करता हुआ अत्यधिक सुशोभित होता है । यह कल्पवृक्षों के समान रमणीय होता है, इसके पत्ते हरे तथा सघन होते हैं और यह नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पर्वत के समान जान पड़ता है । तीर्थंकर का सिंहासन नाना रत्नों के प्रकाश से इन्द्रधनुष को उत्पन्न करता है, दिव्य वस्त्र से आच्छादित होता है, कोमल स्पर्श से मनोहर होता है, तीनों लोकों की प्रभुतास्वरूप तीन छत्रों से सुशोभित होता है, देवों द्वारा बरसाए फूलों से व्याप्त रहता है । भूमण्डल पर वर्तमान रहता है तथा यक्षराज के हाथों में स्थित चमरों से सुशोभित होता है । दुन्दुभि बाजों की शान्तिपूर्ण प्रतिध्वनि वहाँ निकलती है ।[४०७] सूर्य के प्रकाश को तिरस्कृत करने वाले प्रभामण्डल के मध्य में तीर्थंकर भगवान् विराजमान होते हैं तथा गणधर के द्वारा प्रश्न किये जाने पर धर्मोपदेश देते हैं ।[४०८]

जिनेन्द्रालय[४०९]—यह ऊँचे शिखरों से युक्त मन्दिर (देवालय) होता था । प्रवेश करते समय इसमें सबसे पहले बाह्य कक्ष मिलता था ।[४१०] अधिक भीड़ एकत्रित होने पर सम्भवतः लोग यहाँ रुक जाते होंगे । विशेष महोत्सव आदि के अवसर पर भी लोग यहाँ एकत्रित हो जाते होंगे । यह अनेक स्तम्भों से युक्त होता था ।[४११] रावण का शान्तिनाथ जिनालय स्फटिक से निर्मित होने के कारण इसमें स्फटिक के खम्भे लगे थे ।[४१२] वहाँ की उत्तमोत्तम वस्तुओं के कारण लोग, 'यह आश्चर्य देखो, यह आश्चर्य देखो' इस प्रकार कहकर परस्पर एक दूसरे को उत्तम वस्तुयें दिखलाते थे ।[४१३] बाह्य कक्ष के बाद आद्यमण्डप[४१४] मिलता था । इसे मन्दिर का गर्भगृह कहा जा सकता है । इसकी दीवालों पर जिनेन्द्र भगवान् के मूक चित्र बनाए जाते थे । यहीं सामने जिनेन्द्र प्रतिमायें भी विराजमान होती थीं । जिनेन्द्रालय की ये विशेषतायें ७१वें पर्व में किए गए शान्ति-जिनालय के वर्णन से प्राप्त होती हैं ! अन्यत्र वर्णन के आधार पर ज्ञात होता है कि महा-

---

४०६. पद्म० २।१३८ ।
४०७. पद्म० २।१४७-१५२ ।
४०८. वही, २।१५३-१५४ ।
४०९. वही, ९५।३७ ।
४१०. वही, ७१।४७ ।
४११. वही, ७१।४३ ।
४१२. वही, ७१।४३ ।
४१३. वही, ७१।४४ ।
४१४. वही, ७१।४८ ।

पर्वत (सुमेरु पर्वत) की गुफाओं के समान जिनालयों के विशेष द्वार बनाए जाते थे। द्वारों पर हार आदि से अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये जाते थे।[४१५] मन्दिरों की स्वर्णमयी लम्बी चौड़ी दीवालों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले चित्रपट फैलाये जाते थे।[४१६] स्वर्णमयी दीवालों और मणियों के अभाव में भी उस समय चित्रपट मन्दिर की दीवालों पर फैलाने की परम्परा रही होगी। स्तम्भों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण (अथवा सुन्दर दर्पण) लगाए जाते थे और गवाक्षों (झरोखों) के अग्रभाग पर स्वच्छ निर्झर (झरने) के समान अन्यन्त मनोहर हार लटकाये जाते थे।[४१७] मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे, ऐसी भूमियों पर पाच वर्ण के रत्नमय चूर्णों से नाना प्रकार के बेल-बूटे खींचे जाते थे।[४१८] जिनमें सौ अथवा हजार कलिकायें होती थीं तथा जो लम्बी दण्डी से युक्त होते थे, ऐसे कमल उन मन्दिरों की देहलियों पर रखे जाते थे।[४१९] हाथ से पाने योग्य स्थानों मे मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियाँ लगाई जाती थीं।[४२०] दक्षलक्षण पर्व या अन्य समारोहों पर अथवा कही-कहीं सदैव इस प्रकार की हांडियाँ लटका कर शोभा करने की परम्परा अब भी है। सुगन्धि से भ्रमरों को आकर्षित करने वाली, उत्तम कारीगरों से निर्मित नाना प्रकार की मालायें फैलाई जाती थी। सुन्दर वस्त्रों से द्वार की शोभा की जाती थी तथा कही विभिन्न प्रकार की धातुओं के रस से दीवालों को अलंकृत किया जाता था।[४२१] ऊपर जिन आकर्षक चित्रपटों के फैलाए जाने का उल्लेख है, उनमे अधिकतर जिनेन्द्र भगवान् के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले चित्रपट ही फैलाए जाते थे।[४२२] जिनेन्द्रालय के जो वर्णन उपलब्ध होते हैं, उनमे ज्ञात होता है कि इस प्रकार के अधिकांश आलय मन्दिरों का निर्माण आवासगृहों, महलो आदि मे होता था। एक ही शान्ति-जिनालय के लिए शान्तिभवन,[४२३] शान्ति-गेह,[४२४] शान्त्यालय,[४२५] शान्ति-हर्म्य,[४२६] शान्तिनाथ-भवन,[४२७] (शान्तिनाथ) सद्म,[४२८] शान्तेः परमालयम्[४२९] शब्दों का प्रयोग यह सूचित करता है कि भवन, गेह, आलय, हर्म्य

४१५. पद्म० ९५।३८।
४१६. पद्म० ९५।३९।
४१७. वही, ९५।४०।
४१८. वही, ९५।४१।
४१९. वही, ९५।४२।
४२०. वही, ९५।४३।
४२१. वही, २९।५।
४२२. वही, ९६।२१।
४२३. वही, ७१।३३।
४२४. वही, ७१।३५।
४२५. वही, ७१।३९।
४२६. वही, ७१।४१।
४२७. वही, ७१।४२।
४२८. वही, ७१।४४।
४२९. वही, ७१।४९।

तथा सद्म की रचनाओं मे सामान्यतः कोई भेद नहीं माना जाता था। प्राचीन काल में निश्चय ही ये या इनमें से अधिकांश शब्द अलग-अलग प्रकार के भवनों के वाचक थे, किन्तु रविषेण के काल तक आते-आते ये शब्द एक दूसरे के पर्याय-वाची बन गए थे, ऐसा उपर्युक्त प्रयोगों से सिद्ध होता है। जिनवेश्म[४३०] शब्द भी जिनेन्द्रालय का वाचक हो गया था, क्योंकि २८वें पर्व मे जिनवेश्म का जो वर्णन आया है तदनुसार उसमें (रत्नमय) वातायन थे, (स्वर्णमय) हजारों स्तम्भ थे तथा मेरु के शिखर के समान प्रभा थी। महापीठ (भूमिका) वज्र-निबद्ध के समान थी।[४३१] ये सभी विशेषतायें उपरिलिखित आलय में समाहित हो जाती है। आगे इसकी उपमा रविषेण ने इन्द्र के क्रीड़ागृह[४३२] तथा नोन्द्रालय[४३३] से दी है। इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि आलय, गृह तथा वेश्म तीनों में कोई भेद नहीं माना जाता था। जिनालयों की शोभा के लिए उस समय उद्यान भी बनाये जाते थे।[४३४]

चैत्य[४३५]—ऊपर जिनालय के जिस रूप का वर्णन किया गया है उसी के बृहद् रूप चैत्य आवासगृहों के भाग न होकर स्वतन्त्र रूप से बनाए जाते होंगे। इन चैत्यों में सुदृढ़ स्तम्भ लगाए जाते थे। कहीं-कहीं ये स्तम्भ रत्न और स्वर्ण के बने होते थे।[४३६] चैत्य योग्य चौडाई तथा ऊँचाई से युक्त होते थे। ये झरोखे, महल (हर्म्य) वलभी (छपरी) आदि की रचना से सुशोभित होते थे।[४३७] इनमे अनेक शालायें निर्मित होती थी। इनके बड़े-बड़े द्वार तोरणयुक्त होते थे। इनके चारों ओर परिखा खोदी जाती थी। सफेद और सुन्दर पताकाओं से ये युक्त होते थे। इनके अन्दर बड़े-बड़े घंटा लगाए जाते थे।[४३८] इनमें सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पचवर्ण की जिनप्रतिमायें सुशोभित होती थीं।[४३९] ये मन्दिर परम विभूति से युक्त रहते थे।[४४०] इनमे झरोखें बने रहते थे। झरोखों में मोतियों की मालायें लटका दी जाती थीं।[४४१] ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओं मे छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त मोतियों की मालाये, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण तथा बेगेले (बुद्बुदावल्यः) लगाये

४३०. पद्म० २८।१०० ।
४३१. पद्म० २८।८८ ।
४३२. वही, २८।९१ ।
४३३. वही, २८।९२ ।
४३४. वही, ६७।२१ ।
४३५. वही, ३३।३३२ ।
४३६. वही, ७।३३८ ।
४३७. वही, ४०।२८ ।
४३८. वही, ४०।२९ ।
४३९. वही, ४०।३२ ।
४४०. वही, ६७।१८ ।
४४१. वही, ३।३३८ ।

जाते थे ।[४४२] द्वारों पर वस्त्र तथा कदली आदि से शोभा की जाती थी ।[४४३] कर्णिकार, अतिमुक्तक, कदम्ब, सहकार, चम्पक, पारिजात तथा मदार आदि के फूलों से निर्मित मालाओं से मन्दिर सजाया जाता था ।[४४४] रत्नमयी[४४५] मालाओं के लगाये जाने का भी उल्लेख मिलता है । चैत्यों में अनेक प्रकार के मणियों के बेल-बूटे लगाये जाते थे ।[४४६] चैत्यभूमि में विस्तृत वेदिकायें बनी होती थी । ये वेदिकायें वैडूर्य मणिनिर्मित दीवालों तथा हाथी, सिंह आदि के चित्रों से अलंकृत रहती थीं । मृदङ्ग, बाँसुरी, मुरज, झाँझ, नगाड़े तथा शंखों के शब्दों से चैत्यों का वातावरण संगीतमय बनाया जाता था ।[४४७] चैत्य को चैत्यालय भी कहते थे ।[४४८] कृत्रिम चैत्य के अतिरिक्त अकृत्रिम[४४९] चैत्यों का भी उल्लेख मिलता है ।

विमान—विमान-रचना की दृष्टि से पद्मचरित में पुष्पक विमान का सर्वश्रेष्ठ वर्णन उपलब्ध होता है । अष्टम पर्व के वर्णन के अनुसार पुष्पक विमान अत्यन्त सुन्दर था, शिखर युक्त था, शिखर में विभिन्न प्रकार के रत्न जड़े थे । वातायन (झरोखे) उसके नेत्र थे । उसमें मोतियों की झालर लगी हुई थी, झालर से निर्मल कान्ति का समूह निकलता था । उसका अगला भाग पद्मरागमणियों से बना था । कहीं-कहीं इन्द्रनीलमणियों की प्रभा उसपर आवरण कर रही थी । चैत्यालय, वन, मकानों के अग्रभाग, नायिका तथा महल आदि से युक्त होने के कारण वह किसी नगर के समान ऊँचा जान पड़ता था । वह बहुत ही ऊँचा था तथा देवभवन के समान जान पड़ता था ।[४५०]

---

४४२. पद्म० ४०।१२-१३ । ४४३. पद्म० ६८।१३ ।
४४४. वही, ६८।१६-१७ । ४४५. वही, २३।१५ ।
४४६. वही, २३।१३ । ४४७. वही, ४०।३०-३१ ।
४४८. वही, ३।४५ । ४४९. वही, ९८।५६ ।
४५०. अथ प्रवर्तितं तस्य मनोज्ञं यानदाधिपम् ।
प्रत्युप्तरत्नशिखरं वातायनविलोचनम् ।। पद्म० ८।२५३ ।
मुक्ताजालप्रमुक्तेन समूहेनामलत्विषाम् ।
समुत्सृजदिवाजस्रमश्रु स्वामिवियोगतः ।। पद्म० ८।२५४ ।
पद्मरागविनिर्माणमग्रदेशं दधच्छुचा ।
ताडनादिव सप्राप्तं हृदयं रक्ततां पराम् ।। पद्म० ८।२५५ ।
इन्द्रनीलप्रभाजालकृतप्रावरणं क्वचित् ।
शोकादिव परिप्राप्तं श्यामलत्वमुदारतः ।। पद्म० ८।२५६ ।

नरयान[४५१]—(शिविका[४५२], पालकी) नरयान का जो वर्णन पद्मचरित में उपलब्ध होता है उसके मूलद्रव्य (काष्ठ) तथा परिमाण आदि पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता, केवल उसके आलंकारिक स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। तदनुसार नरयान के ऊपर पताकायें फहराई जाती थीं।[४५३] इनको रत्न और स्वर्ण से देदीप्यमान किया जाता था। छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फानूस तथा नाना प्रकार के चमरों से उन्हें सुन्दर बनाया जाता था। साथ ही साथ दिव्य कमल (सुन्दर कमल) तथा नाना प्रकार के बेलबूटों से उन्हें सुसज्जित किया जाता था तथा मालाओं से इनकी शोभा बढ़ाई जाती थी।[४५४] वैराग्य होने पर भगवान् ऋषभदेव जिस शिविका पर आरूढ़ होकर वन को गये थे वह शिविका रत्नों की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करती थी। उसके दोनों ओर चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान चँवर डुलाये जा रहे थे। पूर्ण चन्द्रमा के समान उस पर दर्पण लगा हुआ था। वह बुद्बुद् के आकार के मणिमय गोलकों सहित थी। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्राकार थी। पताकाओं के वस्त्रों से उसकी शोभा बढ़ रही थी। वह दिव्य मालाओं से सुगन्धित थी, मोतियों के हार से विराजमान थी, देखने में सुन्दर थी, विमान के समान जान पड़ती थी तथा छोटी-छोटी घण्टियाँ उसमें रुनझुन शब्द करती थीं।[४५५]

सिंहासन[४५६]—इसको सिंहविष्टर[४५७] भी कहते थे। मानसार के अनुसार सिंहासन यथानाम उस आसन को कहेंगे जिसमें सिंह की प्रतिमा बनी हो। ऋषभदेव की माता ने स्वप्न में ऐसा ही सिंहासन देखा था जो बड़े-बड़े सिंहों से युक्त, अनेक प्रकार के रत्नों से उज्ज्वल, स्वर्णनिर्मित तथा बहुत ऊँचा था।[४५८] सिंहासन सबके बैठने की वस्तु नहीं है, यह केवल राजाओं के लिए ही उचित है। सिंहासनों का विशेषकर राजाओं के अभिषेक के समय प्रयोग किया जाता

चैत्यकाननबाह्यालीवाप्यन्तर्भवनादिभिः।
सहितं नगराकारं नानाशस्त्रकृतक्षतम् ॥ पद्म० ८।२५७।
भृत्यैरुवाहृतं तुङ्गसुरप्रासादसन्निभम्।
विमानं पुष्पकं नाम विहायस्तलमण्डनम् ॥ पद्म० ८।२५८।

४५१. पद्म० ११३।१९। ४५२. पद्म० ३।२७८।
४५३. वही, ११३।२१। ४५४. वही, ११३।२०-२१।
४५५. वही, ३।२७५-२७८। ४५६. वही, २।१११, ३।४१।
४५७. वही, ३।१७७। ४५८. वही, ३।१३५।

था। अतएव राजोचित सिंहासन के कई उपवर्ग[४५९] वर्णित हैं। जैसे—मंगल, वीर तथा विजय आदि।

शय्या[४६०]—शय्या के लिए दूसरा शब्द शयन[४६१] (या शयनीय) भी आया है। राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के अम्भोजकाड नामक शय्यागृह में स्थित शय्या सुकोमल स्पर्श से युक्त तथा सिंह के समान पायों पर स्थित थी।[४६२] रानी केकसी की शय्या विशाल, सुन्दर तथा क्षीरसमुद्र के समान थी। उसपर रत्नों के दीपकों का प्रकाश फैल रहा था, रेशमी वस्त्र बिछे हुए थे, यथेष्ट गद्दा (गल्लक) बिछा हुआ था तथा रंग-बिरंगी तकियाँ (उपधानक) रखी हुई थी। उसके समीप हाथी दाँत की बनी चौकी रखी थी।[४६३]

यद्यपि पद्मचरित में स्थापत्य की अनेक श्रेष्ठ कलाकृतियों के वर्णन मिलते हैं, तथापि समृद्ध कविकल्पना में लिपटे होने के कारण उनसे यह पता नहीं चलता कि इन भवनों मे कैसी निर्माणसामग्री प्रयुक्त होती थी। कवि सर्वत्र मणि जटित वातायनों, शिखरों, स्फटिक के फर्शों तथा स्वर्ण-रजत की दीवारों की प्रशंसा में बह गया है। वस्तुतः सोने-चाँदी का इतना प्रचुर उपयोग तब किया जाता था या नहीं, यह आज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर पुरातत्त्वविषयक खुदाई से प्रमाणित होता है कि स्वर्णकार और मणिकार की कलाओं मे प्राचीन भारतीयों ने बहुत उन्नति कर ली थी।

विविध कलायें

उक्तिकौशल कला—उक्तिवैचित्र्य वादविजय और मनोविनोद की कला है। भामह ने बताया है कि वक्रोक्ति ही समस्त अलकारों का मूल है और वक्रोक्ति न हो तो काव्य हो ही नही सकता। भामह की पुस्तक पढ़ने से यही धारणा होती है कि वक्रोक्ति का अर्थ उन्होंने कहने के विशेष प्रकार के ढंग को ही समझा था। वे स्पष्ट रूप से हो कह गये है कि 'सूर्य अस्त हुआ, चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है, पक्षी अपने घोंसलों मे जा रहे हैं' इत्यादि वाक्य काव्य नहीं हो सकते, क्योंकि इन कथनों में कहीं वक्र या भङ्गिमा नही है।[४६४] पद्मचरित मे केकया को उक्तिवैचित्र्य की कला में निपुण बतलाया है।[४६५]

---

४५९. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : भारतीय स्थापत्य, पृ० २०३।
४६०. पद्म० ८३।१०।
४६१. पद्म० ७१।७३, २।२२४।
४६२. वही, ६३।१०।
४६३. वही, ७१।७१-१७३।
४६४. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १२०।
४६५. पद्म० २४।३५।

उक्तिकौशल के भेद—उक्तिकौशल के अनेक भेद होते हैं। विशेष रूप से स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थत्व और भाषा की अपेक्षा उक्तिकौशल के भेद किये गये हैं।[४६६]

स्थान—उरस्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से स्थान तीन प्रकार का होता है।[४६७]

स्वर—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर होते हैं।[४६८]

संस्कार—लक्षण और उद्देश अथवा लक्षणा और अभिधा की अपेक्षा संस्कार दो प्रकार का होता है।[४६९]

विन्यास—पद, वाक्य, महावाक्य आदि के विभागसहित जो कथन है वह विन्यास कहलाता है।[४७०]

काकु—सापेक्षा तथा निरपेक्षा के भेद से काकु दो प्रकार की होती है।[४७१]

समुदाय—गद्य, पद्य और मिश्र (चम्पू) के भेद से समुदाय तीन प्रकार का होता है।[४७२]

विराम—किसी विषय का संक्षेप से उल्लेख करना विराम कहलाता है।[४७३]

सामान्याभिहित—एकार्थक अथवा पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना सामान्याभिहित कहलाता है।[४७४]

समानार्थता—एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना समानार्थता है।[४७५]

भाषा—आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के भेद से भाषा तीन प्रकार की होती है।[४७६]

लेख—पत्ररूप जो व्यवहार होता है उसे लेख कहते हैं।[४७७]

---

४६६. पद्म० २४।२७-२८।
४६७. पद्म० २४।२९।
४६८. वही, २४।८, २४।२९।
४६९. वही, २४।३०।
४७०. वही, २४।३०।
४७१. वही, २४।३१।
४७२. वही, २४।३१।
४७३. वही, २४।३२।
४७४. वही, १४।३२।
४७५. वही, २४।३३।
४७६. वही, २४।३३।
४७७. वही, २४।३४।

जाति—लेखसहित उपर्युक्त भेदों (आर्य, लक्षण और म्लेच्छ) को जाति कहते हैं।[४७८]

मातृकाएँ—साधारणतः वर्णों को पृथक्-पृथक् अथवा वर्णमाला को समुदित रूप में मातृका कहा जाता है।[४७९] इन मातृकाओं और उपर्युक्त जातियों सहित जो भाषणचातुर्य है उसे उक्तिकौशल कहते हैं।[४८०]

पुस्तकर्म

मिट्टी, लकड़ी आदि से खिलौना बनाने के कार्य को पुस्तकर्म कहते हैं। क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का होता है।[४८१]

क्षयजन्य पुस्तकर्म—लकड़ी आदि को छील-छालकर जो खिलौने आदि बनाये जाते हैं उसे क्षयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।[४८२]

उपचयजन्य पुस्तकर्म—ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर जो खिलौना आदि बनाये जाते हैं उसे उपचयजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।[४८३]

संक्रमजन्य पुस्तकर्म—जो प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि ढालकर बनाये जाते हैं उसे संक्रमजन्य पुस्तकर्म कहते हैं।[४८४]

पुस्तकर्म के एक अन्य प्रकार से चार भेद[४८५] होते हैं—यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र।

यन्त्र—वे खिलौने जो यन्त्रचालित होते हैं।

निर्यन्त्र—वे खिलौने जो बिना यन्त्र के होते हैं।

सच्छिद्र—वे खिलौने जो छिद्रसहित होते हैं।

निश्छिद्र—वे खिलौने जो छिद्ररहित होते हैं।

पत्रच्छेद-क्रिया

पत्तियों को काट-छाँटकर विभिन्न आकृतियाँ बनाने को पत्रच्छेद्य कहते हैं। ललितविस्तर में कलाओं की सूची में इसको भी स्थान दिया गया है।[४८६] पत्रच्छेद-क्रिया पत्र, वस्त्र तथा स्वर्णादि के ऊपर की जाती है। यह स्थिर और चंचल के भेद से दो प्रकार की होती है।[४८७]

---

४७८. पद्म० २४।३४।
४७९. पद्म० २४।३४।
४८०. वही, २४।३५।
४८१. वही, २४।३८।
४८२. वही, २४।३८।
४८३. वही, २४।३९।
४८४. वही, २४।३९।
४८५. वही, २४।४०।
४८६. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक **विनोद**, पृ० १५७।
४८७. पद्म० २४।४३।

पत्रच्छेद के भेद—पत्रच्छेद तीन प्रकार[४८८] का होता है। १. बुष्किम, २. छिन्न और ३. अच्छिन्न।

बुष्किम—सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे बुष्किम कहते हैं।[४८९]

छिन्न—जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे छिन्न कहते हैं।[४९०]

अच्छिन्न—जो कैंची आदि से काटकर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे अच्छिन्न कहते हैं।[४९१]

मालानिर्माण की कला

मालानिर्माण की कला चार[४९२] प्रकार की होती है—आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र।

आर्द्र—गीले (ताजे) पुष्पादि से जो माला बनाई जाती है उसे आर्द्र कहते हैं।[४९३]

शुष्क—सूखे पत्र आदि से जो माला बनाई जाती है उसे शुष्क कहते हैं।[४९४]

तदुन्मुक्त—(तदुज्झित) चावलों के सीथ अथवा जवा आदि से जो माला बनाई जाती है उसे तदुज्झित कहते हैं।[४९५]

मिश्र—जो माला उपर्युक्त तीनों के मेल से बनाई जाती है उसे मिश्र कहते हैं।[४९६]

यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदों सहित होता है।

गन्धयोजना

सुगन्धित पदार्थ निर्माण रूप कला को गन्धयोजना कहते हैं।[४९७]

गन्धयोजना के अंग—योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कौशल ये गन्धयोजना के अंग[४९८] हैं।

---

४८८. पद्म० २४।४१।
४८९. पद्म० २४।४१।
४९०. वही, २४।४२।
४९१. वही, २४।४२।
४९२. वही, २४।४४।
४९३. वही, २४।४४।
४९४. वही, २४।४५।
४९५. वही, २४।४५।
४९६. वही, २४।४५।
४९७. वही, २४।४६।
४९८. वही, २४।४७।

योनिद्रव्य—जिनसे सुगन्धित पदार्थ का निर्माण होता है ऐसे तगर आदि योनिद्रव्य हैं।[४९९]

अधिष्ठान—जो धूप, बत्ती आदि का आश्रय है उसे अधिष्ठान कहते हैं।[५००]

रस—कषायला, मधुर, चरपरा, कडुआ और खट्टा यह पाँच प्रकार का रस होता है, जिसका सुगन्धित द्रव्य में विशेषकर निश्चय करना पड़ता है।[५०१]

वीर्य—पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का वीर्य है।[५०२]

कल्पना—अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है।[५०३]

परिकर्म—तेल आदि पदार्थों का शोधन करना तथा धोना आदि परिकर्म कहलाता है।[५०४]

गुणदोषविज्ञान—गुण अथवा दोष का जानना गुणदोषविज्ञान है।[५०५]

कौशल—परकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशेषता जानना कौशल है।[५०६]

गंधयोजना कला के भेद—गन्धयोजना कला के स्वतन्त्र और अनुगत दो भेद हैं।[५०७]

संवाहन-कला

बौद्धग्रन्थ ललितविस्तर में संवाहनकला (शरीर पर मालिश करने की कला) को 'संवाहितम्' कहकर कलाओं की गणना मे उसे स्थान दिया है।[५०८] संवाहन-कला दो[५०९] प्रकार की है—१. कर्मसंश्रया, २. शय्योपचारिका।

कर्मसंश्रया के भेद—त्वचा, मांस, अस्थि और मन इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसंश्रया के चार भेद हैं।[५१०]

मृदु अथवा सुकुमार—जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहलाता है।[५११]

---

४९९. पद्म० २४।४८।
५००. पद्म० २४।४८।
५०१. वही, २४।४९।
५०२. वही, २४।५०।
५०३. वही, २४।५०।
५०४. वही, २४।५१।
५०५. वही, २४।५१।
५०६. वही, २४।५०।
५०७. वही, २४।५१।
५०८. हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १५६।
५०९. पद्म० २४।७३।
५१०. पद्म० २४।७४।
५११. वही, २४।७६।

मध्यम—जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहलाता है।[५१२]

उत्कृष्ट (प्रकृष्ट)—जो त्वचा, मांस और हड्डी को सुख पहुँचाता है वह प्रकृष्ट कहलाता है।[५१३]

मनःसुखसंवाहन—त्वचा, मांस और हड्डी को सुख पहुँचाने के साथ जब कोमल संगीत होता है तब मनःसुखसंवाहन कहलाता है।[५१४]

इसके सिवा इसके संस्पृष्ट, गृहीत, मुक्तित, चलित, आहत, भङ्गित, विद्ध, पीडित और भिन्नपीडित ये भेद भी हैं।[५१५]

कर्मसंश्रया संवाहनकला के भेद—कर्मसंश्रया संवाहनकला के निम्नलिखित[५१६] भेद हैं—१. शरीर के रोमों का उद्वर्तन करना, २. जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, ३. केशाकर्षण, ४. अद्भुत, ५. भृष्टप्राप्त, ६. अमार्गप्रयात, ७. अतिभुग्नक, ८. अदेशाहत, ९. अत्यर्थ, १०. अवसुप्तप्रतीपक।

शय्योपचारिका—जो संवाहन क्रिया के अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली शय्योपचारिका नाम की क्रिया है।[५१७]

शोभास्पद संवाहन—जो संवाहन उपरिलिखित दोषों से रहित होता है। योग्य देश मे प्रयुक्त है तथा अभिप्राय को जानकर किया जाता है ऐसा सुकुमार संवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है।[५१८]

वेश-कौशल कला

स्नान करना, शिर के बाल गूँथना तथा उन्हें सुगन्धित आदि करना यह शरीर के संस्कार वेश-कौशल नाम की कला है।[५१९]

लेप्य-कला

पद्मचरित में लेप्यकला के पर्याप्त विकास होने के भी प्रमाण मिलते हैं। एक बार प्राणों का संकट उपस्थित होने पर जब राजा दशरथ वेष बदलकर राज्य से अन्यत्र चले गये तब मन्त्री ने उनके शरीर का एक पुतला बनवाया। वह पुतला मूल शरीर से इतना मिलता-जुलता था कि केवल एक चेतना की अपेक्षा ही भिन्न प्रतीत होता था। उसके भीतर लाख आदि का रस भराकर

---

५१२. पद्म० २४।७६।
५१३. पद्म० २४।७६।
५१४. वही, २४।७६।
५१५. वही, २४।७४-७५।
५१६. वही, २४।७७, ७८।
५१७. वही, २४।८०।
५१८. वही, २४।७९।
५१९. वही, २४।८२।

रुधिर की रचना की गई थी तथा सचमुच के प्राणी के शरीर में जैसी कोमलता होती है वैसी ही कोमलता उस पुतले में रची गई थी। राजा वह पुतला पहले के समान ही समस्त परिकर के साथ महल के सातवें खण्ड में उत्तम आसन पर विराजमान किया गया था। वह मन्त्री तथा पुतला को बनाने वाला लेप्यकार ये दोनों ही राजा को कृत्रिम राजा समझते थे और बाकी सब लोग उसे यथार्थ रूप में राजा समझते थे। यही नहीं, उन दोनों को भी देखते हुए जब कभी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती थी।[५२०]

●

---

५२०. गते राजन्यमात्येन लेप्यं दाशरथं वपुः।
कारितं मुख्यवपुषो भिन्नं चेतनयैकया ॥ पद्म० २३।४१।
लाक्षादिरसयोगेन रुधिरं तत्र निर्मितम्।
मार्दवं च कृतं तादृग्यादवसत्यासुधारिणा ॥ पद्म० २३।४२।
वरासननिविष्टं तं वेश्मनः सप्तमे तले।
युक्तं पुरैव सर्वेण परिवर्गेण बिम्बकम् ॥ पद्म० २३।४३।
स मन्त्री लेप्यकारश्च कृत्रिमं जज्ञतुर्नृपम्।
भ्रान्तिर्हि जायते तत्र पश्यतोरुभयोरपि ॥ पद्म० २३।४४।

अध्याय ५

राजनैतिक जीवन

मानव जीवन के आरम्भिक काल से लेकर अभी निकट भूतकाल तक संसार के सभी देशों में राजतन्त्रात्मक शासनव्यवस्था विद्यमान रही है। इस प्रकार की शासनव्यवस्था मे साधारणतया तो राजपद वंशानुगत होता था, लेकिन कभी-कभी राजा का निर्वाचन भी किया जाता था। फ्रांसीसी विचारक बोसे के अनुसार राजतन्त्र प्राचीनतम, सबसे अधिक प्रचलित, सर्वोत्तम तथा सबसे अधिक स्वाभाविक शासन का प्रकार है।[1] पद्मचरित में हमे राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली के दर्शन होते हैं। इसका विस्तृत रूप से अध्ययन करने के लिए हमें पद्मचरित के अनुसार राज्य की उत्पत्ति, राजा और उसका महत्त्व, राज्य के अंग, सेना और युद्ध, न्यायव्यवस्था, गुप्तचर-व्यवस्था और दूत-व्यवस्था आदि विभिन्न पहलुओं पर विचार करना होगा।

राज्य की उत्पत्ति—पद्मचरित के अध्ययन से राज्य की उत्पत्ति के जिस सिद्धान्त को सर्वाधिक बल मिलता है, वह है सामाजिक समझौता सिद्धान्त। आधुनिक युग में इस सिद्धान्त को सबसे अधिक बल देने वाले, हाब्स, रूसो और लॉक हैं। इनमे भी पद्मचरित का राज्य की उत्पत्तिसम्बन्धी संकेत आधुनिक युग के रूसो और लॉक के सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य दैवीय न होकर एक मानवीय संस्था है जिसका निर्माण प्राकृतिक अवस्था मे रहनेवाले व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक समझौते के आधार पर किया गया है। इस सिद्धान्त के सभी प्रतिपादक अत्यन्त प्राचीनकाल मे एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसके अन्तर्गत जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए राज्य या राज्य जैसी कोई व्यवस्था नही थी। सिद्धान्त के विभिन्न प्रतिपादकों मे इस प्राकृतिक अवस्था के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ इसे पूर्व सामाजिक तो कुछ इसे पूर्व राजनैतिक अवस्था मानते हैं। इस प्राकृतिक अवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति अपनी इच्छानुसार प्राकृतिक नियमों को आधार मानकर अपना जीवन व्यतीत करते थे।[2] कुछ ने प्राकृतिक अवस्था को अत्यन्त कष्टप्रद और असहनीय माना है तो कुछ ने इस

---

१. पुखराज जैन : राजनीतिविज्ञान के सिद्धान्त, पृ० २६१।

२. वही, पृ० १००।

बात का प्रतिपादन किया है कि प्राकृतिक अवस्था में मानव जीवन सामान्यतया आनन्दपूर्ण था। पद्मचरित में इसी दूसरी अवस्था को स्वीकार किया गया है।[३] प्राकृतिक अवस्था के स्वरूप के सम्बन्ध मे मतभेद होते हुए भी यह सभी मानते हैं कि किसी न किसी कारण मनुष्य प्राकृतिक अवस्था को त्यागने को विवश हुए और उन्होंने समझौते द्वारा राजनैतिक समाज की स्थापना की।[४] पद्मचरित के अनुसार इस अवस्था को त्यागने का कारण समयानुसार साधनों की कमी तथा प्रकृति मे परिवर्तन होने से उत्पन्न हुआ भय[५] था। इन संकटों को दूर करने के लिए समय-समय पर विशेष व्यक्तियों का जन्म हुआ। इन व्यक्तियों को 'कुल-कर' कहा गया।[७] राज्य की उत्पत्ति का मूल इन कुलकरों और इनके कार्यों को ही कहा जा सकता है।

राजा और उसका महत्त्व—राजतन्त्र में राजा ही सर्वोपरि होता है, इस कारण समस्त संसार की मर्यादायें राजा द्वारा ही सुरक्षित मानी गई हैं। राजा धर्मों की उत्पत्ति का कारण है।[८] राजा के बाहुबल की छाया का आश्रय लेकर प्रजा सुख से आत्मध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं।[९] जिस देश का आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उसकी रक्षा के कारण राजा तप का छठा भाग प्राप्त करता है।[१०] पृथ्वीतल पर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अधिकार है। वह राजाओं द्वारा सुरक्षित मनुष्यों को ही प्राप्त होता है।[११] राजा के होने पर जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भाव-पूर्वक पूजा करते हैं। वे अंकुर उत्पन्न होने की शक्ति से रहित पुराने धान्य

---

३. पद्म० ३।४९-६३।

४. पुखराज जैन : राजनीतिविज्ञान के सिद्धान्त, पृ० १०१।

५. पद्म० ३।७४।   ६. पद्म० ३।८५।

७. वही, ३।८८।

८. भवता परिपाल्यन्ते मर्यादाः सर्वविष्टपे।
धर्माणां प्रभवस्त्वं हि रत्नानामिव सागरः॥ पद्म० ६६।१०।

९. नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः।
ध्यायन्त्यात्मानमव्यग्रास्तथैवाश्रमिणो बुधाः॥ पद्म० २७।२७।

१०. यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः।
षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात्॥ पद्म० २७।२८।

११. धर्मार्थकाममोक्षाणामधिकारा महीतले।
जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुतः॥ पद्म० २७।२६।

आदि के द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करते हैं ।[१२] निर्ग्रन्थ मुनि क्षान्ति आदि गुणों से युक्त होकर ध्यान में तत्पर रहते है तथा मोक्ष का साधनभूत उत्तम तप तपते है ।[१३] जिनमन्दिर आदि स्थलों मे जिनेन्द्र भगवान् की बड़ी बड़ी पूजायें तथा अभिषेक होते हैं ।[१४] पृथ्वीतल पर जो कुछ भी सुन्दर, श्रेष्ठ और सुखदायक वस्तु है, राजा ही उसके योग्य है ।[१५] इस प्रकार राजा का महत्त्व दर्शाया गया है ।

राजा के गुण—राजा को शूरवीर होना चाहिये । शूरवीरता के द्वारा वह समस्त लोगों की रक्षा करता है । इसके अतिरिक्त राजा को नीति से कार्य करना चाहिए ।[१६] जो राजा अहंकार से ग्रस्त नहीं होता,[१७] शस्त्रविषयक व्यायाम से विमुख नही होता, आपत्ति के समय कभी व्यग्र नहीं होता, जो मनुष्य उसके समक्ष नम्रीभूत होते हैं उनका सम्मान करता है,[१८] दोषरहित सज्जनों को ही रत्न समझता है,[१९] जिसमें दान दिया जाता है ऐसी क्रियाओं को कार्यसिद्धि का श्रेष्ठ साधन समझता है,[२०] समुद्र के समान गम्भीर होता है[२१] तथा परमार्थ को जानता है,[२२] ऐसा राजा श्रेष्ठ माना गया है । राजा को जिनशासन (धर्म) रहस्य को जानने वाला, शरणागत-वत्सल, परोपकार में तत्पर, दया से आर्द्रचित्त,[२३] विद्वान्, विशुद्ध हृदय वाला, निन्द्य कार्यों से निवृत्तबुद्धि, पिता के समान रक्षक, प्राणिहित मे तत्पर, दीन-हीन आदि का तथा विशेषकर मातृजाति का रक्षक,[२४] शुद्ध कार्य करने वाला, शत्रुओं को नष्ट करने वाला,[२५] शस्त्र और शास्त्र का अभ्यासी, शान्तिकार्य मे थकावट से रहित, परस्त्री को अजगर सहित कूप के समान जानने वाला,[२६] संसारपात के भय से धर्म में सदा आसक्त, सत्यवादी और अच्छी तरह से इन्द्रियों को वश में करने वाला[२७] होना चाहिये । जो राजा अतिशय बलिष्ठ तथा शूरवीरों की चेष्टा को धारण करने वाले होते हैं वे कभी भी भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्थे, स्त्री, बालक, पशु और दूत पर प्रहार

---

१२. पद्म० २७।२० ।
१३. पद्म० २७।२१ ।
१४. वही, २७।२२ ।
१५. वही, ७४।९२ ।
१६. वही, २।५३ ।
१७. वही, २।५३ ।
१८. वही, २।५४ ।
१९. वही, २।५५ ।
२०. वही, २।५६ ।
२१. वही, ३७।४९ ।
२२. वही, ३७।४९ ।
२३. वही, ९८।२० ।
२४. वही, ९८।२१ ।
२५. वही, ९२।२२ ।
२६. वही, ९८।२३ ।
२७. वही, ९८।२४ ।

नहीं करते हैं।[२८] बहुत बड़े कोष का स्वामी होकर जो राजा पृथ्वी की रक्षा करता है और परचक्र (शत्रु) के द्वारा अभिभूत होने पर भी विनाश को प्राप्त नहीं होता तथा हिंसा धर्म से रहित एवं यज्ञ आदि मे दक्षिणा देने वाले लोगों की जो रक्षा करता है उस राजा को भोग पुनः प्राप्त होते हैं।[२९] श्रेष्ठ राजा लोकतन्त्र को जानने वाला होता है।[३०] राजा अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर अन्य राजाओं का सम्मान करता है।[३१] राजा सत्य बोलने वाला तथा जीवों का रक्षक होता है। जीवों की रक्षा करने के कारण राजा ऋषि कहलाने योग्य है, क्योंकि जो जीवो की रक्षा करने मे तत्पर है वे ही ऋषि कहलाते हैं।[३२]

दुराचारी राजा और उसके दुर्गुण—पद्मचरित में दुराचारी राजाओं का भी उल्लेख हुआ है। उदाहरण के लिए राजा सौदास जो कि नरमांस मे अत्यधिक आसक्त होने के कारण प्रजा द्वारा नगर से निकाल दिया गया था।[३३] राजा वज्रकर्ण को दुराचारी सिद्ध करने के लिए उसे अत्यन्त क्रूर, इन्द्रियों का वशगामी, मूर्ख, सदाचार से विमुख, लोभ में आसक्त, सूक्ष्म तत्त्व के विचार से शून्य तथा भोगों से उत्पन्न महागर्व से दूषित कहा गया है।[३४]

राज्य के अंग—कौटिल्य अर्थशास्त्र मे स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड (सेना) और मित्र ये सात राज्य के अंग कहे गये हैं।[३५] पहले राजा के जो गुण कहे गये हैं, उन्हें ही स्वामी के गुण कह सकते हैं।

अमात्य—अमात्य को पद्मचरित में सचिव[३६] तथा मन्त्री[३७] नाम से उल्लिखित किया गया है। यहाँ इन्हें मन्त्रकोविद[३८] (मन्त्र करने मे निपुण), महाबलवान्[३९] (महाबलाः), नीति की यथार्थता को जानने वाले (नययाथात्म्य-

---

२८. पद्म० ६६।१०।

२९. वही, २७।२४, २५ यहाँ यज्ञ को संरक्षण देने पर विशेष बल देने का कारण यज्ञवाद का प्राबल्य दिखाई पड़ता है। इतना विशेष है कि हिंसक यज्ञों के स्थान पर अहिंसक यज्ञ को महत्त्व दिया जाने लगा था।

३०. पद्म० ७२।८८।

३१. पद्म० ५५।८९।

३२. वही, ११।५८।

३३. वही, २२।१३१-१४४।

३४. वही, ३३।८१-८२।

३५. कौटिल्य अर्थशास्त्र, ८।१।

३६. पद्म० ११३।४।

३७. वही, ६२।२, ७३।२२, ८।१६, १५।२६, ८।४८७, ११।६५।

३८. वही, ८।१६।

३९. पद्म० ८।१७।

वेदिना),[४०] सब कुछ जानने वाले (निखिलवेदिनः),[४१] सदभिप्राय से युक्त (धृतमानसः)[४२] विद्वान्,[४३] निर्भीक उपदेश देने वाले,[४४] निज और पर की क्रियाओं को जानने वाले,[४५] प्रेम से भरे,[४६] (राजा के) परम अनुयायी[४७] आदि विशेषणों से भूषित किया गया है। इन मन्त्रियों की संख्या अनेक होती थी। सामान्य मन्त्रियों के अतिरिक्त बहुत से मुख्यमन्त्री भी होते थे।[४८] सभी मन्त्रियों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल बनता था। मन्त्रिमण्डल को पद्मचरित में मन्त्रिवर्ग[४९] कहा गया है। किसी विशेष कारणवश आपत्ति के समय राजा विश्वस्त मन्त्री को राज्य सौंपकर कुछ समय के लिए राज्यकार्य से विरत हो जाते थे। प्राणों पर संकट आने पर एक समय दशरथ ने ऐसा ही किया था।[५०]

मन्त्रिगण राजा के प्रत्येक कार्य में सलाह दिया करते थे। राजा 'मय' की पुत्री मन्दोदरी जब तारुण्यवती हो गई तब उसके योग्य वर की खोज के लिए राजा ने मन्त्रियों से सलाह की।[५१] मन्त्र करने में निपुण मारीच आदि सभी प्रमुख मन्त्रियों ने बड़े हर्ष के साथ राजा को उचित सलाह दी।[५२] राजा महेंद्र की पुत्री अञ्जना जब विवाह के योग्य हुई उस समय महेन्द्र ने भी मन्त्रिजनों से योग्य वर बतलाने के लिए कहा[५३] और विचार-विमर्श कर योग्य वर की तलाश की। यम नामक लोकपाल के द्वारा रावण की प्रशंसा किये जाने पर जब इन्द्र (इन्द्र नामक राजा) युद्ध के लिए उद्यत हुआ तब नीति की यथार्थता को जानने वाले मन्त्रियों ने उसे रोका।[५४]

राजा जब विभिन्न प्रकार के वाद-विवादों का निर्णय करता था उस समय मन्त्रिगण भी वादस्थल में उपस्थित रहते थे।[५५] मृगाङ्क आदि मन्त्रियों ने रावण को समझाया कि सीता को छोड़कर राम के साथ सन्धि करो।[५६] नीति-

---

४०. पद्म० ८।४८७।
४१. पद्म० १५।२६।
४२. वही, १५।३६।
४३. वही, १५।३१।
४४. वही, ६६।३।
४५. वही,
४६. वही,
४७. वही, १०३।६।
४८. वही, ७३।२५।
४९. वही, ८।४८७।
५०. वही, २३।४०।
५१. वही, ८।१२।
५२. वही, ८।१६।
५३. वही, १५।२६।
५४. वही, ८।४८७।
५५. वही, ११।६५।
५६. वही, ६६।८।

युक्त बात कहने के कारण रावण उनकी बात टाल न सका और उसने सन्धि के लिए दूत भेजा, परन्तु दृष्टि के सकेत से रावण ने अपना दुरभिप्राय समझा दिया।[५७] इसके बाद पुनः मन्दोदरी ने रावण को समझाने के लिए मन्त्रियों को प्रेरित किया तब मन्त्रियों ने स्पष्ट कह दिया कि दशानन का शासन यमराज के शासन के समान है। वे अत्यन्त मानी और अपने आप को ही प्रधान मानने वाले हैं।[५८] मन्त्रियों के इस कथन से ही उनकी विज्ञता सूचित होती है।

मन्त्रिगण हृदय से राजा के प्रति प्रेम धारण करने वाले होते थे। जब हनुमान दीक्षा लेने का विचार व्यक्त करते है तो मन्त्री लोग शोक से व्याकुल हो जाते है और कहते हैं कि हे देव! आप हम लोगों को अनाथ न करें।[५९] राजा की अनुपस्थिति मे या अन्य किसी आपत्ति में मन्त्री लोग अन्तःपुर की यत्नपूर्वक रक्षा करते थे। जब साहसगति विद्याधर ने सुग्रीव का वेष धारण कर लोगों को वास्तविक सुग्रीव के विषय मे भ्रम डाल दिया तब मन्त्रियो ने सलाह की कि निर्मल गोत्र पाकर ही शीलादि आभूषणों से विभूषित हुआ जाता है, इसलिए इस निर्मल अन्तःपुर की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए[६०]।

जनपद—आर्यों के वैदिक युग मे किसी एक महान् पूर्वज से उत्पन्न हुई सन्तान और उसके वंशज विभिन्न परिवारों मे रहते थे। इन्ही परिवारों के समूह को 'जन' कहते थे। वैदिक युग के प्रारम्भ मे ये जन एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते-फिरते थे। धीरे-धीरे ये जन स्थायी रूप से बस गये। अपने निवास के ग्रामों तथा पार्श्ववर्ती भूभाग पर इन्होंने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। अब ये जनपद राज्य कहलाये।[६१] पद्मचरित मे छोटे-छोटे जनपदों के अस्तित्व का संकेत मिलता है। ये जनपद उस समय देश की सीमा के अन्तर्गत अनेक होते थे।[६२] देश के अन्तर्गत पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोष और द्रोणमुख आदि आते थे।[६३] आदि शब्द से यहाँ देश की सीमा के अन्तर्गत खेट,[६४] नगर,[६५] कर्वट[६६] को लिया जा सकता है। पद्मचरित मे इनमे से अधिकांश का केवल नामोल्लेख किया गया है।

---

५७. पद्म० ६६।१३।
५८. पद्म० ७३।२५।
५९. वही, १०३।५।
६०. वही, ७४।६५।
६१. बी० एन० लूनिया : प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृ० २४९।
६२. पद्म० ४१।५६।
६३. पद्म० ४१।५७।
६४. वही, ३२।२५।
६५. वही, ३२।२५।
६६. वही, ३।११५।

नगर

भारतीय नगर एक ऐसा विशाल जनसमूह था जिसकी जीविका के प्रधान साधन उद्योग तथा व्यापार थे। पाणिनि ने ग्राम एवं नगर को विभिन्न जन-सन्निवेश माना है (प्राचां ग्रामनगराणां)।[६७] मानसार में नगर वस्तुओं के क्रय-विक्रय करने वालों से परिपूर्ण (जैनः परिवृतं क्रयविक्रयादिभिः), विभिन्न जातियों का निवासस्थान (अनेकजातिसंयुक्तम्) तथा कारीगरों का केन्द्र (कर्मकारैः समन्वितम्) कहा गया है।[६८] पद्मचरित में नगरों की समृद्धि के बहुत से उल्लेख आये हैं। भरत के राज्य में नगर देवलोक के समान उत्कृष्ट सम्पदाओं से युक्त थे।[६९] विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी की नगरियों का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—वहाँ की प्रत्येक नगरी एक से एक बढ़कर है, नाना देशों और ग्रामों से व्याप्त है, मटम्बों से संकीर्ण है तथा खेट और कर्वट के विस्तार से युक्त है।[७०] वहाँ की भूमि भोगभूमि के समान है। वहाँ के झरने सदा मधु, दूध, घी आदि रसों को बहाते हैं।[७१] वहाँ पर्वतों के समान अनाज की राशियाँ हैं, वहाँ की खत्तियों (अनाज रखने की खोड़ियो) का कभी क्षय नहीं होता। वापिकाओं और बगीचों से घिरे हुए वहाँ के महल बहुत भारी कान्ति को धारण करने वाले हैं।[७२] वहाँ के मार्ग धूलि और कण्टक से रहित सुख उपजाने वाले हैं। बड़े-बड़े वृक्षों के छाया से युक्त, सर्व प्रकार के रसोंसहित वहाँ प्याऊ हैं।[७३]

नगर के चारों ओर विशाल कोट का निर्माण किया जाता था।[७४] कोट के चारों ओर गहरी परिखा (खाई) खोदी जाती थी। इसकी गहराई की उपमा

---

६७. अष्टाध्यायी ७, ३, १४।

६८. मानसार अध्याय ९ (गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४४८)।

६९. पद्म० ४।७९।

७०. देशग्राम सभाकीर्णं मटम्बाकारसंकुलम्।
सखेटकर्वटाटोपं तत्रैकैकं पुरोत्तमम्॥ पद्म० ३।३१५।

७१. भोगभूमिसमं शश्वद् राजते यत्र भूतलम्।
मधुक्षीरघृतादीनि वहन्ते तत्र निर्झराः॥ पद्म० ३।३१८।

७२. धान्यानां पर्वताकाराः पल्यौघाः क्षयवर्जिताः।
वाप्युद्यानपरिक्षिप्ताः प्रासादाश्च महाप्रभाः॥ पद्म० ३।३२४।

७३. रेणुकण्टकनिर्मुक्ता रथ्यामार्गाः सुखावहाः।
महातरुकृतच्छायाः प्रपाः सर्वसमान्विताः॥ पद्म० ३।३२५।

७४. पद्म० ४३।१६९।

पाताल की गहराई से दी गई है।[७५] नगर ऊँचे-ऊँचे गोपुरों से युक्त होता था।[७६] बड़ी-बड़ी वापिकाओं, अट्टालिकाओं और तोरणों से नगर को अलंकृत किया जाता था।

नगरनिवासी गृह[७८] (घर), आगार,[७९] प्रासाद,[८०] तथा सद्म[८१] आदि स्थानों में रहते थे। आगार छोटे-छोटे महलों और प्रासाद तथा सद्म बड़े-बड़े तथा ऊँचे महलों को कहा जाता था। इन सबको चूने से पोता जाता था।[८२] नगर में रंग-बिरंगी ध्वजायें लगाई जाती थीं।[८३] केशर आदि मनोज्ञ वस्तुओं से मिश्रित जल से पृथ्वी को सींचा जाता था।[८४] काले, पीले, नीले, लाल तथा तथा हरे इस प्रकार पंचवर्णीय चूर्ण से निर्मित अनेक बेलबूटों से महलों को अलंकृत किया जाता था।[८५] विभिन्न समारोहों के अवसर पर दरवाजों पर पूर्ण कलश रखे जाते थे, बन्दन मालायें बाँधी जाती थीं तथा उत्तमोत्तम वस्त्र लटका कर शोभा की जाती थी।[८६]

नगरनिवासी—नगर मे प्रायः सभी प्रकार के लोग निवास करते थे। द्वितीय पर्व मे राजगृह नगर में स्त्रियाँ, मुनिगण, वेश्यायें, लासक (नृत्य करने वाले), शत्रु, शस्त्रधारी, याचक, विद्यार्थी, बन्दिजन, धूर्त, संगीतशास्त्र के पारगामी विद्वान् (गीतशास्त्रकलाकोविद), विज्ञान के ग्रहण करने मे तत्पर मनुष्य (विज्ञानग्रहणोद्युक्त), साधु, वणिज (व्यापारी), शरणागत मनुष्य, वार्तिक (समाचारप्रेषक) विदग्ध जन (चतुर मनुष्य) विट, चारण, कामुक, सुखीजन तथा मातंग (चाण्डाल) रहते थे, ऐसा उल्लेख[८७] आया है।

पत्तन[८८]

प्राचीन ग्रन्थों मे पत्तन शब्द समुद्री बन्दरगाह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मानसार के अनुसार उस नगर को पत्तन कहते हैं जो कि समुद्रतट पर स्थित होता है। (अब्धितीरप्रदेशे) जिसमें विशेषतः बनिए रहते हैं (बणिग्जातिभिराकीर्णम्), जहाँ वस्तुयें खरीदी और बेची जाती हैं (क्रयविक्रयपूरितम्) तथा

---

७५. पद्म० ४३।१७०, २।४९।
७६. पद्म० ३।३१७, ४३।१७०।
७७. वही, ३।३१७।
७८. वही, २८।५।
७९. वही, २।३७।
८०. वही, ८।२६।
८१. वही, २८।२०।
८२. वही, २।३७।
८३. वही, १२ ३६६।
८४. वही, १२।३६६।
८५. वही, १२।३६७।
८६. वही, १२।३६८।
८७. वही, २।३९-४५।
८८. वही, ४१।५७।

जो बाहरी देशों से (द्वीपान्तरैः) क्रय-विक्रय के लिये लाई गई सामग्री से परिपूर्ण होता है।[८९]

ग्राम[९०]

ग्राम को नगर का ही एक छोटा रूप कह सकते हैं। ये ग्राम ही व्यापारिकों के कारण जब बहुत अधिक विकसित हो जाते थे तो इन्हें नगर कहा जाता था। पद्मचरित में लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धान के हरे-भरे खेतों से घिरे ग्रामों का उल्लेख हुआ है।[९१] पद्मचरित के उत्तरवर्ती ग्रन्थ आदिपुराण में बतलाया गया है कि जिनमें बाड़ से घिरे गृह हों, किसानों और शूद्रों का निवास हो, बहुलता से वाटिका तथा तालाबों से युक्त हों वे ग्राम कहलाते हैं। जिस ग्राम मे सौ घर हो अर्थात् सौ कुटुम्ब निवास करते हो वह छोटा ग्राम और जिसमे पाँच सौ घर हों वह बड़ा ग्राम कहलाता है।[९२] पद्मचरित में ग्रामों की समृद्धि का विवेचन हुआ है। भरत चक्रवर्ती के राज्य में ग्राम विद्याधरों के नगरों के समान सुखों से सम्पन्न थे।[९३]

संवाह[९४]

संवाह उस समृद्ध ग्राम को कहते हैं, जो नगर के तुल्य हों। बृहत्कथाकोष में इसे अद्रिरूढम् (पर्वत पर बसा हुआ ग्राम) कहा है।[९५]

मटम्ब[९६]

मटम्ब को मडम्ब भी कहते हैं। आदिपुराण में उस बड़े नगर को मडम्ब कहा गया है जो पाँच सौ ग्रामों के मध्य व्यापार आदि का केन्द्र हो।[९७]

---

८९. मानसार अध्याय १०।   ९०. पद्म० ४१।५७।

९१. पद्म० ३३।५६।

९२. ग्रामा वृतिपरिक्षेपमात्राः स्युरुचिताश्रयाः।
शूद्रकर्षकभूयिष्ठाः सारामाः सजलाशयाः॥ आदिपुराण १६।१६४।
ग्रामाः कुलशतेनेष्टो निकृष्टः समधिष्ठितः।
परस्तत्पञ्चशत्या स्यात् सुसमृद्धकृषीबलः॥ आदिपुराण १६।१६५।

९३. पद्म० ४।७९।   ९४. पद्म० ४१।५७।

९५. बृहत्कथाकोष ९४।१६ (नेमिचन्द्र शास्त्री : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ७९)।

९६. पद्म० ४१।५७।   ९७. आदिपुराण १६।१७२।

मडम्ब वस्तुतः व्यापारप्रधान बड़े नगर को कहा गया है। इसमें एक बड़े नगर की सभी विशेषतायें वर्तमान रहती हैं।[९८]

पुटभेदन[९९]

बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्रों को पुटभेदन कहा जाता था। बड़े नगरों में थोक माल की गाठें आती थी जो मुहरबन्द हुआ करती थीं। मुहर को तोड़कर गाँठ खोल दी जाती थीं और उसके उपरान्त उसमे भरा हुआ माल फुटकरियों के हाथ बेच दिया जाता था। मुहरों के इस प्रकार तोड़े जाने के कारण ही विशिष्ट व्यापारिक केन्द्र पुटभेदन कहलाने लगे।[१००]

घोष[१०१]

अहीरों (ग्वालों) के छोटे से ग्राम को घोष कहते थे।

द्रोणमुख[१०२]

मानसार मे द्रोणमुख को द्रोणान्तर कहा गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार यह नगर समुद्र तट के पास नदी के मुहाने पर स्थित होता है (समुद्रतटिनीयुक्तम्) इसमें वणिक् तथा नाना जातियो के लोग रहते हैं (वणिग्भिः सह नानाभिर्जनैर्युक्तं जनास्पदम्) तथा वस्तुओं का क्रय-विक्रय अत्यधिक होता था।[१०३] कौटिल्य अर्थशास्त्र में इसकी स्थिति चार सौ ग्रामों के मध्य कही गई है।[१०४]

खेट[१०५]

पाणिनि ने खेट को गर्हित नगर कहा है।[१०६] इससे विदित होता है कि खेट बहुत साधारण प्रकार का सन्निवेश था तथा इसमें सभ्य लोग नही रहते थे। मानसार के अनुसार इसमे बहुधा शूद्र ही रहते थे।[१०७] आधुनिक खेड़ा

९८. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ० ७७।
९९. पद्म० ४१।५७।
१००. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४२१।
१०१. पद्म० ४१।५७।
१०२. वही, ४१।५७। १०३. मानसार अध्याय १०।
१०४. 'चतुःशत ग्राम्या द्रोणमुखम्'
—कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, अधिकरण २, अध्याय १।
१०५. पद्म० ३२।२५।
१०६. 'चेल-खेट-कटुक-काण्डं गर्हायाम्' ६।२।१२६।
१०७. 'शूद्रालयसमन्वितं खेटमुक्तं पुरातनैः' ॥ मानसार अध्याय १०।

शब्द खेट से निकला है। आदिपुराण मे नदी और पर्वत से घिरे हुए नगर को खेट कहा है।[१०८]

कर्वट[१०९]

इसे खर्वट भी कहते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार इसकी स्थिति दो सौ ग्रामों के बीच होती है। यहाँ इसे सार्वटिक कहा है।[११०] आदिपुराण में इसे पर्वतीय प्रदेश से वेष्टित माना है।[१११] मानसार के अनुसार खर्वट बहुधा पर्वत के सन्निकट स्थित होता है तथा इसमें सभी जाति के लोग रहते हैं।[११२]

दुर्ग

परचक्र (शत्रु) के द्वारा आक्रान्त होने पर कभी-कभी राजा लोग दुर्ग का आश्रय लेते थे।[११३] शत्रु पर आक्रमण करने के लिए भी दुर्ग का आश्रय लेना पडता था। राजा कुण्डलमण्डित दुर्गमगढ़ का अवलम्बन कर सदा राजा अनरण्य की भूमि को उस तरह विराधित करता रहता था जैसे कुशील मनुष्य कुल की मर्यादा को विराधित करता है।[११४]

कोश[११५]

राज्य के सात अंगों मे कोश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार यदि राज्यकोश स्वल्प हो चले अथवा अतर्कित भाव से सहसा अर्थ-संकट आ पड़े तो राजा अर्थसंचय का उपाय करके राज्यकोश बढ़ाए। यदि राज्य का कोई जनपद बड़ा हो, किन्तु उसके पास धन बहुत ही कम हो अथवा यदि उसकी खेती वर्षा के पानी पर निर्भर करती हो और उसमें प्रचुर अंश का उत्पादन होता हो तो राजा उस जनपद के निवासियों से तृतीयांश या चतुर्थांश भाग ले, किन्तु यदि कोई जनपद मध्यम तथा निम्न श्रेणी का हो तो वहाँ अन्नोत्पादन का परिमाण जाँचकर ग्राह्य अंश निर्धारित करे।[११६]

---

१०८. सरिद्‌गिरिभ्यां संरुद्धं खेटमाहुर्मनीषिणः। आदिपुराण १६।१७१।

१०९. पद्म० ३।११६।

११०. 'द्विशतग्राम्या खार्वटिकम्'—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् २।१।

१११. 'केवलं गिरिसंरुद्धं खर्वटं तत्प्रचक्षते॥' आदिपुराण १६।१७१।

११२. 'परितः पर्वतैर्युक्तं नानाजातिगृहैर्वृतम्।' मानसार अध्याय १०।

११३. पद्म० ४३।२८। ११४. पद्म० २६।४०।

११५. वही, २३।४०, ३७।१०।

११६. कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संगृह्णीयात्। जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत। यथासारं मध्यमवरं वा॥ –कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, पंचम अधिकरण, अध्याय २।

सेना

राजकार्य को चलाने के लिए दण्डव्यवस्था की आवश्यकता होती है। दण्डनीति अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा देती है, जो प्राप्त हो चुका है उसकी रक्षा करती है, यह रक्षित वस्तु को बढाती है और बढ़ी हुई वस्तु का उपयुक्त पात्र में उपयोग कराती है। लोकयात्रा (सामाजिक व्यवहार) इस दण्डनीति पर निर्भर है। अतएव जो राजा लोकयात्रा का निर्माण करने में तत्पर हो उसे चाहिए कि सदा दण्डनीति का उपयोग करने को उद्यत रहे।[११७] दण्ड का भलीभाँति प्रयोग करने के लिए सेना की आवश्यकता होती है। पद्मचरित में इसे बल कहा गया है। इस प्रकार के चतुरंग बल का यहाँ उल्लेख हुआ है।[११८] चतुरंग बल के अन्तर्गत निम्नलिखित सेनाएँ आती है—

१. हस्तिसेना।

२. अश्वसेना।

३. रथ सेना।

४. पदातिसेना।

गणना की दृष्टि से इसके आठ भेद[११९] किये गये हैं—

१. पत्ति, २. सेना, ३. सेनामुख, ४. गुल्म, ५. वाहिनी, ६. पृतना, ७. चमू तथा ८. अनीकिनी।

पत्ति—जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच प्यादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाती है।[१२०]

सेना—तीन पत्ति की एक सेना होती है।[१२१]

सेनामुख—तीन सेनाओं का एक सेनामुख होता है।[१२२]

गुल्म—तीन सेनामुखों का एक गुल्म होता है।[१२३]

वाहिनी—तीन गुल्मों की एक वाहिनी होती है।[१२४]

पृतना—तीन वाहिनियों की एक पृतना होती है।[१२५]

---

११७. अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी रक्षितविवर्धिनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च। तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्॥ कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, १।४।

११८. पद्म० २७।४७।

११९. पद्म० ५६।६।

१२०. वही, ५६।६।

१२१. वही, ५६।७।

१२२. वही, ५६।७।

१२३. वही, ५६।७।

१२४. वही, ५६।८।

१२५. वही, ५६।८।

चमू—तीन पृतनाओं की एक चमू होती है।[१२६]

अनीकिनी—तीन चमू की एक अनीकिनी होती है।[१२७]

अक्षौहिणी—अनीकिनी की गणना के अनुसार दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होती है।[१२८] इस प्रकार अक्षौहिणी में रथ इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर, हाथी इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर, पदाति एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास, घोड़े पैंसठ हजार छह सौ चौदह होते हैं।[१२९]

इन सेनाओं के अतिरिक्त पद्मचरित में विद्याधर-सेना तथा पालकी-सेना (शिविका-सेना) के भी उल्लेख मिलते हैं।

हस्तिसेना[१३०]—कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार अपनी सेना के आगे चलना, नये मार्ग, निवासस्थान तथा घाटनिर्माण के कार्य में सहायता देना, बाहु की तरह आगे बढ़कर शत्रुसेना को खदेड़ना, नदी आदि के जल का पता लगाने, पार करने या उतारने, विषम स्थान (तृणों तथा झाड़ियों से ढंके स्थान और शत्रुसेना के जमघट के संकटमय शिविर) मे घुसना, शत्रुशिविर में आग लगाना और अपने शिविर मे लगी आग बुझाना, केवल हस्तिसेना से ही विजय प्राप्त करना, छितराई हुई अपनी सेना का एकत्रीकरण, संघबद्ध शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करना, अपने को विपत्ति से बचाना, शत्रुसेना का मर्दन, भीषण आकार दिखाकर शत्रु को भयभीत कर देना, मदधारा का दर्शन कराकर ही शत्रु के हृदय में भय सचार करना, अपनी सेना का महत्त्व प्रदर्शन, शत्रुसेना को पकड़ना, अपनी सेना को शत्रु के हाथ से छुड़ाना, शत्रु के प्राकार, गोपुर, अट्टालक आदि का भंजन और शत्रु के कोश तथा वाहन का अपहरण ये सब काम हस्तिसेना से ही सम्पन्न होते हैं।[१३१]

अश्वसेना[१३२]—पद्मचरित मे घोड़ों की पीठ पर सवार, हाथों में तलवार, बरछी भाला लिये और कवच से आच्छादित वक्षःस्थल वाले योद्धाओं का उल्लेख आता है।[१३३] घोड़ों की विशेषताओं मे चपलता,[१३४] चतुरता[१३५] तथा वेग[१३६] प्रमुख मानी गई हैं।

१२६. पद्म० ५६।८।
१२७. पद्म० ५६।८।
१२८. वही, ५६।९।
१२९. वही, ५६।१०-१२।
१३०. वही, ५७।६६।
१३१. कोटिलीयम् अर्थशास्त्रम् १०।४।
१३२. पद्म० ५७।६७।
१३३. पद्म० ७४।४२।
१३४. वही, ५०।२०।
१३५. वही, ४५।९३।
१३६. वही, १०२।१९५।

रथसेना—४२वें पर्व में स्वर्णमयी अनेक बेलबूटों के विन्यास से सुन्दर, उत्तमोत्तम स्तम्भों, वेदिका तथा गर्भगृह से युक्त, ऊँचे मोतियों की मालाओं से झरोखे वाले, छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नूस (लम्बूष) तथा खण्डचन्द्र की सामग्री से अलंकृत, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदि से भरे, चार हाथी जिसमें जुते थे और जो विमान के समान था ऐसे रथ पर सीतासहित राम, लक्ष्मण के घूमने का उल्लेख मिलता है।[१३७] रथ में गरुड[१३८], अश्व[१३९], व्याघ्र[१४०], सिंह[१४१], हस्ति[१४२] आदि वाहनों को जोता जाता था। बड़े-बड़े सामन्त[१४३], सेनापति[१४४] तथा राजा[१४५] लोग प्रायः युद्ध के लिए रथ का उपयोग करते थे। रथ पर बैठने के लिए तकिया के सहारे से युक्त आसन बनाया जाता था।[१४६]

पदाति-सेना—पद्मचरित में पदाति सेना की वीरता का अनेक स्थलों पर उल्लेख आया है। उदाहरण के लिए बारहवें पर्व वाला युद्धवर्णन—बाणों से योद्धाओं का वक्षःस्थल तो खण्डित हो गया, पर मन खण्डित नहीं हुआ। इसी प्रकार योद्धाओं का सिर तो गिर गया, पर मान नहीं गिरा। उन्हें मृत्यु प्रिय थी, पर जीवन प्रिय नहीं था।[१४७] कोई एक योद्धा मर तो रहा था, पर शत्रु को मारने की इच्छा से क्रोधयुक्त हो जब गिरने लगा तो शत्रु के शरीर पर आक्रमण कर गिरा।[१४८]

विद्याधर-सेना—विद्याबल से भी युद्ध होता था। विद्याबल से युक्त लंकासुन्दरी ने हनुमान के हिमालय के समान ऊँचे रथ पर वज्रदण्ड के समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलायें उस प्रकार बरसाईं, जिस प्रकार कि उत्पात के समय उच्च मेघावली नाना प्रकार के जल बरसाती है।[१४९] रावण जब बहुरूपिणी विद्या से प्रवेश कर युद्ध करता था तब उसका सिर लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से बार-बार कट जाता था, फिर भी बार-बार देदीप्यमान

---

१३७. पद्म० ४२।२०५।
१३८. पद्म० ७४।३३।
१३९. वही, १०२।१९५।
१४०. वही, ५७।५२।
१४१. वही, ५७।४८।
१४२. वही, ७४।६।
१४३. वही, ५७।८।
१४४. वही, ९७।५४-५५।
१४५. वही, ४५।९३।
१४६. वही, ९७।८१।
१४७. अभिद्यत शरैर्वक्षो भटानां न तु मानसम्।
शिरः पपात नो मानः कान्तो मृत्युर्न जीवितम्॥ पद्म० १२।२७६।
१४८. पद्म० १२।२७८।
१४९. पद्म० ५२।४०-४१।

कुण्डलों से सुशोभित हो उठता था। एक सिर कटता था तो दो सिर उत्पन्न हो जाते थे और दो कटते थे तो चार हो जाते थे।[१५०] लोग चीता[१५१], गधा[१५२], हंस[१५३], भेड़िया[१५४], शार्दूल[१५५], हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नाना प्रकार के पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जल थल में उत्पन्न हुए नाना प्रकार के वाहनों पर सवार होकर निकलते थे।[१५६] इनमें से अधिकांश को विद्यानिर्मित होना चाहिए। विद्या के बिना पक्षी आदि की सवारी करना सम्भव नहीं मालूम पड़ता। एक स्थान पर रावण द्वारा ऐन्द्र नामक विद्यारथ से युद्ध करने का वर्णन मिलता है।[१५७]

शिबिका-सेना—पद्मचरित के एक उल्लेख से सिद्ध होता है कि शिबिका (पालकी) सेना भी तैयार की जाती थी। शिबिकाओं से निकलकर योद्धा युद्ध करते थे।[१५८]

अस्त्र-शस्त्र—युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। पद्मचरित में निम्नलिखित अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख मिलता है—

कुणी[१५९]—तरकस।

चक्र[१६०]—एक शस्त्र जिसका आकार यमराज के मुख के समान होता था और जिसकी धार तीक्ष्ण होती थी।

शिला[१६१]—बड़े-बड़े पत्थर।

सायक[१६२]—बाण।

सप्ति[१६३]—तलवार।

कङ्कोट[१६४]—धनुष।

सायकपुत्रिका[१६५]—छुरी।

तामसास्त्र[१६६]—ऐसा अस्त्र जिसका प्रयोग करने पर चारों ओर अन्धकार छा जाय।

---

१५०. पद्म० ७५।२२-२५।
१५१. पद्म० ७।३९।
१५२. वही, ७।४०।
१५३. वही, ७।४०।
१५४. वही, ७।४०।
१५५. वही, ७।३९।
१५६. वही, ५७।६६-६७।
१५७. वही, ७४।५-६।
१५८. वही, १०२।१५२।
१५९. वही, ७४।३४।
१६०. वही, ५२।४०, ३०।
१६१. वही, ५२।४०।
१६२. वही, ७४।३४, ८।१९६।
१६३. वही, १२।१८२।
१६४. वही, १२।१८२।
१६५. वही, १२।१८३।
१६६. वही, ८।१३५।

नागपाश[१६७]—किसी को बाँधने वाला विद्यानिर्मित अस्त्र।

खड्ग[१६८]—तलवार।

लोहमुद्गर[१६९]—लोहे का मुद्गर।

क्रकच[१७०]—अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली करोंत।

सूर्यावर्त[१७१]—सूर्यावर्त नामका एक धनुष।

लांगलरत्न[१७२]—हल।

सिद्धार्थ महास्त्र[१७३]—विघ्नकारी अस्त्र को नष्ट करने वाला महास्त्र।

उरगास्त्र[१७४]—विषरूपी अग्नि के कणों से दुःसह अस्त्र।

विघ्नविनायक[१७५] अस्त्र—जिसका दूर करना अशक्य होता था ऐसा अस्त्र।

बहुरूपा[१७६]—एक विशेष प्रकार की विद्या, जिसके द्वारा अनेक रूप बनाये जा सकते थे।

माहेन्द्रास्त्र[१७७]—आकाश को व्याप्त करने वाला एक अस्त्र जो समीरास्त्र से नष्ट होता था।

वारुणास्त्र[१७८]—आग्नेय अस्त्र का निराकरण करने वाला अस्त्र। इससे दिशायें प्रकाशरहित हो जाती थी।[१७९]

दन्दशूक अस्त्र[१८०]—विद्यानिर्मित ऐसा अस्त्र जिसमें फनों का समूह उठता था। इसे पन्नगास्त्र भी कहते थे।[१८१]

तार्क्ष्य अस्त्र[१८२]—गरुड़ बाण।

वज्रावर्त[१८३]—एक प्रकार का धनुष।

लांगूल[१८४]—विद्यानिर्मित एक प्रकार की पाश जिससे किसी को पकड़कर खींचा जा सके।

---

१६७. पद्म० ८।१३५।
१६८. पद्म० ७२।७३।
१६९. वही, ७२।७४।
१७०. वही, ७२।७५।
१७१. वही, १०३।१२।
१७२. वही, १०३।१३।
१७३. वही, ७५।१९।
१७४. वही, ७४।११०।
१७५. वही, ७४।१११।
१७६. वही, ६७।६।
१७७. वही, ७४।१००।
१७८. वही, ७४।१०३।
१७९. वही, ६०।९३।
१८०. वही, ७४।१०८।
१८१. वही, ७४।१०९।
१८२. वही, ७४।१०९।
१८३. वही, ७५।५५।
१८४. वही, ७५।५७, १९।५४।

शिलीमुख[१८५]—बाण।

समुद्रावर्त[१८६]—एक धनुष रत्न।

ज्वलनवक्त्र शर[१८७]—अग्निमुखबाण।

नाराच[१८८]—बाण।

पवनास्त्र[१८९]—वारुण अस्त्र का निराकरण करने वाला अस्त्र।

नागसायक[१९०]—नागबाण। विषरूपी धूम का समूह छोड़ने वाले बाण।

सैंहयानम्[१९१]—सिंहवाहिनी विद्या।

गारुडम्[१९२]—गरुडवाहिनी विद्या।

मरुत् अस्त्र[१९३]—वायव्यास्त्र।

मण्डलाग्र[१९४]—तलवार।

स्तम्भिनी विद्या[१९५]—आकाश प्रदेश में विद्याधरों को रोक देने की विद्या।

वेणुसायक[१९६]—बाँस के बने बाण।

इसके अतिरिक्त धनुष[१९७], परशु[१९८], कुन्त[१९९], शतघ्नी[२००], मुसल[२०१], शक्ति[२०२], वज्रदण्ड[२०३], प्रास[२०४], शूल[२०५], बाण[२०६], कृपाण[२०७], कनक[२०८], तोमर[२०९], चाप[२१०], गदा[२११], समीरास्त्र[२१२], आग्नेयास्त्र[२१३], धर्म अस्त्र[२१४],

---

१८५. पद्म० ८३।१४, ५८।३४।
१८६. पद्म० ८९।३५।
१८७. वही, ८९।३५।
१८८. वही, १०५।१२३।
१८९. वही, ६०।१०।
१९०. वही, ६०।१०२।
१९१. वही, ६०।१३५। ६६।४।
१९२. वही, ६०।१३५।
१९३. वही, ६०।१३८।
१९४. वही, ६३।३४।
१९५. वही, ५२।६९।
१९६. वही, १२।२५८।
१९७. वही, ७४।३४।
१९८. वही, ५२।४०।
१९९. वही, ५२।४०।
२००. वही, ५२।४०।
२०१. वही, ५२।४०।
२०२. वही, ५२।३९।
२०३. वही, ५२।४०।
२०४. वही, १०३।१९।
२०५. वही, ८९।१६।
२०६. वही, २७।७।
२०७. वही, २७।८०।
२०८. वही, २७।८२।
२०९. वही, २७।८२।
२१०. वही, २७।८३।
२११. वही, ७३।१६१।
२१२. वही, ७४।१०१।
२१३. वही, ७४।१०२।
२१४. वही, ७४।१०४।

इन्धन अस्त्र[२१५], तामस बाण[२१६], सहस्रकिरण अस्त्र[२१७], हल[२१८], उल्का[२१९], मुद्‌गर[२२०], परिघ[२२१], कुठार[२२२], सुदर्शन चक्र[२२३], क्षुरिका[२२४], गदा[२२५], शर[२२६], संवर्तक[२२७], भिण्डिमाल[२२८], वज्र[२२९], पाश[२३०], यष्टि[२३१], घन[२३२], परिघ[२३३], आर्ष्टि[२३४], भुशुण्ढी[२३५], त्रिशूल[२३६], शरासन[२३७], करवाली[२३८], अंह्रिप[२३९], ग्राव[२४०], दण्ड[२४१], कोण[२४२] इत्यादि शस्त्रों के नाम भी दिये गये हैं। शाल, वटवृक्ष तथा पहाड़ों के शिखर से भी युद्ध करने के संकेत मिलते हैं।[२४३] ऐसा करना दिव्यमाया द्वारा सम्भव होता था और विद्या के प्रभाव से उसका निवारण होता था।[२४४]

मित्र

राज्य के सात अंगों में मित्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजाओं की विजय और पराक्रम बहुत कुछ उसके मित्र राजाओं पर अवलम्बित रहती है। वरुण को पराजित करने के लिए रावण ने विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों मे निवास करने वाले विद्याधरो को सहायता के लिए बुलाया।[२४५] मित्र और शत्रु राजाओं की पहचान बडी मन्त्रणा ओर कसौटी के बाद तय की जाती थी। विभीषण जब राम की शरण मे आया तब राम ने निकटस्थ मंत्रियों से सलाह की।[२४६]

---

२१५. पद्म० ७४।१०५।
२१६. पद्म० ७४।१०६।
२१७. वही, ७४।१०८।
२१८. वही, ७५।५५।
२१९. वही, ७५।५७।
२२०. वही, ७५।५७।
२२१. वही. ७५।५८।
२२२. वही, ७५।५८।
२२३. वही, ७६।७।
२२४. वही, ७७।१।
२२५. वही, ८३।१४।
२२६. वही, १०३।१७।
२२७. वही, ५२।४५।
२२८. वही, ५८।३४।
२२९. वही, ६०।१०।
२३०. वही, ६२।७।
२३१. वही, ६२।७।
२३२. वही, ६२।७।
२३३. वही, ६२।७।
२३४. वही, ६२।४५।
२३५. वही, ५०।१३२।
२३६. वही, ८।२६२।
२३७. वही, १२।१८८।
२३८. वही, १२।२५७।
२३९. वही,
२४०. वही, १२।२५८।
२४१. वही, १२।२५८।
२४२. वही,
२४३. वही, ५०।३२।
२४४. वही, ५०।३४।
२४५. वही, १९।१।
२४६. वही, ५५।५१।

मतिकान्त नामक मंत्री ने कहा कि संभवतः रावण ने छल से इसे भेजा है, क्योंकि राजाओं की चेष्टा बड़ी विचित्र होती है।[२४७] परस्पर के विरोध से कलुषता को प्राप्त हुआ कुल जल की तरह फिर से स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है।[२४८] इसके बाद मतिसागर नामक मन्त्री ने कहा कि लोगों के मुँह से सुना है कि इन दोनों भाइयों में विरोध हो गया है। सुना जाता है कि विभीषण धर्म का पक्ष ग्रहण करने वाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जल से उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर उपकार करने में तत्पर रहता है। इसमें भाईपना कारण नहीं है, किन्तु कर्म के प्रभाव से ही संसार मे यह विचित्रता है, इसलिए दूत भेजने वाले बुद्धिमान् विभीषण को बुलाया जाय। इसके विषय मे योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनि से उत्पन्न होने के कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है, उसी प्रकार विभीषण भी दुष्ट होना चाहिए, यह बात नहीं है।[२४९] मतिसागर मन्त्री का कहना मानकर राम ने विभीषण को, जबकि वह निश्छलता को शपथ खा चुका था तब यथेष्ट आश्वासन देकर अपनी ओर मिलाया।[२५०] एक स्थान पर कहा गया है कि दुष्ट मित्रों के लिए मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूरवीरता, दुष्ट स्वभाव और मन की दाह नहीं बतलानी चाहिये।[२५१]

राजा का निर्वाचन—राजा के निर्वाचन का आधार प्रमुख रूप से पितृ पितामह या वंशानुक्रम था। फिर भी राजा को न्याय व धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करना होता था। राजा जब धर्म से च्युत हो जाता था तो जनता उसे राजसिंहासन से हटाकर बाहर निकाल देती थी। नरमांसभक्षी राजा सौदास को जनता ने सिंहासन से उतारकर नगर से बाहर निकाल दिया था।[२५२]

राज्याभिषेक—राजसिंहासन पर अधिष्ठित होने से पहले राजाओं का राज्याभिषेक होता था। इस अवसर पर अनेक राजा उपस्थित रहते थे।[२५३] अभिषेक के समय शंख, दुन्दुभि, ढक्का, झालर, तूर्य तथा बाँसुरी आदि बाजे बजाये जाते थे।[२५४] तत्पश्चात् होने वाले राजा को अभिषेक के आसन पर आरूढ कर चाँदी, स्वर्ण तथा नाना प्रकार के कलशों से अभिषेक किया जाता

---

२४७. पद्म० ५५।५२। २४८. पद्म० ५५।५३।
२४९. वही, ५५।५४-७०। २५०. वही, ५५।७३।
२५१. मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम्।
दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत्॥ पद्म० ४७।१५।
२५२. पद्म० २२।१४४। २५३. पद्म० ८८।२०, २५।
२५४. वही, ८८।२६-२७।

था।[२५५] इसके बाद राजा को मुकुट, अंगद, केयूर, हार, कुण्डल आदि से विभूषित कर दिव्य मालाओं, वस्त्रों तथा उत्तमोत्तम विलेपनों से राजा को चर्चित किया जाता था।[२५६] राजा के जयजयकार की ध्वनि लगाई जाती थी।[२५७] राजा के अभिषेक के बाद उसकी पटरानी का भी अभिषेक होता था।[२५८]

प्रजापालन—प्रजापालन करते समय राजा सदाचार की ओर विशेष ध्यान देता था, क्योंकि राजा जैसा करता था, प्रजा भी उसीका अनुसरण करने लगती थी।[२५९] जिस समय प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा राजा को ज्ञात हुआ कि चारों ओर यह चर्चा है कि राजा दशरथ के पुत्र राम रावण द्वारा हरण की गई सीता को पुनः वापिस ले आये हैं,[२६०] उस समय उन्हें महान् दुःख हुआ और कदाचित् प्रजा बुरे मार्ग पर न चलने लगे यह सोचकर उन्होंने सीता का परित्याग कर दिया। कुल की प्रतिष्ठा पर राजा लोग अत्यधिक ध्यान देते थे। सीता का परित्याग करते समय राम लक्ष्मण से कहते हैं कि हे भाई! चन्द्रमा के समान निर्मल कुल मुझे पाकर अकीर्तिरूपी मेघ की रेखा से आवृत न हो जाय, इसीलिए मैं यत्न कर रहा हूँ।[२६१] मेरा यह महायोग्य, प्रकाशमान, अत्यन्त निर्मल एवं उज्ज्वल कुल जब तक कलंकित नहीं होता तब तक शीघ्र ही इसका उपाय करो। जनता के सुख के लिए जो अपने आपको अर्पित कर सकता है, ऐसा मैं निर्दोष एवं शील से सुशोभित सीता को छोड सकता हूँ, परन्तु कीर्ति को नष्ट नहीं होने दूँगा।[२६२] पिता के समान न्यायवत्सल हो प्रजा की अच्छी तरह रक्षा करना,[२६३] विचारपूर्वक कार्य करना,[२६४] दुष्ट मनुष्य को कुछ देकर वश में

---

२५५. पद्म० ८८।३०। २५६. पद्म० ८८।३१।

२५७. वही, ८८।३२। २५८. वही, ८८।३३।

२५९. वही, ९६।५०।

किं च यादृशमुर्वीशः कर्मयोगं निषेवते।
स एव सहतेऽस्माकमपि नाथानुवर्तिनाम्॥ पद्म० ९६।५०।

२६०. पद्म० ९६।४८।

२६१. शशाङ्कविमलं गोत्रमकीर्तिघनलेखया।
मा रुधेत्प्राप्य मां भ्रातरित्यहं यत्नतत्परः॥ पद्म० ९७।२१।

२६२. कुलं महार्हमेतन्मे प्रकाशमलोज्ज्वलम्।
यावत्कलङ्क्यते नाऽरं तावदौपायिकं कुरु॥ पद्म० ९७।२३।
अपि त्यजामि वैदेहीं निर्दोषां शीलशालिनीम्।
प्रमादयामि नो कीर्ति लोकसौख्यहृतात्मकः॥ पद्म० ९७।२४।

२६३. पद्म० ९७।११८ २६४. पद्म० ९७।१२६।

करना, आत्मीय जनों को प्रेम दिखाकर अनुकूल रखना, शत्रु को उत्तम शील अर्थात् निर्दोष आचरण से वश मे करना, मित्र को सद्भावपूर्वक की गई सेवाओं से अनुकूल रखना,[२६५] क्षमा से क्रोध को, मार्दव से मान को, आर्जव से माया को और धैर्य से लोभ को वश करना,[२६६] राजा का धर्म माना जाता था।

गुप्तचर तथा दूतव्यवस्था—प्रसिद्ध उक्ति है कि 'चारैः पश्यन्ति राजानः' राजा लोग चारों (गुप्तचरों) द्वारा देखते है। इस उक्ति से गुप्तचरों की महत्ता स्पष्ट होती है। पद्मचरित मे भी इन्हे चार[२६७] कहा गया है। राजा माली के विषय मे कथन है कि उसे वेश्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र तथा आभूषण आदि जो श्रेष्ठ वस्तु गुप्तचरों से मालूम होती थी, उस सबको वीरवीर माली बलात् अपने यहाँ बुलवा लेता था, क्योंकि वह विद्या, बल, विभूति आदि से अपने आपको श्रेष्ठ मानता था।[२६८] राजा मय ने गुप्तचरों द्वारा दशानन के महल का पता लगाया था।[२६९] गुप्तचर के साथ-साथ दूतव्यवस्था भी उस समय पूरी-पूरी विकसित हो गई थी। माघ ने शिशुपालवध में चार को आँख और दूत को राजा का मुख बतलाया है।[२७०] दूत को शास्त्रज्ञान में निपुण राज-कर्तव्य मे कुशल, लोकव्यवहार का ज्ञाता, गुणों में स्नेह करने वाला,[२७१] संकेत के अनुसार अभिप्राय को जानने वाला[२७२] तथा स्वामी के कार्य में अनुरक्त बुद्धि होना चाहिए।[२७३] महाभारत मे निरभिमानता, अक्लीबता, निरालस्य, माधुर्य, दूसरे के बहकावे मे न आना, स्वस्थता और बातचीत करने का सुन्दर ढंग ये आठ दूत के गुण कहे गये हैं।[२७४]

दूत का का कार्य बड़ा साहसपूर्ण था। स्वामी के अभिप्राय के अनुसार उसे शत्रुपक्ष के सामने निवेदन करना पड़ता था। इतना होते हुए भी दूत अवध्य था।[२७५] रावण के धृष्ट अभिप्राय को व्यक्त करने वाले दूत पर ज्यों ही भामण्डल ने तलवार उठाई त्यों ही नीतिवान् लक्ष्मण ने उसे रोक लिया।[२७६] यहाँ पर लक्ष्मण कहते है कि प्रतिध्वनियों पर, लकड़ी आदि के बने पुरुषाकार पुतलों

---

२६५. पद्म० ९७।१२८। २६६. पद्म० ९७।१२९।
२६७. वही, ८।२२। २६८. वही, ७।३५, ३६।
२६९. वही, ८।२२।
२७०. 'चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।' शिशुपालवध, २।८२।
२७१. पद्म० ३९।८५। २७२. पद्म० ६६।१३।
२७३. वही, ३९।८७। २७४. महाभारत ५।३७।२७।
२७५. पद्म० ६६।९०। २७६. पद्म० ६६।४।

पर, सुआ आदि तिर्यञ्चों पर और यन्त्र से चलने वाली पुरुषाकार पुतलियों पर सत्पुरुषों का क्या क्रोध करना है ?[२७७] ऐसे ही एक स्थल पर दूत के प्रति कहा गया है—'जिसने अपना शरीर बेच दिया है और तोते के समान कही बात को दुहराता है, ऐसे इस पापी दीन-हीन भृत्य का अपराध क्या है ?[२७८] दूत जो बोलते हैं, पिशाच की तरह अपने हृदय मे विद्यमान अपने स्वामी से ही प्रेरणा पाकर बोलते है । दूत यन्त्रमयी पुरुष के समान पराधीन है ।[२७९] शत्रुपक्ष में इस तरह अपमान का सामना करते हुए भी सन्धि-विग्रहादि की भूमिका निर्धारित कराने में दूत का अपना एक विशेष स्थान था, जिसके कारण स्वपक्ष में उसे पर्याप्त सम्मान प्राप्त था ।

सामन्त—दौत्य कार्य तथा विभिन्न युद्धों के प्रसंग मे सामन्तों का उल्लेख पद्मचरित में आया है । एक बार जब रावण के मन्त्रियों ने रावण से राम के साथ सन्धि करने का आग्रह किया, तब रावण ने वचन दिया कि आप लोग जैसा कहते हैं वैसा ही करूंगा ।[२८०] इसके बाद मन्त्र के जानने वाले मन्त्रियों ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त शोभायमान एवं नीतिनिपुण सामन्त को सन्देश देकर शीघ्र ही दूत के रूप में भेजने का निश्चय किया ।[२८१] उस सामन्त दूत का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह बुद्धि मे शुक्राचार्य के समान था, महाओजस्वी था, प्रतापी था, राजा लोग उसकी बात मानते थे तथा वह कर्णप्रिय भाषण करने में निपुण था । वह सामन्त सन्तुष्ट हो स्वामी को प्रणाम कर जाने के लिए उद्यत हुआ । अपनी बुद्धि के बल से वह समस्त लोक को गोष्पद के समान तुच्छ देखता था ।[२८२] जब वह जाने लगा तब अनेक शस्त्रों से युक्त एक भयंकर सेना जो उसकी बुद्धि से ही मानो निर्मित थी, निर्भय हो गई ।[२८३] दूत की तुरही का शब्द सुनकर वानर-पक्ष के सैनिक क्षुभित हो गए और रावण के आने की शंका करते हुए भयभीत हो आकाश की ओर देखने लगे ।[२८४] राजा अतिवीर्य ने जिस

---

२७७. पद्म० ६६।५४ । २७८. पद्म० ८।१८७ ।

२७९. वही, ८।८८ । २८०. वही, ६६।११ ।

२८१. वही, ६६।१२ ।

२८२. अथ शुक्रसमो बुद्धया महोजस्कः प्रतापवान् ।
कृतवाक्यो नृपैर्भूयः श्रुतिपेशलभाषणः ।। पद्म० ६६।१५ ।
प्रणम्य स्वामिनं तुष्टः सामन्तो गन्तुमुद्यतः ।
बुद्धयवष्टम्भतः पश्यन् लोकं गोष्पदसम्मितम् ।। पद्म० ६६।१६ ।

२८३. पद्म० ६६।१७ । २८४. पद्म० ६६।१८ ।

समय भरत पर आक्रमण करने के लिए पृथ्वीधरं राजा के पास सन्देश भेजा। अपनी तैयारी का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि इस पृथ्वी पर मेरे जो सामन्त हैं वे कोष और सेना के साथ मेरे पास हैं।[२८५] इन सब उल्लेखों से सामन्त की महत्ता स्पष्ट होती है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र मे सामन्त शब्द पड़ोसी राज्य के राजा के लिए आया है।[२८६] शुक्रनीति के अनुसार जिसकी वार्षिक आय (भूमि से) एक लाख चाँदी के कार्षापण होती थी, वह सामन्त कहलाता था।[२८७] वासुदेवशरण अग्रवाल ने सामन्त-संस्था का विकास ऐसे मध्यस्थ अधिकारियों से बतलाने का प्रयास किया है जिन्हे छोटे-मोटे रजवाड़ों के समस्त अधिकार सौंपकर शाहानुशाह या महा-राजाधिराज या बड़े सम्राट् शासन का प्रबन्ध चलाते थे।[२८८] युद्ध के प्रसंग में रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नाना प्रकार के पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंस आदि वाहनों[२८९] पर सवार, सिंह,[२९०] व्याघ्र,[२९१] हाथियों,[२९२] आदि से जुते रथों पर सवार तथा घोड़ों के वेग की तरह तीव्र गति वाले[२९३] सामन्तों का उल्लेख पद्मचरित में हुआ है।

लेखवाह[२९४] (पत्रवाहक)—एक स्थान से दूसरे स्थान पर सन्देश भेजने के लिए राजा लोग लेखवाह (पत्रवाहक) रखा करते थे। इन्हे उस समय की भाषा मे लेखहारि[२९५] भी कहा जाता था। ये लोग मस्तक पर लेख को धारण करते थे। इस कारण इन्हे मस्तक-लेखक भी कहा गया है।[२९६]

लेखक—पत्र को लिखने, पढ़ने आदि के लिए लेखक भी नियुक्त किये जाते थे। राजा पृथ्वीधर के यहाँ सन्धि-विग्रह को अच्छी तरह जानने वाला[२९७] (साधुसन्धिविग्रहवेदने) एव सब लिपियों को जानने में निपुण लेखक था।[२९८]

युद्ध और उसके कारण—पद्मचरित में अनेक युद्धों का वर्णन है। इन युद्धों के मूल कारण चार थे—(१) श्रेष्ठता का प्रदर्शन, (२) कन्या, (३) साम्राज्य विस्तार, (४) स्वाभिमान की रक्षा।

---

२८५. पद्म० ३७।१०।
२८६. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१७।
२८७. वही, पृ० २१९।
२८८. वही, पृ० २१७।
२८९. पद्म० ५७।६६।
२९०. पद्म० ५७।४४।
२९१. वही, ५७।५२।
२९२. वही, ५७।५८।
२९३. वही, १०२।१९५।
२९४. वही, ३७।२।
२९५. वही, १९।१।
२९६. वही, १९।४।
२९७. वही, ३७।३।
२९८. वही, ३७।४।

प्राचीनकाल में वीरभोग्या वसुंधरा का सिद्धान्त प्रचलित था। जो लोग शासन की अवहेलना करते थे या आज्ञा नहीं मानते थे ऐसे राजाओं के विरुद्ध दूसरे राजा जो अपने को श्रेष्ठ मानते थे, युद्ध छेड़ दिया करते थे। राजा माली वेश्या, वाहन, विमान, कन्या, वस्त्र और आभूषण आदि जो श्रेष्ठ वस्तु गुप्तचरों से मालूम करता था उसे शीघ्र ही बलात् अपने यहाँ बुलवा लेता था। वह बल विद्या, विभूति आदि में अपने आपको श्रेष्ठ मानता था।[२९९] इन्द्र का आश्रय पाकर जब विद्याधर राजा माली की आज्ञा भंग करने लगे तब वह भाई तथा किष्किन्ध के पुत्रों के साथ युद्ध करने के लिए विजयार्द्धगिरि की ओर चला।[३००]

प्राचीन काल के अनेक युद्धों का कारण कन्या रही है। पद्मचरित में वर्णित राम-रावण का युद्ध इसका बड़ा उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेक उदाहरण यहाँ मिलते हैं। राजा शक्रधनु की कन्या जयचन्द्रा का विवाह जब हरिषेण के साथ हुआ तब इस कन्या ने हम लोगों को छोड़कर भूमिगोचरी पुरुष ग्रहण किया है ऐसा विचारकर कन्या के मामा के लड़के गंगाधर और महीधर बहुत ही क्रुद्ध हुए।[३०१] बाद में युद्ध हुआ जिसमे हरिषेण विजयी हुआ। इसी प्रकार केकया ने जब दशरथ के गले मे वरमाला डाली तब अन्य राजाओं के साथ दशरथ का युद्ध हुआ।[३०२]

साम्राज्य-विस्तार की अभिलाषा के कारण राजा लोग अनेक युद्ध लड़ा करते थे। लक्ष्मण ने समस्त पृथ्वी को वश मे कर नारायण पद प्राप्त किया था।[३०३] सगर चक्रवर्ती छह खंड का अधिपति था तथा समस्त राजा उसकी आज्ञा मानते थे।[३०४] इस प्रकार साम्राज्य-विस्तार की प्रवृत्ति अधिकांश बलशाली राजाओं में दिखाई देती है। इसके कारण युद्ध अनिवार्य रूप से हुआ करते थे।

कभी-कभी स्वाभिमान की रक्षा के लिए भी युद्ध हुआ करते थे। चक्ररत्न के अहंकार से चूर जब भरत ने बाहुबलि पर आक्रमण किया तब मैं और भरत एक ही पिता के दो पुत्र हैं इस स्वाभिमान के कारण उसने भरत के साथ युद्ध किया और दृष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध तथा जलयुद्ध मे परास्त कर अन्त में विरक्ति के कारण दीक्षा ले ली।[३०५]

गुणसिद्धान्त—पद्मचरित के षष्ठ पर्व मे राजा कुण्डलमण्डित को गुणात्मक (गुणा से युक्त) कहकर उसकी विशेषता बतलाई गई है। यहाँ इन गुणों से

२९९. पद्म० ७।३५-३६। ३००. पद्म० ३।३७।
३०१. वही, ८।३७४। ३०२. वही, पर्व २४।
३०३. वही, ९४।१०। ३०४. वही, ५।८४।
३०५. वही, ४।६७-७४।

तात्पर्य क्या है, यह जान लेना आवश्यक है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये षाड्गुण्य अर्थात् छः गुण कहे गये हैं।[३०६] किन्तु पद्मचरित में सन्धि[३०७] और विग्रह[३०८] इन दो गुणों का ही उल्लेख मिलता है। वातव्याधि ऋषि का कहना है कि सन्धि और विग्रह ये दो ही मुख्य गुण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों गुणों से अन्याय छहों गुण स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं।[३०९] आसन और संश्रय का सन्धि में, यान का विग्रह में और द्वैधीभाव का सन्धि तथा विग्रह दोनों में अन्तर्भाव होता है।

सन्धि—दो राजाओं के बीच भूमि, कोश तथा दण्ड आदि प्रदान करने की शर्त पर किए गये पणबन्ध (समझौते) को सन्धि कहते हैं।[३१०]

विग्रह—शत्रु के प्रति किये गये द्रोह या अपकार को विग्रह कहते हैं।[३११]

आसन—सन्धि आदि गुणों की उपेक्षा का नाम आसन है।[३१२]

यान—शत्रु पर किये गये आक्रमण को यान कहते हैं।[३१३]

संश्रय—किसी बलवान् राजा के पास आने को एवं अपनी स्त्री तथा पुत्र एवं धन धान्य आदि को समर्पण कर देने का नाम संश्रय है।[३१४]

द्वैधीभाव—सन्धि तथा विग्रह के एक साथ प्रयोग को द्वैधीभाव कहते हैं।[३१५]

युद्ध की प्रारम्भिक स्थिति—युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व शत्रु राजाओं के यहाँ दूत भेजा जाता था। दूत स्वामी का अभिप्राय निवेदन कर लौट आता था। यदि शत्रु राजा दूत द्वारा कही गई बातों की अवहेलना करता था या उनको ठुकराता था तो युद्ध शुरू हो जाता था।[३१६] युद्ध करने से पूर्व बड़ों की सलाह

---

३०६. 'सन्धिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः'
—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् ७।१।

३०७. पद्म० ३७।३, ६६।८। ३०८. पद्म० ३७।३।

३०९. 'द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः, सन्धिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं सम्पद्यत इति'।।
—कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् ७।१।

३१०. 'तत्र पणबन्धः सन्धिः'। कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्।

३११. 'अपकारो विग्रहः' वही, ७१, पृ० ४२५।

३१२. 'उपेक्षणं आसनं' वही, ७।१।

३१३. 'अभ्युच्चयो यानं' वही, ७।१।

३१४. 'परार्पणं संश्रयः, वही, ७।१।

३१५. 'सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभावः, वही, ७।१।

३१६. पद्म० अष्टम पर्व—वैश्रवण और सुमाली का युद्ध।

ली जाती थी।[३१७] इसके बाद मन्त्रियों से मन्त्रणा की जाती थी।[३१८] सोच विचार कर ही कार्य किया जाता था, क्योंकि बिना विचारे कार्य करने वालों का कार्य निष्फल हो जाता है।[३१९] जीत हार के विषय में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों को महत्ता दी जाती थी। केवल पुरुषार्थ ही कार्यसिद्धि का कारण नही है, क्योंकि निरन्तर कार्य करने वाले पुरुषार्थी किसान का वर्षा के बिना क्या सिद्ध हो सकता है? अर्थात् कुछ भी नहीं। एक ही समान पुरुषार्थ करने वाले और एक ही समान आदर से पढ़ने वाले छात्रों में से कुछ तो सफल हो जाते हैं और कुछ कर्मों की विवशता से सफल नही हो पाते।[३२०] पूर्व जन्म के पुण्य के उदय से प्राणियों के लिए पर्वतों को चूर्ण करने वाला वज्र भी फूल के समान कोमल हो जाता है। अग्नि भी चन्द्रमा के समान शीतल विशाल कमल वन हो जाती है और खड्गरूपी लता भी सुन्दर स्त्रियों की सुकोमल भुजलता बन जाती है।[३२१]

अच्छी सेना के लिए आवश्यक समझा जाता था कि उस सेना में न तो कोई मनुष्य मलिन, न दीन, न भूखा, न प्यासा, न कुत्सित वस्त्र धारण करने वाला और न चिन्तातुर दिखाई पड़े। सैनिकों के उत्साहवर्द्धन हेतु स्त्रियाँ भी पुरुषों के साथ जाती थीं।[३२२] युद्ध प्रारम्भ करने से पूर्व, मध्य में और अन्त में बाजे बजाये जाते थे। सबसे पहले यन्त्र आदि के द्वारा कोट को अत्यन्त दुर्गम कर दिया जाता था तथा नाना प्रकार की विद्याओं के द्वारा नगर को गह्वरों एवं पाशों से युक्त कर दिया जाता था।[३२३] सच्चे शूरवीर युद्ध में प्राण त्याग करना अच्छा समझते थे पर शत्रु के लिए नमस्कार करना अच्छा नहीं समझते थे।[३२४]

वाद्यों का प्रयोग—पद्मचरित में अनेक वाद्यों के नाम आये है। ये युद्ध और विभिन्न माङ्गलिक समारोहों पर बजाये जाते थे। इनकी संख्या निम्नलिखित है—

---

३१७. पद्म० १२।१६३। ३१८. पद्म० १२।१६४।
३१९. वही, १२।१६४।
३२०. भवत्यर्थस्य संसिद्धयै केवलं च न पौरुषम्।
कर्षकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः।। पद्म० १२।१६६।
समानमहिमानानां पठतां च समादरम्।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणां वशात्।। पद्म० १२।१६७।
३२१. पद्म० १७।१०४-१०५। ३२२. पद्म० १०२।१०६-१०७।
३२३. वही, ४६।२३०। ३२४. वही, १२।१७७।

वीणा,[३२५] वेणु,[३२६] (बाँसुरी), शंख,[३२७] मृदंग,[३२८] झल्लर (झालर),[३२९] काहला,[३३०] मर्दक,[३३१] दुन्दुभि,[३३२] भंभा,[३३३] लम्पाक,[३३४] धुन्धु,[३३५] मण्डुक,[३३६] झम्ला,[३३७] अम्लातक,[३३८] हक्का,[३३९] हुंकार,[३४०] वुन्दुकाणक,[३४१] झर्झर,[३४२] हेतुकगुञ्जा,[३४३] दर्दुर,[३४४] तूर्य,[३४५] वंशाः,[३४६] पटह[३४७] (नगाड़ा) लम्प,[३४८] गुञ्जा,[३४९] रटित,[३५०] ढक्का,[३५१] हुंका[३५२] तथा सुन्द[३५३] ।

उपर्युक्त वाद्यों से होने वाले शब्दों के अतिरिक्त हलाहला के शब्द, अट्टहास के शब्द, घोड़े, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि के शब्द,[३५४] भांड़ों के विशाल शब्द, वन्दीजनों के विरदपाठ,[३५५] सूर्य के समान तेजस्वी रथों की मनोहर चीत्कार, पृथ्वी के कम्पन से उत्पन्न शब्द और इन सबकी करोड़ों प्रकार की ध्वनियों के शब्द[३५६] इस तरह विभिन्न प्रकार के शब्दों का उल्लेख मिलता है।

युद्ध की विधि (नियम)—पद्मचरित के अनुसार युद्ध की यह विधि (नियम) है कि दोनों पक्षों के खेदखिन्न तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है।[३५७] भूख से दुःखी मनुष्य के लिए अमृत तुल्य अच्छा भोजन दिया जाता है। पसीना से युक्त मनुष्यों के लिए

---

३२५. पद्म० ६१३७९ ।
३२६. पद्म० ६१३७९ ।
३२७. वही, ६१३७९ ।
३२८. वही, ६१३७९ ।
३२९. वही, ६१३७९ ।
३३०. वही, ६१३७९ ।
३३१. वही, ६१३७९ ।
३३२. वही, ४९१४३ ।
३३३. वही, ५८१२७ ।
३३४. वही,
३३५. वही,
३३६. वही,
३३७. वही,
३३८. वही,
३३९. वही,
३४०. वही,
३४१. वही,
३४२. वही, ५८१२८ ।
३४३. वही, ५८१२८ ।
३४४. वही, ५८१२८ ।
३४५. वही, ४३१३ ।
३४६. वही, ११०१३५ ।
३४७. वही, ८२१३० ।
३४८. वही, ८२१३० ।
३४९. वही, ८२१३१ ।
३५०. वही, ८२१३१ ।
३५१. वही, ८०१५५ ।
३५२. वही, ८०१५५ ।
३५३. वही, ८०१५५ ।
३५४. वही, ८०१३२ ।
३५५. वही, ८२१३३ ।
३५६. वही, ८२१३४ ।
३५७. खिन्नाभ्यां दीयते स्वादु जलं ताभ्यां सुशीतलम् ।
महातर्षाभिभूताभ्यामयं हि समरे विधिः ॥ पद्म० ७५।१ ।

आह्लाद का कारण गोशीर्ष चन्दन दिया जाता है।[३५८] पंखे आदि से हवा की जाती है। बर्फ के जल के छींटे दिये जाते है तथा इनके सिवाय जो कार्य आवश्यक हों उनकी पूर्ति समीप में रहने वाले मनुष्य तत्परता के साथ करते हैं।[३५९] युद्ध की यह विधि (नियम) जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए हैं उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लिए भी है। युद्ध मे निज और पर का भेद नहीं होता। ऐसा करने से ही कर्तव्य की सिद्धि होती है।[३६०] जो राजा अतिशय बलिष्ठ शूरवीरों की चेष्टा को धारण करने वाले हैं वे न भयभीत पर, न ब्राह्मण पर, न मुनि पर, न निहत्थे पर, न स्त्री पर, न बालक पर, न पशु पर और न दूत पर प्रहार करते हैं।[३६१] भयभीत शरणागत तथा शस्त्र डाल देने वाले पर भी प्रहार नही किया जाता था[३६२]

सैनिक उत्साह—युद्ध के लिए जाते समय सैनिकों में अटूट उत्साह भर दिया जाता था। इसके मूल में स्त्रियाँ, सेनापति, राजा, तरह-तरह के बाजे आदि अनेक होते थे। पद्मचरित का ७वाँ पर्व सैनिक उत्साह के वर्णन से भरा पड़ा है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

'जिसने महायुद्ध में अनेक बड़े-बड़े योद्धाओं का वर्णन सुन रखा था ऐसी किसी वीर पत्नी ने पति का आलिङ्गन कर इस प्रकार कहा—' हे नाथ ! यदि संग्राम में घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्र से ही मैं प्राण छोड़ दूंगी। क्योंकि ऐसा होने पर वीर किङ्करों की गर्वीली पत्नियाँ मुझे धिक्कार देंगी। इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या होगी जिनके

---

३५८. अमृतोपममन्नं च क्षुधाग्लपनमीयुषोः।
गोशीर्षचन्दनं स्वेदसंगिनो ह्लादिकारणम् ॥ पद्म० ७५।२।

३५९. तालवृन्तादिवातश्च हिमवारिकणो रणे।
क्रियते तत्परैः कार्यं तथान्यदपि पार्श्वगैः ॥ पद्म० ७५।३।

३६०. तथास्तयाऽन्येषामपि स्वपरवर्गतः।
इति कर्तव्यता सिद्धिः सकला प्रतिपद्यते ॥ पद्म० ७५।४।

३६१. नरेश्वराः ऊर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु।
न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ॥
—पद्म० ६६।९०।

यहाँ पर ब्राह्मणों के लिए विशेष संरक्षण से यह ध्वनित होता है कि उस समय लोक मे ब्राह्मणों की अधिक प्रतिष्ठा थी।

३६२. पद्म० ५७।२४।

वक्षःस्थल में घाव आभूषण के समान सुशोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजय से योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरता के कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्ध से लौटा हुआ देखूँगी तो स्वर्णमय कमलों से जिनेन्द्रदेव की पूजा करूँगी।[363] महा-योद्धाओं का सम्मुखागत मृत्यु को प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुख हो धिक्कार शब्द से मलिन जीवन बिताना अच्छा नहीं है।[364] कोई बोला— हे प्रिये! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभाग में जाकर शत्रुओं के सम्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं।[365] किसी योद्धा ने नया मजबूत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होने के कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवच के समान जान पड़ने लगा।[366]

जब शत्रुघ्न ने मधु पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया तब मन्त्रि-समूह ने इस बात की चर्चा की कि जो विद्याधरों के द्वारा दुःसाध्य था ऐसा महा-शक्तिशाली मान्धाता जिसके द्वारा पहले युद्ध में जीता गया था वह मधु इस बालक के द्वारा कैसे जीता जा सकेगा।[367] कृतान्तवक्त्र सेनापति ने कहा कि जिसके मद की धारा क्षर रही हो ऐसा बलवान् हाथी यद्यपि अपनी सूँड़ से वृक्ष

---

३६३. वीरपत्नी प्रियं काचिदालिङ्ग्यैवमभाषत ।
श्रुतानेकमहायोधपरमाहवविभ्रमा ॥ पद्म० ५७।३ ।
सङ्ग्रामे विक्षतः पृष्ठे यदि नायागमिष्यसि ।
दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्ष्यामि श्रुतिमात्रतः ॥ पद्म० ५७।४ ।
किङ्कराणामतः पत्न्यो वीराणामतिगर्विताः ।
धिक्शब्दं मे प्रदास्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥ पद्म० ५७।५ ।
रणप्रत्यागतं धीरमुरोव्रणविभूषणम् ।
विशीर्णकवचं प्राप्तजयं लब्धभटस्तवम् ॥ पद्म० ५७।६ ।
द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकत्थनम् ।
जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बूनदाम्बुजैः ॥ पद्म० ५७।७ ।

३६४. आभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः ।
पराङ्मुखाः न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥ पद्म० ५७।८ ।

३६५. नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् ।
त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥ पद्म० ५७।२१ ।

३६६ पिनद्धं कस्यचिद्वर्म सुदृढं तोषहारिणः ।
वर्द्धमानं ततः शीर्णं पुराणं कङ्कटायितम् ॥ पद्म० ५७।३८ ।

३६७. पद्म० ८९।४१ ।

को गिरा देता है, तथापि वह सिंह के द्वारा मारा जाता है। शत्रुघ्न लक्ष्मी और प्रताप से सहित है, धैर्यवान् है, बलवान् है, बुद्धिमान् है और उत्तम सहायकों से युक्त है इसलिए अवश्य ही शत्रु को नष्ट करने वाला होगा।[३६८] रानी सुप्रजा ने पुत्र (शत्रुघ्न) को देखकर उसका मस्तक सूंघा और उसके बाद कहा कि हे पुत्र! तू तीक्ष्ण बाणों के द्वारा शत्रुसमूह को जीते।[३६९] वीरप्रसविनी माता ने पुत्र को अर्धासन पर बैठाकर पुनः कहा कि हे वीर! तुझे युद्ध में पीठ नहीं दिखाना चाहिये।[३७०] हे पुत्र! तुझे युद्ध से विजयी ही लौटा देखकर मैं स्वर्ण के कमलों से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करूँगी।[३७१]

युद्ध वर्णन—पद्मचरित मे अनेक युद्धों का वर्णन हुआ है। इन युद्ध-वर्णनों को पढ़कर पढ़ने वाले के मन मे वीर रस का संचार हो उठता है। उदाहरण के लिये द्वादश पर्व के कुछ उद्धरण ही पर्याप्त होंगे—

युद्ध मे घोड़ा घोड़े को मार रहा था, हाथी हाथी को मार रहा था, घुड़सवार घुड़सवार को, हाथी सवार हाथी के सवार को और रथ रथ को नष्ट कर रहा था।[३७२] जो जिसके सामने आया उसी को चीरने मे तत्पर रहने वाला पैदल सिपाहियों का झुण्ड पैदल सिपाहियों के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत था।[३७३] कोई एक योद्धा शिर कट जाने से यद्यपि कबन्ध दशा को प्राप्त हुआ था तथापि उसने शत्रु की दिशा में वेग से उछलते हुए शिर के द्वारा ही रुधिर की वर्षा कर शत्रु को मार डाला था।[३७४] जिसका चित्त गर्व से भर रहा था ऐसे किसी योद्धा का सिर यद्यपि कट गया था तो भी वह ओठो को डसता रहा और हुंकार से मुखर होता हुआ चिरकाल बाद नीचे गिरा था।[३७५] कोई एक

---

३६८. पद्म० ८९।४६-४७।

३६९. समीक्ष्य तनयं देवी स्नेहादाघ्राय मस्तके।
जगाद जय वत्स त्वं शरैः शत्रुगणं शितैः॥ पद्म० ८९।२०।

३७०. वत्समर्द्धासने कृत्वा वीरसूरगदत् पुनः।
वीर दर्शयितव्य ते पृष्ठं संयति न द्विषाम्॥ पद्म० ८९।२१।

३७१. प्रत्यागत कृतार्थं त्वां वीक्ष्य जातक संयुगात्।
पूजां परां करिष्यामि जिनानां हेमपङ्कजैः॥ पद्म० ८९।२२।

३७२. पद्म० १२।१६४। ३७३. पद्म० १२।२६५।

३७४. कश्चित्कबन्धतां प्राप्तः शिरसा स्फुटरंहसा।
मुञ्चंस्तद्दिशि कीलालं प्रतिपक्षमताडयत्॥ पद्म० १२।२९२।

३७५ कृत्तोऽपि कस्यचिन्मूर्धा गर्वनिर्भरचेतसः।
दष्टदन्तच्छदोऽपप्तद्धुङ्कारमुखरश्चिरम्॥ पद्म० १२।२९३।

भयंकर योद्धा अपनी निकलती हुई आँतों को बायें हाथ से पकड़कर तथा दाहिने हाथ से तलवार उठा बड़े वेग से शत्रु के सामने जा रहा था।[३७६] जो ओठ चाब रहा था तथा जिसके नेत्रों की पूर्ण पुतलियाँ दिख रही थीं ऐसा कोई योद्धा अपनी आँतों से कमर को मजबूत कसकर शत्रु की ओर जा रहा था।[३७७]

सैनिकों का विश्राम—किसी कारण जब युद्ध बन्द हो जाता था तब किङ्कर शिररहित धड़ आदि को हटाकर उस युद्धभूमि को शुद्ध करते थे और वहाँ कपड़े के ऊँचे-ऊँचे डेरे, कनातें तथा मण्डप आदि खड़े कर दिए जाते थे।[३७८] उस भूमि को चौकियों से युक्त किया जाता था, दिशाओं में आवागमन बन्द कर दिया जाता था और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धा बाहर खड़े रहकर उनकी रक्षा करते थे।[३७९] लक्ष्मण को शक्ति लगने पर जब युद्ध विराम हो गया तब इसी प्रकार की व्यवस्था के बाद पहले गोपुर पर धनुष हाथ में लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुर में गदा हाथ में धारण करने वाला मेघतुल्य नल खड़ा हुआ, तीसरे गोपुर में हाथ में शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ। वहाँ जिसकी मालाओं में लगे नाना प्रकार के रत्नों की किरणें सब ओर फैल रही थी ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्र के समान सुशोभित हो रहा था।[३८०] कवच और तरकस को धारण करने वाला कुमुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ। पाँचवें गोपुर में माला हाथ में लिए प्रतापी सुषेण खड़ा हुआ।[३८१] जिसकी भुजायें अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्र से इन्द्र के समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठे गोपुर में सुशोभित हो रहा था तथा सातवें गोपुर में बड़े-बड़े शत्रु राजाओं की सेना को मौत के घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार खींचकर खड़ा था।[३८२] पूर्व द्वार के मार्ग में शरभ चिह्न से चिह्नित ध्वजा को धारण करने वाला शरभ पहरा दे रहा था। पश्चिम द्वार में जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था। मन्त्रि समूह से युक्त उत्तर द्वार को घेरकर चन्द्ररश्मि नाम का बालि का महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था।[३८३] युद्ध

---

३७६. कश्चित्करेण संरुध्य वामेनान्त्राणि सद्भटः ।
तरसा खड्गमुद्यम्य ययौ प्रत्यरि भीषणः ।। पद्म० १२।२८५ ।

३७७. कश्चिन्निजैः पुरीतद्भिर्बद्ध्वा परिकरं दृढम् ।
दष्टौष्ठोऽभिययौ शत्रुं दृष्टाशेषकनीनिकः ।। पद्म० १२।२८६ ।

३७८. पद्म० ६३।२८ ।
३७९. पद्म० ६३।२९ ।
३८०. वही, ६३।३०-३१ ।
३८१. वही, ६३।३२ ।
३८२. वही, ६३।३३-३४ ।
३८३. वही, ६३।३५-३६ ।

से नहीं लौटने वाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशा को व्याप्त कर खड़े हो गये।[३८४]

युद्ध का फल—युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित हो जाती थी। यही उसका फल था।

---

३८४. पद्म० ६३।३८।

अध्याय ६

धर्म और दर्शन

धर्म का लक्षण—जो धारण करे सो धर्म है। 'धरतीति धर्मः' यह उसका निरुक्त्यर्थ है।[1] अच्छी तरह से आचरण किया हुआ धर्म दुर्गति में पड़ते हुए जीवों को धारण कर लेता है, बचा लेता है, इसलिए वह धर्म कहलाता है।[2] क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय (कषाय—जो आत्मा को दुःख दे) महाशत्रु हैं, इन्हीं के द्वारा जीव संसार में परिभ्रमण करता है।[3] क्षमा से क्रोध का, मृदुता से मान का, सरलता से माया का और सन्तोष से लोभ का निग्रह करना चाहिए।[4] स्पर्शन, रसना (जीभ), घ्राण (नासिका), चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ प्रसिद्ध हैं, इनका जीतना धर्म कहलाता है।[5] त्याग भी विशेष धर्म कहा गया है।

धर्म का माहात्म्य—धर्म के माहात्म्य का वर्णन पद्मचरित मे विस्तार से किया गया है। इन सबके अध्ययन से ऐसा विदित होता है कि धर्म के फलस्वरूप अत्यधिक सांसारिक भोगों की प्राप्ति को बहुत अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।[6] जैसे—धर्म से युक्त जीव को अत्यधिक गाय भैंस आदि पशु, हाथी, घोडे, रथ, पयादे, देश, ग्राम, महल, नौकरों के समूह, विशाल लक्ष्मी और सिंहासन प्राप्त होते हैं।[7] जो जीव धर्मपूर्वक मरण करते हैं वे ज्योतिश्चक्र को उल्लंघन कर गुणों के निवासभूत सौधर्मादिक स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं,[8] धर्म का अर्जन कर कितने ही सामानिक देव होते हैं। कितने ही इन्द्र होते हैं, कितने ही अहमिन्द्र बनते हैं। धर्म के प्रभाव से उन महलों में उत्पन्न होते हैं जो कि स्वर्ण, स्फटिक और वैडूर्य मणिमय, खम्भे के समूह से निर्मित होते हैं, जिसकी सुवर्णनिर्मित दीवालें सदा देदीप्यमान रहती हैं, जो अत्यन्त ऊँचे और अनेक

---

१. धारणार्थो धृतो धर्मशब्दो वाचि परिस्थितः—पद्म० १४।१०३।

२. पद्म० १४।१०४।

३. पद्म० १४।११०।

४. वही, १४।१११।

५. वही, १४।११३।

६. वही, १४।३१३, १४।३११, ३१२, ८५।२२, ७४।५६-५८, १४।३२७, १४।३१५-३१८, १४।१२६-१२८, १४।१२३-१२४, १४।१२०-१२२, ६०।१४२-१४३, ३५।८७-८९, ३०।१७०-१७१ आदि।

७. वही, १४।३१५।

८. वही, १४।३१६।

भूमियों (खण्डों) से मुक्त होते हैं,[९] आदि । धर्म के माहात्म्य को इस रूप में रखने का कारण यही जान पड़ता है कि लोग इन सांसारिक अभ्युदयों से आकृष्ट होकर धर्म के प्रति आस्था रखें । धर्म का वास्तविक उद्देश्य तो मोक्ष ही है । इसी को स्पष्ट करते हुए रविषेण ने कहा है कि जिस प्रकार नगर की ओर जाने वाले पुरुष को खेद निवारण करने वाला जो वृक्षमूल आदि का संगम प्राप्त होता है वह अनायास ही प्राप्त होता है उसी प्रकार जिनशासन रूपी मोक्ष की ओर प्रस्थान करने वाले पुरुष को जो देव और विद्याधर आदि की लक्ष्मी प्राप्त होती है वह अनुषङ्ग से ही प्राप्त होती है, उसके लिए मनुष्य को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है ।[१०]

उत्कृष्ट धर्म—चूँकि रविषेण जैनधर्म के अनुयायी थे। जैन धर्म के सिद्धान्तों का उन्होंने अन्तःपरीक्षण करके उसे श्रेष्ठ पाया था इसलिये उन्होंने कहा—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कथित वाक्य ही उत्तम वाक्य है, जिनेन्द्र निरूपित तप ही उत्तम तप है, जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रोक्त धर्म ही परमधर्म है और जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदिष्ट मत ही परममत है ।[११] आज तक जितने सिद्ध (मुक्त पुरुष) हुए हैं, जो वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्तकाल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्र देव द्वारा देखे हुए धर्म के द्वारा ही होंगे अन्य प्रकार से नहीं ।[१२]

धर्म के भेद—आचरण की अपेक्षा धर्म के दो भेद हैं[१३]—१. सागारधर्म (गृहस्थ धर्म), २. अनगार धर्म (मुनि धर्म) । इन दो प्रकार के धर्मों को मनुष्यों के दो आश्रम भी कहा गया है ।[१४] महाव्रत और अणुव्रत के भेद से भी धर्म दो प्रकार का कहा गया है । इनमें से पहला अर्थात् महाव्रत गृहत्यागी मुनियों के होता है और दूसरा अर्थात् अणुव्रत संसारवर्ती गृहस्थों के होता है ।[१५]

गृहस्थ धर्म—गृहस्थों का धर्म मुनिधर्म का छोटा भाई है ।[१६] गृहस्थ धर्म के द्वारा यह मनुष्य उत्तमोत्तम भोगों का भोग करता है ।[१७] बाद में मुनिदीक्षा धारण कर मोक्ष प्राप्त करता है ।[१८] गृहस्थाश्रमवासी लोगों को पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत, तीन गुणव्रत—इस प्रकार बारह व्रतों का पालन करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त यथाशक्ति हजारों नियम धारण करने पड़ते हैं ।[१९]

---

९. पद्म० १४।१२६-१२८ ।
१०. पद्म० ६।३०१-३०२ ।
११. वही, ६।३०० ।
१२. वही, ३१।१९ ।
१३. वही, ३३।१२१ ।
१४. वही, ५।१९६ ।
१५. वही, १४।१६४ ।
१६. वही, ३२।१४६ ।
१७. वही, ९।२९६ ।
१८. वही, ६।२९८ ।
१९. वही, १४।१८२-१८३ ।

पाँच अणुव्रत

१. स्थूल हिंसा का त्याग करना—धर्म का मूल दया है और दया का मूल अहिंसा रूप भाव है ।[२०] संसार मे समस्त वस्तुओं से प्यारा जीवन है, उसी के लिए अन्य सब प्रयत्न हैं ।[२१] गृहस्थ को ऐसा जानकर कि जिस प्रकार मुझे अपना शरीर इष्ट है उसी प्रकार समस्त प्राणियों को भी अपना शरीर इष्ट होता है, सब प्राणियों पर दया करनी चाहिए ।[२२] जो मनुष्य मांस भक्षण से दूर रहता है, भले ही वह उपवासादि से रहित तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथ रहती है ।[२३] इस प्रकार अहिंसा धर्म का प्रतिपादन और मांसभक्षण का निषेध पद्मचरित मे बहुत विस्तार से किया गया है ।[२४]

स्थूल झूठ का त्याग[२५]—जो वचन दूसरों को पीड़ा पहुँचाने मे निमित्त है वह असत्य कहा गया है क्योंकि सत्य इससे विपरीत होता है ।[२६] सत्यव्रतधारी के वचन सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्ति से वह समस्त ससार को व्याप्त करता है ।[२७]

स्थूल परद्रव्यापहरण का त्याग[२८]—की गई चोरी इस जन्म में वध, बन्धन आदि कराती है और मरने के बाद कुयोनियों मे नाना प्रकार के दुःख देती है । इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि चोरी का सर्व प्रकार से त्याग करें । जो कार्य तीनों लोको मे विरोध का कारण है वह किया ही कैसे जा सकता है ।[२९]

परस्त्री का त्याग—चाहे विधवा हो चाहे सधवा, चाहे कुलवती हो चाहे रूप से युक्त वेश्या हो, परस्त्रीमात्र का प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए । परस्त्री ससर्ग इस लोक तथा परलोक दानों जगहों में विरुद्ध है ।[३०] लोगों को, जिस प्रकार अपनी स्त्री को कोई दूसरा मनुष्य छेड़ता है तो इससे अपने आपको

---

२०. पद्म० ६।२८६ । २१. पद्म० ३८।६९ ।
२२. वही, १४।१८६ । २३. वही, २६।९८ ।
२४. वही, ३५।१६३, १६४, २६।६५, २६।६४, २६।६६, ६९, ७४, ७१, १००-१०२, १०६, १०८, ३९।२२६, ५९।३०, ५।३२६-३२८, ५।३४१-३४२, ६।२८६-२८९, ११।७४, २७०, २७१, ११।२७२-२७३, ८५।२४-२५, ३२।१४९ ।
२५. वही, १४।१८४ । २६. वही, १४।१८८ ।
२७. वही, ३२।१५० । २८. वही, १४।१८४ ।
२९. वही, १४।१८९-१९० । ३०. वही, १२४-१२६ ।

दुःख होता है उसी प्रकार दूसरे को भी दुःख होता होगा, ऐसा विचार करना चाहिए।[३१]

अनन्त तृष्णा का त्याग—अपनी इच्छा का सदा परिमाण करना चाहिए क्योंकि इच्छा पर यदि अंकुश नहीं लगाया गया तो वह महादुःख देती है।[३२] परिग्रही मनुष्य के चित्त में विशुद्धता नहीं होती, जिसमें चित्त की विशुद्धता मूल कारण है ऐसे धर्म की स्थिति परिग्रही मनुष्यों से नहीं हो सकती है।[३३]

चार शिक्षाव्रत—प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथिसंविभाग और आयु का क्षय उपस्थित होने पर सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत हैं।[३४]

सामायिक—मन, वचन, काय और कृत (करना), कारित (कराना), अनुमोदना (करने की प्रशंसा करना), से पाँचों पापों का त्याग करना सामायिक है।[३५]

प्रोषधोपवास—पहले और आगे के दिनों में एकासन के साथ अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास आदि करना प्रोषधोपवास है।[३६]

अतिथि संविभाग—जिसने अपने आगमन के विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं दिया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर आता है, ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथि के लिए वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए यही अतिथि संविभाग है।[३७] यज्ञ का अन्तर्भाव इसी के अन्तर्गत होता है।[३८]

सल्लेखना—इस लोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजन की अपेक्षा न करके शरीर और कषाय के कृश करने को सल्लेखना कहते हैं।[३९]

---

३१. पद्म० १४।१९२।
३२. पद्म० १४।१९४।
३३. वही, २।१८०।
३४. वही, १४।१९९।
३५. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० १३१ (हिन्दी टीका)।
३६. वही, पृ० १३१।
३७. पद्म० १४।२०१, २००।
३८. पद्म० ११।४०।
३९. तत्त्वार्थसूत्रकार (तत्त्वा० ७।२१) ने चार शिक्षाव्रत के अन्तर्गत अन्य भेदों के साथ भोगोपभोग परिमाणव्रत को गिनाया। सल्लेखना का कथन यहाँ चार शिक्षाव्रतों के अतिरिक्त, अलग से किया गया है। पद्मचरित में सल्लेखना को अलग से न कहकर भोगोपभोग परिमाणव्रत के स्थान पर सल्लेखना को कहा है।

तीन गुणव्रत—अनर्थदण्डों का त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना और भोगोपभोग का परिमाण करना ये तीन गुणव्रत हैं।[४०] प्रयोजन रहित पापवर्धक क्रियाओं का त्याग करना अनर्थ-दण्डव्रत है। अनर्थ दण्ड के पाँच भेद[४१] हैं—

१. पापोपदेश (हिंसा आदि पाप के कामों का उपदेश देना)।

२. हिंसादान (तलवार आदि हिंसा के उपकरण देना)।

३. अपध्यान—दूसरे का बुरा विचारना।

४. दुश्रुति—रागद्वेष को बढ़ाने वाले खोटे शास्त्रों का सुनना।

५. प्रमादचर्या—बिना प्रयोजन यहाँ वहाँ घूमना तथा पृथ्वी आदि का खोदना।

भोगोपभोग—जो एक बार भोगने में आवे उसे भोग और जो बार-बार भोगने में आये उसे उपभोग कहते हैं।[४२]

व्रत और उसकी भावनायें—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों से विरक्त होने को व्रत कहते हैं।[४३] ये व्रत भावनाओं से युक्त हैं। तत्त्वार्थसूत्र में व्रतों की स्थिरता के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनायें बतलाई हैं।[४४]

---

४०. पद्म० १४।१९८। तत्त्वार्थसूत्रकारने गुणव्रतों के अन्तर्गत दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ये तीन व्रत गिनाये हैं। पद्मचरित में देशव्रत को अलग से न गिनाकर उसके स्थान पर भोगोपभोग का परिमाण करना गिनाया है। इसका मूल कारण यही मालूम पड़ता है कि दिग्व्रत और देशव्रत में समय की अपेक्षा अन्तर होता है। जीवनपर्यन्त के लिए दिग्व्रत में भी संकोच करके घड़ी, घण्टा, दिन, माह आदि तक किसी गृह, मुहल्ले आदि तक आना-जाना रखना देशव्रत है।

४१. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य की हिन्दी टीका सहित : मोक्षशास्त्र, पृ० १३१।

४२. वही, पृ० १३१।

४३. हिंसाया अनृतात् स्तेयात् स्मरसङ्गात् परिग्रहात्।
विरतिर्व्रतमुद्दिष्टं भावनाभिः समन्वितम्॥ पद्म० ११।३८।
हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्। तत्त्वार्थसूत्र ७।१।

४४. तत्त्वार्थसूत्र ७।३। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच।

अहिंसा व्रत की पाँच भावनायें

वाग्गुप्ति—वचन को रोकना।

मनोगुप्ति—मन की प्रवृत्ति को रोकना।

ईर्यासमिति—चार हाथ जमीन देखकर चलना।

आदान निक्षेपण समिति—भूमि को जीवरहित देखकर सावधानी से किसी वस्तु को उठाना, रखना।

आलोकितपानभोजन—देख शोधकर भोजनपान ग्रहण करना, ये पाँच[४५] अहिंसाव्रत की भावनायें हैं।

सत्यव्रत की भावनायें

क्रोधप्रत्याख्यान—क्रोध का त्याग करना।

लोभप्रत्याख्यान—लोभ का त्याग करना।

भीरुत्वप्रत्याख्यान—भय का त्याग करना।

हास्यप्रत्याख्यान—हास्य का त्याग करना।

अनुवीचिभाषण—शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोषवचन बोलना।

ये पाँच[४६] सत्यव्रत की भावनायें हैं।

अचौर्यव्रत की भावनायें

शून्यागारवास—पर्वतों की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना।

विमोचितावास—राजा वगैरह के द्वारा छुड़वाए हुए दूसरे के स्थान में निवास करना।

परोपरोधाकरण—अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरे को नहीं रोकना।

भैक्ष्यशुद्धि—शास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि रखना।

सधर्माविसंवाद—सहधर्मी भाइयों से यह हमारा है, वह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना।

ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनायें हैं।[४७]

---

४५. तत्त्वार्थसूत्र ७।४।

४६. 'क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।' वही, ७।५

४७. 'शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च' तत्त्वार्थसूत्र ७।६

ब्रह्मचर्यव्रत की भावनायें

स्त्रीराग कथा श्रवणत्याग—स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग करना।

तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग—स्त्रियों के मनोहर अंगों के देखने का त्याग करना।

पूर्वरतानुस्मरण त्याग—अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग।

वृष्येष्टरस त्याग—कामवर्धक गरिष्ठ रसों का त्याग करना।

स्वशरीर संस्कार त्याग—अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना।

ये पाँच[४८] ब्रह्मचर्य व्रत की भावनायें हैं।

परिग्रह त्यागव्रत की भावनायें—स्पर्श आदि पाँच इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों में क्रम से रागद्वेष का त्याग करना। ये पाँच परिग्रहत्यागव्रत की भावनायें है।[४९]

नियम

गृहस्थ मधु, मद्य, मांस, जुआ, रात्रिभोजन और वेश्यासमागम से जो विरक्ति होती है उसे नियम कहते हैं।[५०] एक स्थान पर कहा गया है कि जो मनुष्य मधु मांस और मदिरा आदि का उपयोग नही करते है वे गृहस्थों के आभूषण पद पर स्थित है।[५१] पद्मचरित के चौदहवें पर्व मे रविषेण ने करीब ५० श्लोको मे रात्रि भोजन करने वालों की निन्दा तथा न करने वालों की प्रशंसा की है।[५२] जिनके नेत्र अन्धकार के पटल से आच्छादित है और बुद्धि पाप से लिप्त है ऐसे प्राणी रात के समय मक्खी, कीड़े तथा बाल आदि हानिकारक पदार्थ खा जाते हैं। जो रात्रि भोजन करता है वह डाकिनी प्रेत भूत आदि नीच प्राणियों के साथ भोजन करता है। जो रात्रि भोजन करता है वह कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों के साथ भोजन करता है। सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि जो रात मे भोजन करता है वह सब अपवित्र पदार्थ खाता है।[५३] सूर्य के अस्त हो जाने पर जो भोजन करते हैं उन्हें विद्वानों ने मनुष्यता से बंधे पशु कहा है। रात में अमृत

---

४८. 'स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च'—तत्त्वार्थसूत्र ७।७

४९. मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ७।८।

५०. पद्म० १४।२०२।

५१. वही, १४।२१६।

५२. वही, १४।२६७-३१८।

५३. वही, १४।२७१-२७३।

पीना भी उचित नहीं है, फिर पानी की तो बात ही क्या है ?[५४] जब नेत्र अपना व्यापार छोड़ देते हैं, जो पाप की प्रवृत्ति होने से अत्यन्त दारुण है, जो नहीं दिखने वाले सूक्ष्म जन्तुओं से सहित है तथा सूर्य का अभाव हो जाता है ऐसे समय भोजन नही करना चाहिए।[५५]

अनगार धर्म (मुनि धर्म)—जब सब प्रकार के आरम्भ का त्याग किया जाता है तभी मुनियों का धर्म प्राप्त होता है।[५५*] यह धर्म बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा से रहित है।[५६] अर्थात् अन्तर्मुखी है। आकाशरूपी वस्त्र धारण करने वाले अर्थात् नग्न दिगम्बर मुनियों के ही होता है।[५७] मुनि लोग यमी, वीतराग, निर्मुक्त शरीर, निरम्बर, योगी, ध्यानी, ज्ञानी, निस्पृह और बुध हैं अतः ये ही वन्दना करने योग्य हैं।[५८] चूँकि ये निर्वाण को सिद्ध करते हैं, इसलिए साधु कहलाते है, उत्तम आचार का स्वयं आचरण करते हैं तथा दूसरों को भी आचरण कराते हैं इसलिए आचार्य कहे जाते है। ये गृहत्यागी के गुणों से सहित हैं तथा शुद्ध भिक्षा से भोजन करते हैं, इसलिए भिक्षुक कहलाते हैं और उज्ज्वल कार्य करने वाले हैं अथवा कर्मों को नष्ट करने वाले तथा परम निर्दोष श्रम में वर्तमान है इसलिए श्रमण कहे जाते हैं।[५९]

मुनि तथा मुनिधर्म के गुण—पद्मचरित में मुनि तथा मुनिधर्म के बहुत से गुणों का निर्देश किया गया है जो निम्नलिखित हैं—

१. मुनियों का धर्म शूरवीरों का धर्म है।[६०]

२. मुनिधर्म शान्त दशा रूप है।[६१]

३. मुनिधर्म सिद्ध है।[६२]

४. मुनिधर्म साररूप है।[६३]

५. मुनिधर्म क्षुद्रजनों को भय उत्पन्न करने वाला है।[६४]

६. मुनि लोग अपने शरीर में राग नही करते हैं।[६५]

७. मुनिजन पाप उपार्जन करने वाले बालाग्रमात्र परिग्रह से रहित होते हैं।[६६]

---

५४. पद्म० १४।२७४।
५५. पद्म० १०६।३२, ३३।
५५* वही, ६।२९३।
५६. वही, ३३।१२१।
५७. वही,
५८. वही, १०९।८८।
५९. वही, १०९।८९-९०।
६०. वही, ३०।६३।
६१. वही, ३०।८३।
६२. वही,
६३. वही,
६४. वही,
६५. वही, १४।१७१।
६६. वही, १४।१७२।

८. मुनिजन अत्यन्त धीरवीर और सिंह के समान पराक्रमी होते हैं।[६७]

९. मुनि लोग केशों का लोंच करते हैं।[६८]

१०. मुनिजन आत्मा के अर्थ में तत्पर रहते हैं।[६९]

११. चारित्र का भार धारण करते हैं।[७०]

१२. मुनिजन उत्तम बुद्धि को धर्म में लगाकर मनुष्यों का जैसा शुभोदय से सम्पन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित, न माता करती है न पिता करता है, न मित्र करता है न सगा भाई ही करता है।[७१]

१३. मुनिजन चन्द्रमा के समान सौम्य और दिवाकर (सूर्य) के समान देदीप्यमान होते हैं।[७२]

१४. ये समुद्र के समान गम्भीर, सुमेरु के समान धीरवीर और भयभीत कछुए के समान समस्त इन्द्रियों के समूह को अत्यन्त गुप्त रखने वाले होते हैं।[७३]

१५. ये क्षमा धर्म को धारण करते है। कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) के उद्रेक से रहित और चौरासी लाख गुणों से सहित है।[७४]

१६. मुनि लोग सरल भावों को धारण करते हैं।[७५]

१७. गाँव में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक ही ठहरते हैं।[७६]

१८. पर्वत की गुफाओं, नदियों के तट अथवा बाग बगीचों में ही उनका निवास होता है।[७७]

१९. अन्याय करने वाले का कुछ भी प्रतिकार नहीं करते हैं।[७८] उपसर्ग (विघ्न-बाधा) को सहन करते हैं।[७९]

२०. यह भावना रखते हैं कि ज्ञानदर्शन ही मेरी आत्मा हैं। दूसरे पदार्थ के संयोग से होने वाले अन्य भाव पर पदार्थ है।[८०]

२१. मरण समय समाधि धारण करते है और सोचते हैं कि समाधिमरण के लिए न तृण ही संथारा (आसन) है, न उत्तम भूमि ही संथारा है किन्तु कलुषित बुद्धि से रहित आत्मा ही संथारा है।[८१]

---

६७. पद्म० १४।१७२।
६८. पद्म० ३७।१६१।
६९. वही, ३७।१६३।
७०. वही, ३७।१६४।
७१. वही, ६१।२१।
७२. वही, १४।१७४।
७३. वही, १४।१७५।
७४. वही, १४।१७६।
७५. वही, १०९।८५।
७६. वही, १०६।११७।
७७. वही, १०६।११८।
७८. वही, ४१।७०।
७९. वही, ४१।६५।
८०. वही, ८९।१०९।
८१. वही, ८९।११०।

२२. तत्त्वविचार में लीन रहते हैं।[८२]

२३. अधिकांश समय सद्ध्यान मे लीन रहते हैं।[८३]

२४. मुनिधर्म का सर्वोत्कृष्ट गुण यह है कि उस धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है।[८४]

मुनि के आवश्यक धर्म—पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्तियों का धारण करना,[८५] परिषहों को सहन करना,[८६] अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करना,[८७] सात भयों से रहित होना,[८८] आठ भेदों को नष्ट करना,[८९] चारित्र, धर्म और अनुप्रेक्षा से युक्त होना ये सब मुनि के आवश्यक धर्म हैं।[९०]

पांच महाव्रत—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँच पापों के पूरी तरह से (सर्वदेश) त्याग करने को पंच महाव्रत कहते हैं।[९१]

पांच समिति—ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं।[९२]

ईर्यासमिति—नेत्रगोचर जीवों के समूह से बचकर गमन करने वाले मुनि के प्रथम ईर्यासमिति होती है। यह व्रतों में शुद्धता उत्पन्न करती है।[९३]

भाषासमिति—सदा कर्कश और कठोर वचन छोडकर यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले यति का धर्म कार्यो में बोलना भाषा समिति है।[९४]

एषणासमिति—शरीर की स्थिरता के लिए पिण्ड शुद्धि पूर्वक मुनि का आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।[९५]

आदाननिक्षेपण समिति—देखकर योग्य वस्तु का रखना और उठाना आदान निक्षेपण समिति है।[९६]

उत्सर्ग समिति—इसे प्रतिष्ठापन समिति भी कहते हैं। प्रासुक (स्वच्छ—जीव-जन्तु से रहित) भूमि पर शरीर के भीतर का मल छोड़ना उत्सर्ग समिति है।[९७]

---

८२. पद्म० ८९।१०८।
८३. पद्म० ३९।३३।
८४. वही, ६।२९५।
८५. वही, २०।१४९।
८६. वही, १०६।११४।
८७. वही, ३७।१६५।
८८. वही, १०६।११३।
८९. वही, १०९।३०।
९०. वही, ९।२१९।
९१. वही, १४।३९।
९२. वही, १४।१०८।
९३. वही हरिवंशपुराण २।१२२।
९४. वही, २।१२३।
९५. हरिवंशपुराण २।१२४।
९६. वही, २।१२५।
९७. वही, २।१२६।

गुप्ति—वचन, मन और काय (शरीर) की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाना अथवा उसमे कोमलता का आ जाना गुप्ति है ।[९८] अज्ञानी जीव जिस कर्म को करोड़ों भवों में क्षीण कर पाता है उसे तीन गुप्तियों का धारक ज्ञानी मनुष्य एक मुहूर्त मे क्षय कर देता है ।[९९]

परिषह जय[१००]—संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों का क्षय करने के लिए जो सहन करने योग्य हों वे परिषह हैं ।[१०१] ये बाईस हैं ।[१०२]

अट्ठाईस मूलगुण[१०३]

मुनिराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान ये छः आवश्यक, स्नान त्याग, दन्तधावन त्याग, भूमिशयन, केशलोंच, नग्नता धारण करना, खड़े होकर आहार लेना, दिन में एक बार भोजन लेना, ये सात व्रत इस तरह अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करते है ।[१०४]

सात भय[१०५]

इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय वेदना भय, अरक्षा भय, अगुप्ति भय और आकस्मिक भय से सात भय हैं ।[१०५]* मुनि इन सात भयों का त्याग करते हैं ।

आठ मदों का त्याग[१०६]

ज्ञान, पूजा (प्रतिष्ठा), कुल, जाति, शक्ति, ऋद्धि (धन सम्पत्ति), तप और

---

९८. पद्म० १४।१०९ ।

९९. वही, १०५।२०५ ।

१००. वही, ८७।१२ ।

१०१. 'मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परिषहाः' । तत्त्वार्थसूत्र ९।८ ।

१०२. 'क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञा ज्ञानी दर्शनानि ।'
—तत्त्वार्थसूत्र ९।९ ।

१०३. पद्म० ३७।१६५ ।

१०४. आचार्य कुन्थुसागर : मुनिधर्मप्रदीप, पृ० ४ ।

१०५. पद्म० १०६।११३ ।

१०५.* पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र (हिन्दी टीका), पृ० १३२ ।

१०६. पद्म० ११९।३० ।

शरीर इन आठ पदार्थों का आश्रय करके जो गर्व करना है वह मद कहलाता है।[१०७] मुनि इन आठ मदों के त्यागी होते हैं।

चारित्र[१०८]

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात यह पाँच प्रकार का चारित्र है।[१०९]

सामायिक—भेदरहित सम्पूर्ण पापों को त्याग करने को सामायिक चारित्र कहते हैं।[११०]

छेदोपस्थापना—प्रमाद के वश से चारित्र में कोई दोष आ जाने पर प्रायश्चित्त के द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्र स्वीकार करना।[१११]

परिहारविशुद्धि—जिस चारित्र में जीवों की हिंसा का त्याग हो जाने से विशेष शुद्धि हो जाती है उसको परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।[११२]

सूक्ष्मसांपराय—अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय होने पर जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्म साम्पराय चारित्र कहते हैं।[११३]

यथाख्यात—सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम से आत्मा के शुद्धस्वरूप में स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं।[११४]

धर्म[११५]

उपवास, अवमौदर्य (भूख से कम भोजन करना), वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षा को जाते समय गली आदि का नियम लेना) रस परित्याग (दुग्धादि रसों का त्याग), विविक्त शय्यासन (एकान्त स्थान मे सोना बैठना), कायक्लेश (शरीर से मोह न रखकर योग आदि धारण करना) ये छह बाह्य तप है।[११६] प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य (शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा), स्वाध्याय,

---

१०७. 'ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्यमानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः'॥

—रत्नकरण्डश्रावकाचार, २५।

१०८. पद्म० ९।२१९।

१०९. 'सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति-चारित्रं।'
—तत्त्वार्थ० ९।१८।

११०. मोक्षशास्त्र, पृ० १८२ (पं० पन्नालाल जी)।

१११. वही, पृ० १८२।

११२. वही, पृ० १८२।

११३. वही, पृ० १८२।

११४. वही, पृ० १८३।

११५. पद्म० ९।२१९।

११६. वही, १४।११४, ११५।

व्युत्सर्ग (बाह्य और आन्तरिक परिग्रह का त्याग), और ध्यान[११७] ये छह आभ्यन्तर तप हैं। यह समस्त तप धर्म कहलाता है।

अनुप्रेक्षा

शरीरादि अनित्य है, कोई किसी का शरण नहीं है, शरीर अपवित्र है, शरीर रूपी पिंजड़े से आत्मा पृथक् है, यह अकेला ही सुख दुःख भोगता है। संसार के स्वरूप का चिन्तन करना, लोक की विचित्रता का विचार करना, आस्रवों (कर्मों का आना) के दुर्गुणों का ध्यान करना, सवर (आस्रव का निरोध) की महिमा का चिंतन, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा का उपाय सोचना, बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र की दुर्लभता का विचार करना और धर्म का माहात्म्य सोचना ये बारह अनुप्रेक्षायें (भावनायें) हैं।[११८] इन्हें हृदय में धारण करना चाहिए।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र इनकी एकता को मोक्षमार्ग (मोक्ष प्राप्ति का उपाय) कहते हैं।[११९]

सम्यग्दर्शन—तत्त्व का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।[१२०] एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना परमसुख है और मिथ्या कल्पित पदार्थों का ग्रहण करना अत्यधिक दुःख है।[१२१] इसका तात्पर्य यह है कि रविषेण सम्यग्दर्शन और सुख में अपेक्षया कोई भेद नहीं मानते थे।

सम्यग्ज्ञान—जो वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित और विपरीतता रहित जैसा का तैसा सन्देहरहित जानता है उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।[१२२]

सम्यक्चारित्र—सर्वज्ञ के शासन में कही हुई विधि के अनुसार सम्यग्ज्ञान पूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं।[१२२৪] जिसमें इन्द्रियों का वशीकरण और वचन तथा मन का नियंत्रण

---

११७. पद्म० १४।११६, ११७। ११८. पद्म० १४।२३७, २३९।

११९. वही, १०५।२१०। १२०. वही, १०५।२११।

१२१. वही, ४३।३०।

१२२. 'अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिन'॥

—रत्नकरण्डश्रावकाचार, ४२।

१२२৪. पद्म० १०५।२१५।

होता है,[१२३] न्यायपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले त्रस स्थावर जीवों की अहिंसा की जाती है,[१२४] मन और कानों को आनन्दित करने वाले स्नेहपूर्ण, मधुर सार्थक और कल्याणकारी वचन कहे जाते है,[१२५] अदत्त वस्तु के ग्रहण मे मन, वचन, काय से निवृत्ति की जाती है तथा न्यायपूर्ण दी हुई वस्तु ग्रहण की जाती है,[१२६] जहाँ देवों के भी पूज्य और महापुरुषों के भी कठिनता से धारण करने योग्य शुभ ब्रह्मचर्य धारण किया जाता है,[१२७] जिसमे, मोक्षमार्ग मे महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्यागपूर्वक परिग्रह का त्याग किया जाता है,[१२८] मुनियो के लिए परपीड़ा से रहित श्रद्धा आदि गुणों से सहित दान दिया जाता है।[१२९] विनय, नियमशील धारण किया जाता है। उसे सम्यक् चारित्र कहते हैं।[१३०]

सम्यग्दर्शन की महिमा—पद्मचरित में सम्यग्दर्शन की यत्र-तत्र बहुत अधिक प्रशसा तथा उसके विपरीत मिथ्यादर्शनादि (मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र) की निन्दा की गई है।[१३१] एक स्थान पर कहा है—जो उत्कृष्ट है, नित्य है, आनन्दरूप है, उत्तम है, मूढ मनुष्यों के लिए मानो रहस्यपूर्ण है, जगत्त्रय में प्रसिद्ध है, कर्मों को नष्ट करने वाला है, शुद्ध है, पवित्र है, परमार्थ को देने वाला है, जो पहले कभी प्राप्त नही हुआ है और यदि प्राप्त हुआभी है तो प्रमादी मनुष्य जिसकी सुरक्षा नही रख सके हैं, जो अभव्य जीवो के लिए अज्ञेय है ओर दीर्घ संसार को भय उत्पन्न करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन ही आत्मा का सबसे बडा कल्याण है।[१३२] लक्ष्मण ने वनमाला के आग्रह पर पुनः वापिस आने के लिए जब बार-बार शपथें खाईं और किसी प्रकार वनमाला को विश्वास नही हुआ तब अन्त में लक्ष्मण ने यह कहा—'यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी गति को प्राप्त होऊँ'।[१३३] सम्यग्दृष्टि मनुष्य सात आठ भवो में मनुष्य और देवपर्याय में परिभ्रमण से उत्पन्न हुए सुख को भोगता हुआ अन्त मे मुनि-

---

१२३. पद्म० १०५।११६। १२४. पद्म० १०५।२१७।
१२५. वही, १०५।२१८। १२६. वही, १०५।२१९।
१२७. वही, १०५।२२०। १२८. वही, १०५।२२१।
१२९. वही, १०५।२२२। १३०. वही, १०५।२२३।
१३१. वही, ४।४४, १०५।२४२, २४०, २४३, ९९।४३, ४४, १४।३३४-३३६, १४।२२९, १४।२०६, ६।३३४, २।१८७, ५९।२९, २६।१०३, ११४।४३-४४, ८०।१२९, १३०, १०५।२२५-२२७।
१३२. वही, १२३।४३-४५। १३३. वही, ३८।३८।

दीक्षा धारण कर मुक्त हो जाता है।[134]

सम्यग्दर्शन के भेद—सम्यग्दर्शन दो प्रकार से होता है।

१. स्वभाव से २. परोपदेश से। इसी अपेक्षा से इसके निसर्गज और अधिगमज दो भेद किये हैं।[135]

सम्यग्दर्शन के पाँच अतीचार—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना सम्यग्दर्शन के पाँच अतीचार (दोष) हैं।[136]

शंका—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए सूक्ष्म पदार्थों में सन्देह करना।

कांक्षा—सांसारिक सुखों की इच्छा करना।

विचिकित्सा—दुःखी, दरिद्री अथवा रत्नत्रय से पवित्र पर बाह्य में मलिन मुनियों के शरीर को देखकर ग्लानि करना।

अन्यदृष्टि प्रशंसा—मिथ्यादृष्टियों की प्रशंसा करना।

पाँचवाँ अतीचार रविषेण ने प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना कहा है जबकि तत्त्वार्थसूत्र में अन्यदृष्टिसंस्तव (मिथ्यादृष्टियों की स्तुति करना) कहा है।[137]

जिनपूजा

पद्मचरित में जिनपूजा के माहात्म्य और उसके प्रकारों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिन्तन करता है वह बेला (दो उपवास) का, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेला (तीन उपवास) का, जो जाने का आरम्भ करता है वह चोला (चार उपवास) का, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवास का, जो मन्दिर के दर्शन करता है वह मासोपवास का, जो मन्दिर के आँगन में प्रवेश करता है, वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास के फल को प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर

१३४. पद्म० १०५।१४४।

१३५. तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ तत्त्वार्थसूत्र १।३।

१३६. पद्म० १०५।२१३।

१३७. तत्त्वार्थसूत्र ७।२३, पद्म० १०५।२१३।

उत्तम पुण्य नहीं है।[१३८] जो उत्तम वस्त्र का धारक है, जिसके शरीर से सुगन्धि निकल रही है, जिसका दर्शन सबको प्रिय लगता है, नगर की स्त्रियाँ जिसकी प्रशंसा कर रही हैं, जो पृथ्वी को देखता हुआ चलता है, जिसने सब विकार छोड़ दिए हैं, जो उत्तम भावना से युक्त है और अच्छे कार्यों के करने में तत्पर है, ऐसा होता हुआ जो जिनेन्द्रदेव की वन्दना के लिए जाता है उसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है।[१३९] तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।[१४०] इत्यादि।[१४०*]

जिनेन्द्र पूजा की विधियाँ—पद्मचरित में जिनेन्द्र पूजा की निम्नलिखित विधियाँ उपलब्ध होती हैं—

१. सुगन्धित जल से जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करना।[१४१]
२. दूध की धारा से जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करना।[१४२]
३. दही के कलशों से जिनेन्द्र का अभिषेक करना।[१४३]
४. घी से जिनदेव का अभिषेक करना।[१४४]
५. भक्तिपूर्वक जिनमन्दिर में रङ्गावलि आदि का उपहार चढाना।[१४५]
६. जिनमन्दिर में गीत, नृत्य, वादित्रों से महोत्सव करना।[१४६]
७. तीनों कालों में जिनेन्द्र देव की वन्दना करना।[१४७]
८ परिग्रह की सीमा नियत कर जिनेन्द्र भगवान् की अर्चा करना।[१४८]
९. रत्न तथा पुष्पों से पूजा करना।[१४९]
१०. भावरूपी फूलों से जिनेन्द्र पूजा करना।[१५०]
११. चन्दन तथा कालागुरु आदि से उत्पन्न धूप चढाना।[१५१]
१२. शुभभाव से दीपदान करना।[१५२]

---

१३८. पद्म० ३२।१७८-१८२।
१३९. पद्म० १४।२१९, २२०।
१४०. वही, ३२।१७४।
१४०*. वही, १४।२०९, २१०, ३४४-३४६, २१२-२१४।
१४१. वही, ३२।१६५।
१४२ वही, ३२।१६६।
१४३. वही, ३२।१६७।
१४४. वही, ३२।१६८।
१४५. वही, ३२।१७१।
१४६. वही, ३२।१७१।
१४७. वही, ३२।१५८।
१४८. वही, ३२।१५३।
१४९. वही, ४५।१०१, ३२।१५९।
१५०. वही, ३२।१६०।
१५१. वही, ३२।१६१।
१५२. वही, ३२।१६२।

१३. छत्र, चमर, फन्नूस, पताका, दर्पण आदि से जिनमन्दिर सजाना।[१५३]

१४. गन्ध से जिनेन्द्र भगवान् का लेपन करना।[१५४]

१५. तोरण, पताका, घंटा, लम्बूष, गोले, अर्धचन्द्र, चँदोवा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणों के द्वारा पूजा करना।[१५५]

१६. नैवेद्य के उपहारों और उत्तम वर्ण के विलेपनों से पूजा करना।[१५६]

दान

दान चार प्रकार के होते हैं—१. आहारदान,[१५७] अभयदान,[१५८] औषधि दान[१५९] तथा ज्ञानदान।[१६०]

पात्र और उसके गुण—पात्र की विशेषता से अनेकरूपता को प्राप्त हुए जीव दान के प्रभाव से भोगभूमियों में भोगों को प्राप्त करते है।[१६१] जो प्राणिहिंसा से विरत, परिग्रह से रहित और रागद्वेष से शून्य हैं उन्हे उत्तम पात्र कहते है। जो तप से रहित होकर भी सम्यग्दर्शन से शुद्ध है ऐसा पात्र प्रशंसनीय है, क्योंकि उसके मिथ्यादृष्टि दाता के शरीर की शुद्धि होती है।[१६२] जो आपत्तियों से रक्षा करे वह पात्र कहलाता है। 'पातीति पात्रम्' इस प्रकार पात्र शब्द का निरुक्त्यर्थ है। चूँकि मुनि सम्यग्दर्शन की सामर्थ्य से लोगों की रक्षा करते है अतः वे पात्र हैं। जो निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से सहित होता है वह उत्तम पात्र कहलाता है। जो मान, अपमान, सुख-दुःख और तृण कांचन मे समान दृष्टि रखता है ऐसा साधु पात्र कहलाता है।[१६३] जो सब प्रकार के परिग्रह से रहित है, महातपश्चरण में लीन हैं और तत्त्वों के ध्यान मे सदा तत्पर है ऐसे श्रमण मुनि उत्तम पात्र कहलाते हैं।[१६४]

प्रशंसनीय दान—जिस प्रकार उत्तम क्षेत्र में बोया हुआ बीज अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है उसी प्रकार उत्तम पात्र के लिए शुद्ध हृदय से दिया हुआ दान अत्यधिक सम्पदा प्रदान करता है।[१६५] जिस प्रकार एक ही तालाब में गाय ने

---

१५३. पद्म० ३२।१६३।
१५४. पद्म० ३२।१६४।
१५५. वही, ९५।३२, ३३।
१५६. वही, ६९।५।
१५७. वही, ३२।१५४।
१५८. वही, ३२।१५५।
१५९. वही, १४।७६।
१६०. वही, ३२।१५६।
१६१. वही, १४।५२।
१६२. वही, १४।५३, ५४।
१६३. वही, १४।५५-५७।
१६४. वही, १४।५८।
१६५. वही, १४।६०।

पानी पिया और साँप ने भी । गाय के द्वारा पिया पानी दूध हो जाता है और साँप के द्वारा पिया पानी विष हो जाता है उसी प्रकार एक ही गृहस्थ से उत्तम पात्र ने दान लिया और नीच ने भी । जो दान उत्तम पात्र को प्राप्त होता है उसका फल उत्तम होता है और जो नीच पात्र को प्राप्त होता है उसका फल नीचा होता है ।[१६६] कोई पात्र मिथ्यादर्शन से युक्त होने पर भी सम्यग्दर्शन की भावना से युक्त होते हैं ऐसे पात्रों के लिए भाव से जो दान दिया जाता है उसका फल शुभ-अशुभ अर्थात् मिश्रित प्रकार का होता है ।[१६७] दीन तथा अन्धे आदि मनुष्यों के लिए करुणादान कहा गया है और उससे यद्यपि फल की प्राप्ति होती है पर वह फल उत्तम फल नही कहा जाता ।[१६८] जो दान निन्दित बताया है वह भी पात्र के भेद से प्रशंसनीय हो जाता है । जिस प्रकार शुक्ति के द्वारा पिया पानी मोती हो जाता है ।[१६९] भूमि का दान यद्यपि निन्दित है फिर भी यदि जिन-प्रतिमा आदि को उद्देश्य कर दिया जाता है तो वह दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाले भोग प्रदान करता है ।[१७०] एक स्थान पर कहा गया है कि सामर्थ्य के अनुसार भक्तिपूर्वक सम्यग्दृष्टि लोगों के लिए जो दान देता है, उसी का एक दान है बाकी तो चोरों को लुटाना है ।[१७१]

निन्दनीय दान—जिस प्रकार ऊसर जमीन मे बीज बोया जाय तो उससे कुछ भी उत्पन्न नही होता उसी प्रकार मिथ्यादर्शन से सहित पापी पात्र के लिए दान दिया जाय तो उससे कुछ भी प्राप्त नही होता ।[१७२] जो रागद्वेष आदि दोषों से युक्त है वह पात्र नही है और न वह इच्छित फल देता है ।[१७३] लोभ के वशीभूत दुष्ट अभिप्राय से युक्त तथा हाथी, घोड़ा, गाय आदि जीवो का दान भी बतलाया है पर तत्त्व के जानकार लोगों ने उसकी निन्दा की है ।[१७४] उसका कारण यह है कि जीव दान में जो जीव दिया जाता है उसे बोझा ढोना पड़ता है । नुकुली, अरी आदि से उसके शरीर को आँका जाता है तथा लाठी आदि से उसे पीटा जाता है इन कारणों से उसे महा दुःख होता है और उसके निमित्त से अन्य जीवों को बहुत दुःख उठाना पड़ता है ।[१७५] यहाँ पर भूमिदान की भी निन्दा की गई है क्योंकि उससे भूमि मे रहने वाले जीवों को पीड़ा होती है ।[१७६]

---

१६६. पद्म० १४।६४ ।
१६७. पद्म० १४।६५ ।
१६८. वही, १४।६६ ।
१६९. वही, १४।७७ ।
१७०. वही, १४।७८ ।
१७१. वही, १४।९५ ।
१७२. वही, १४।६१ ।
१७३. वही, १४।६३ ।
१७४. वही, १४।७३ ।
१७५. वही, १४।७४ ।
१७६. वही, १४।७५ ।

दान का फल—दान से भोग प्राप्ति,[१७७] उपद्रव से रहित होना,[१७८] विशाल सुखों का पात्र होना,[१७९] उत्तम गति,[१८०] विशाल सुख,[१८१] आदि सुफल प्राप्त होते हैं।

तीर्थंकरत्व की प्राप्ति—जीवों की नाना दशाओं का निरूपण करते हुए रविषेण ने कहा है कि कितने ही धैर्यवान मनुष्य षोडश कारण भावनाओं का चिन्तन कर तीन लोक मे क्षोभ उत्पन्न करने वाले तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं।[१८२] षोडश कारण भावनायें ये है—

१. दर्शनविशुद्धि—जिनोपदिष्ट निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में रुचि दर्शन विशुद्धि है।[१८३]

२. विनयसम्पन्नता—सम्यग्ज्ञान आदि मोक्ष के साधनों मे तथा ज्ञान के निमित्त गुरु आदि में योग्य रीति से सत्कार आदर आदि करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है।[१८४]

३. शीलव्रतेष्वनतिचार—अहिंसा आदि व्रत तथा उनके परिपालन के लिए क्रोधवर्जन आदि शीलों में काय, वचन और मन की निर्दोष प्रवृत्ति शीलव्रतेष्वनतिचार है।[१८५]

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग—जीवादि पदार्थों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानने वाले मति आदि पांच ज्ञान हैं। अज्ञाननिवृत्ति इनका साक्षात्फल है तथा हित प्राप्ति, अहितपरिहार और उपेक्षा व्यवहित फल है। इस ज्ञान की भावना में सदा तत्पर रहना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है।[१८६]

५. संवेग—शरीर मानस आदि अनेक प्रकार के प्रियवियोग, अप्रियसंयोग, इष्ट का अलाभ आदि रूप सांसारिक दुःखों से नित्यभीरुता संवेग है।[१८७]

६. त्याग—पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु देना त्याग है।[१८८]

७. तप—अपनी शक्ति को नही छिपाकर मार्गाविरोधी कायक्लेश आदि करना तप है।[१८९]

८. साधुसमाधि—जैसे भण्डार में आग लगने पर वह प्रयत्नपूर्वक शान्त

---

१७७. पद्म० ३२।१५४, १४।९४-९५। १७८. पद्म० ३२।१५५।
१७९. वही, ३२।१५६। १८०. वही, १४।५२।
१८१. वही, ३२।१५६। १८२. वही, २।१९२।
१८३. तत्त्वार्थवार्तिक ६।२४ की व्याख्या वार्तिक नं० १।
१८४. वही, वार्तिक, २। १८५. वही, वार्तिक, ३।
१८६. वही, वार्तिक, ४। १८७. वही, वार्तिक, ५।
१८८. वही, वार्तिक, ६। १८९. वही, वार्तिक, ७।

की जाती है उसी तरह अनेक व्रत शीलों से समृद्ध मुनिगण के तप आदि में यदि कोई विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसका निवारण करना साधु समाधि है।[१९०]

९. वैयावृत्य—गुणवान् साधुओं पर आये हुए कष्ट रोग आदि को निर्दोष विधि से हटा देना, उनकी सेवा आदि करना बहु उपकारी वैयावृत्य है।[१९१]

१०, ११, १२, १३, अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्ति—केवलज्ञान श्रुतज्ञान आदि दिव्यनेत्रधारी परहितप्रवण और स्वसमयविस्तारनिश्चयज्ञ अर्हन्त आचार्य और बहुश्रुतों में तथा श्रुतदेवता के प्रसाद से कठिनता से प्राप्त होने वाले मोक्षमहल की सीढ़ी रूप प्रवचन मे भावविशुद्धिपूर्वक अनुराग रखना अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचन भक्ति है।[१९२]

१४. आवश्यकापरिहाणि—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक क्रियाओं को यथाकाल बिना नागा किए स्वाभाविक क्रम से करते रहना आवश्यकापरिहाणि है। सर्व सावद्य योगो का त्याग करना, चित्त को एकाग्ररूप से ज्ञान मे लगाना सामायिक है। तीर्थङ्करो के गुणो का स्तवन चतुर्विंशतिस्तव है। मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक खड्गासन या पद्मासन से चार बार शिरोन्नति और आवर्त पूर्वक वन्दना होती है। कृत दोषों की निवृत्ति प्रतिक्रमण है। भविष्य मे दोष न होने देने के लिए सन्नद्ध होना प्रत्याख्यान है। अमुक समय तक शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।[१९३]

१५. मार्गप्रभावना—महोपवास आदि सम्यक् तपों से तथा सूर्य प्रभा के समान जिनपूजा से सद्धर्म का प्रकाश करना मार्गप्रभावना है।[१९४]

१६. प्रवचन वत्सलत्व—जैसे गाय अपने बछडे से अकृत्रिम स्नेह रखती है उसी तरह धार्मिक जन को देखकर स्नेह से ओतप्रोत हो जाना प्रवचन वत्सलत्व है।[१९५]

तीर्थंकरत्व की प्राप्ति से युक्त जीव बहुत अधिक प्रभावशाली हो जाता है। पद्मचरित मे कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव के आसनस्थ होने पर देव तिर्यंच और मनुष्यों से सेवित एक योजन की पृथ्वी स्वर्णमयी हो जाती है। भगवान् के आठ प्रातिहार्य और चौंतीस महातिशय प्रकट होते है तथा उनका रूप हजार सूर्यों के समान दैदीप्यमान एवं नेत्रों को सुख देने वाला होता है।[१९६] सुरेन्द्र असुरेन्द्र,

---

१९०. तत्त्वार्थवार्तिक ६।२४ की व्याख्या वार्तिक नं० ८।

१९१. वही, वार्तिक, ९।

१९२. वही, वार्तिक, १०।

१९३. वही, वार्तिक, ११।

१९४. वही, वार्तिक, १२।

१९५. वही, वार्तिक, १३।

१९६. पद्म० १४।२६१, २६२।

अमरेन्द्र तथा चक्रवर्ती उनकी कीर्ति का गान करते हैं। वे शुद्धशील के धारक देदीप्यमान, गर्वरहित और समस्त संसार रूपी सघन ज्ञेय को गोष्पद के समान तुच्छ करने वाले तेज से सहित, क्लेश रूपी कठिन बन्धन को तोड़ने वाले, मोक्ष रूपी स्वार्थ से सहित अनुपम निर्विघ्न सुख स्वरूप वाले होते हैं।[१९७] उनके जन्म लेते ही ससार मे सर्वत्र ऐसी शान्ति छा जाती है कि सब रोगों का नाश करती है तथा दीप्ति को बढ़ाती है। उत्तम विभूति स युक्त, हर्ष से भरे हुए इन्द्र, जिनका कि आसन कम्पायमान होता है, आकर मेरु के शिखर पर भगवान् का अभिषेक करते हैं। राज्य अवस्था मे वे बाह्य चक्र के द्वारा बाह्य शत्रुओं को तथा मुनि होने पर ध्यान रूपी चक्र के द्वारा अन्तरंग शत्रु को जीतते हैं।[१९८]

आठ प्रातिहार्य—तीर्थङ्कर भगवान् के आठ प्रातिहार्य, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, ये हैं[१९९]

१. अशोकवृक्ष का होना जिसके देखने से शोक नष्ट हो जाय।
२. रत्नमय सिंहासन।
३. भगवान् के सिर पर तीन छत्र फिरना।
४. भगवान् के पीछे भामण्डल का होना।
५ भगवान् के मुख से निरक्षरी दिव्यध्वनि का होना।
६. देवों द्वारा पुष्पवृष्टि होना।
७ यक्ष देवों द्वारा चौंसठ चँवरों का ढोला जाना।
८. दुन्दुभि बाजों का बजना।

चौंतीस अतिशय—आठ प्रातिहार्यों के अतिरिक्त ३४ अतिशयों के होने का भी उल्लेख ऊपर आया है। चौंतीस अतिशय निम्नलिखित है। इनमे से १० अतिशय जन्म से होते हैं, १० केवलज्ञान होने पर होते है और १४ देवकृत होते हैं।

जन्म के १० अतिशय[२००]—१. अत्यन्त सुन्दर शरीर, २. अतिसुगन्धमय शरीर, ३. पसेवरहित शरीर, ४. मल मूत्र रहित शरीर, ५. हित मित प्रिय वचन बोलना, ६. अतुल्य बल, ७. दुग्ध के समान सफेद रुधिर, ८. शरीर में १००८ लक्षण, ९. समचतुस्रसंस्थान शरीर अर्थात् शरीर के अंगों की बनावट स्थिति चारों तरफ से ठीक होना, १०. वज्रवृषभनाराचसहनन।

केवलज्ञान के १० अतिशय[२०१]—१. एक सौ योजन तक सुभिक्ष अर्थात्

---

१९७. पद्म० ८०।१३१-१३३।   १९८. पद्म० ८०।१४-१६।
१९९. बाबू ज्ञानचन्द्र जैन (लाहौर) : जैन बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ० ६८।
२००. वही, पृ० ६५, ६६।   २०१. वही, पृ० ६६, ६८।

जहाँ केवली भगवान् रहते हैं उससे चारों ओर सौ-सौ योजन तक सुभिक्ष होता है। २. आकाश में गमन, ३. चार मुखों का दिखाई पड़ना। ४. अदया का अभाव, ५. उपसर्ग का अभाव, ६. कवल (ग्रास) अहार का न होना, ७. समस्त विद्याओं का स्वामीपना, ८. केशों और नाखूनों का न बढ़ना, ९. नेत्रों की पलक नहीं टिमकाना, १०. छाया रहित शरीर।

देवकृत १४ अतिशय[२०२]—

१. भगवान् की अर्द्ध मागधी भाषा का होना।
२. समस्त जीवों में परस्पर मित्रता होना।
३. दिशा का निर्मल होना।
४. आकाश का निर्मल होना।
५. सब ऋतु के फल-फूल धान्यादि का एक ही समय फलना।
६. एक योजन तक की पृथ्वी का दर्पणवत निर्मल होना।
७. चलते समय भगवान् के चरण कमल के तले स्वर्ण कमल का होना।
८. आकाश मे जय-जय ध्वनि का होना।
९. मन्द सुगन्ध पवन का चलना।
१०. सुगन्धमय जल की वृष्टि होना।
११. पवनकुमार देवो द्वारा भूमि का कण्टक रहित करना।
१२. समस्त जीवों का आनन्दमय होना।
१३. भगवान् के आगे धर्मचक्र का चलना।
१४. छत्र, चमर, ध्वजा, घण्टादि अष्ट मंगल द्रव्यों का साथ रहना।

द्रव्य निरूपण

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल के भेद मे द्रव्य छह प्रकार[२०३] के है।

धर्म—गमन में परिणत पुद्गल और जीवों को गमन मे सहकारी धर्मद्रव्य हैं—जैसे मछलियां के गमन मे जल सहकारी है। गमन न करते हुए पुद्गल व जीवों को धर्मद्रव्य गमन नही कराता।[२०४]

अधर्म—ठहरे हुए पुद्गल और जीवों को ठहरने में सहकारी कारण अधर्म-

---

२०२. बाबू ज्ञानचन्द जैन : बाल गुटका, प्रथम भाग, पृ० ६७।

२०३. पद्म० १०५।१४२।

२०४. गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमण सहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥—द्रव्यसंग्रह।

द्रव्य है। जैसे—छाया यात्रियों को ठहरने में सहकारी है। गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलों को अधर्म द्रव्य नहीं ठहराता।[२०५]

आकाश—जो जीव आदि द्रव्यों को अवकाश देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।[२०६] लोकाकाश और अलोकाकाश इन दो भेदों से आकाश दो प्रकार का है। धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव जितने आकाश में हैं वह लोकाकाश है और आकाश से बाहर अलोकाकाश है।[२०७]

लोक रचना—यह लोक अलोकाकाश के मध्य में स्थित दो मृदंगों के समान है, नीचे बीच मे तथा ऊपर की ओर स्थित है। इस तरह तीन प्रकार से स्थित होने के कारण इस लोक को त्रिलोक अथवा त्रिविध कहते हैं।

अधोलोक—मेरु पर्वत के नीचे सात भूमियाँ है। उनमें पहली भूमि रत्न-प्रभा है, जिसके अब्बहुल भाग को छोड़कर (नीचे के भाग को छोड़कर) ऊपर के दो भागो मे भवनवासी तथा व्यन्तरदेव रहते हैं। उस रत्नप्रभा के नीचे महभय उत्पन्न करने वाली शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमः प्रभा और महातमः प्रभा नाम की छह भूमियाँ हैं जो अत्यन्त तीव्र दुःख देने वाली हैं तथा निरन्तर घोर अन्धकार से व्याप्त रहती हैं।[२०८] इन नारकियों का तथा उनके दुःख का वर्णन पद्मचरित मे अति विस्तार से किया गया है।

मध्यलोक—मध्यलोक में जम्बूद्वीप को आदि लेकर शुभ नाम वाले असंख्यात द्वीप और लवण समुद्र को आदि लेकर असंख्यात समुद्र कहे गए हैं।[२१०] ये द्वीप समुद्र पूर्व के द्वीप समुद्र से दूने विस्तार वाले है, पूर्व-पूर्व को घेरे हुए हैं

---

२०५ ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाणठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं अच्छंता णेव सो धरई।। द्रव्यसंग्रह। गाथा १८

२०६. अवगासदाण जोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्ह लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं।। द्रव्यसंग्रह गाथा, १९।

२०७. धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्ति।। द्रव्यसंग्रह गाथा, २०।

२०८. पद्म० १०९।११२, २६।७७-७६।

२०९. वही, २६।७८-९४, १४।२७-३३, ६।३०८-३१०, १०५।११३-१३८।

२१०. जम्बूद्वीप मुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागरोः। प्रकीर्तिताः शुभानाम संख्यात परिवर्जिता : पद्म० १०५।१५४।
जम्बूद्वीप लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप समुद्राः।। तत्त्वार्थसूत्र ३।७।

तथा वलय के आकार हैं। सबके बीच में जम्बूद्वीप है।[२११] जम्बूद्वीप मेरुपर्वत रूपी नाभि से सहित है, गोलाकार है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है, इसकी परिधि तिगुनी से कुछ अधिक कही गई है।[२१२]

उस जम्बूद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये छह कुलाचल हैं। ये सभी समुद्र के जल से मिले हैं तथा इन्हीं के द्वारा जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्रों का विभाग हुआ है।[२१३] यह भरतक्षेत्र है इसके आगे हैमवत, इसके आगे हरि, इसके आगे विदेह, इसके आगे रम्यक, इसके आगे हैरण्यवत और इसके आगे अहिरावत ये सात क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं। इसी जम्बूद्वीप में गंगा आदि नदियाँ हैं। घातकीखंड तथा पुष्करार्ध में जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी रचना है।[२१४] भरत और ऐरावत ये दोनों क्षेत्र वृद्धि और हानि से सहित हैं। अन्य क्षेत्रों की भूमियाँ व्यवस्थित हैं अर्थात् उनमें कालचक्र

२११. पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः।
—वलयाकृत योर्मध्ये जम्बूद्वीप : प्रकीर्तितः पद्म० १०५।१५५।
द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥ तत्त्वार्थसूत्र ३।८।

२१२. मेरुनाभिरसौवृत्तो लक्षयोजनमानमृत्। त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम्। —पद्म० १०५।१५६।
तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्त्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः।
तत्त्वार्थसूत्र ३।९।

२१३. पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः।
हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसंगताः।
वास्यान्यैभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च। —पद्म० १०५।१५७-१५८।
'तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधर पर्वताः' तत्त्वार्थसूत्र ३।११।

२१४. भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः।
विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः।
प्रोक्तं द्विधातिकीखण्डे पुष्करार्द्धं च पूर्वकम्, पद्म० १०५।१५९-१६०।
'भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावत वर्षाः क्षेत्राणि॥
—तत्त्वार्थसूत्र ३।१०
गङ्गासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्ता
'सुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः' तत्त्वार्थसूत्र, ३।२०
द्विर्धातकीखण्डे ३।२३।

का परिवर्तन नहीं होता।[२१४]* मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत के इसी ओर रहते हैं, इनके आर्य और म्लेच्छ की अपेक्षा मूल में दो भेद हैं तथा इनके उत्तर भेद असंख्यात है। देवकुरु, उत्तरकुरु रहित विदेहक्षेत्र तथा भरत और ऐरावत इन तीन क्षेत्रों में कर्मभूमि है और देवकुरु, उत्तरकुरु तथा अन्य क्षेत्र भोगभूमि के हैं। मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य की और जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त की है। तिर्यंचों की उत्कृष्ट तथा जघन्य स्थिति मनुष्यों के समान तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त की है।[२१५]

ऊर्ध्वलोक—ज्योतिषी, भवनवासी, व्यन्तर और कल्पवासी के भेद से देव चार प्रकार के होते हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी इनमें जन्म लेते हैं।[२१६] व्यन्तर देवों के किन्नर आदि आठ भेद हैं।[२१७] व्यन्तर और ज्योतिषी देवों का निवास ऊपर मध्यलाक मे है। इनमें ज्योतिषी देवों का चक्र देदीप्यमान कान्ति का धारक है, मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देता हुआ निरन्तर चलता रहता है तथा सूर्य

२१४.* भरतैरावतक्षेत्रे वृद्धिहानिसमन्विते। शेषास्तु भूमयः प्रोक्तास्तुल्य-कालव्यवस्थिताः,—पद्म० ३।४७ 'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समया-भ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।'—तत्त्वार्थसूत्र ३।२७।

२१५. विदेहकर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः —पद्म० ५।१६२। आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतो पराः। विज्ञेया-स्तत्प्रभेदाश्च संख्यातपरिवर्जिताः॥—पद्म० १०५।१६१।
त्रिपल्यान्तर्मुहूर्तं तु स्थिती नृणां परावरे। मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमु-पेयुषाम्,—पद्म० ५।१६३।
'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः।'—तत्त्वार्थसूत्र ३।३५।
आर्या म्लेच्छाश्च ३।३६ त० सूत्र।
भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुरूत्तरकुरुभ्यः—त० सूत्र ३।३७, 'नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते' ३।३८, त० सूत्र। तिर्यग्योनिजानां च ३।३९ त० सूत्र।

२१६. ज्योतिषा भावना कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः।
देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे॥
—पद्म० ३।८२, देवाश्चतुर्णिकायाः ४।१, तत्त्वार्थसूत्र।

२१७. 'व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः'।
—तत्त्वार्थसूत्र ४।११।
'अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः'॥ —पद्म० १०५।१६४।

और चन्द्रमा उसके राजा हैं।[२१८] ज्योतिश्चक्र के ऊपर संख्यात हजार योजन व्यतीत कर कल्पवासी देवों का महालोक शुरू होता है यही ऊर्ध्वलोक कहलाता है।[२१९] ऊर्ध्वलोक में सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत और आरण अच्युत ये आठ युगलों में १६ स्वर्ग हैं। उनके ऊपर ग्रैवेयक कहे गये हैं जिनमें अहमिन्द्ररूप से उत्कृष्ट देव स्थित हैं। (नव ग्रैवयक के आगे नव अनुदिश हैं और उनके ऊपर) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर विमान हैं।[२२०]

सिद्धक्षेत्र—इस लोकत्रय के ऊपर उत्तम देदीप्यमान तथा महाआश्चर्य से युक्त सिद्धक्षेत्र है जो कर्म बन्धन से रहित जीवों का स्थान है। ऊपर ईषत्प्राग्भार नाम की वह शुभ पृथ्वी है जो ऊपर की ओर किए हुए धवलछत्र के आकार है, शुभरूप है, जिसके ऊपर पुनर्भव से रहित, महासुख सम्पन्न तथा स्वात्मशक्ति से युक्त सिद्ध परमेष्ठी विराजमान है।[२२१]

---

२१८. पद्म० १०५।१६५। मेरुप्रदक्षिणाः नित्यगतयो नृलोके, ४।१३ तत्त्वार्थसूत्र।

२१९. पद्म० १०५।१६६, वैमानिकाः ॥ तत्त्वार्थसूत्र ४।१६।

२२०. सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः।
ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेंद्रसंज्ञकः ॥
ब्रह्मा ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्त्तितः।
कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः।
प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणाच्युतो ॥
नवग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्त्तिताः।
अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः ॥
विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः।
सर्वार्थसिद्धिनामा च पंचैतेऽनुत्तराः स्मृताः ॥
—पद्म० १०५।१६७-१७१।

उपर्युपरि—तत्त्वार्थसूत्र ४।१८।
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च—तत्त्वार्थसूत्र ४।१९।

२२१. पद्म० १०५।१७३-१७४।

काल—जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों के ढेर समान परस्पर भिन्न होकर एक-एक स्थित हैं वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं।[२२१*] इन्द्रियों के द्वारा उसका प्रत्यक्ष नही हो सकता फिर भी महात्माओं ने बुद्धि में दृष्टान्त की कल्पना कर उसका निरूपण किया है। कल्पना करो कि एक योजन प्रमाण आकाश सब ओर से दीवालों से वेष्टित है तथा तत्काल उत्पन्न हुए भेड के बालों के अग्रभाग से भरा हुआ है। यह गर्त किसने खोदा किसने भरा एक-एक रोम-खण्ड निकाला जाय, जितने समय में खाली हो जाय उतना समय एक पल्य कहलाता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है और दश कोडाकोड़ी सागरों की एक अवसर्पिणी होती है। उतने ही समय की उत्सर्पिणी भी होती है। जिस प्रकार शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष निरन्तर बदलते रहते हैं उसी प्रकार काल द्रव्य के स्वभाव से अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल निरन्तर बदलते रहते है। इन दोनों मे से प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं। संसर्ग में आने वाली वस्तुओं के वीर्य आदि में भेद होने से इन छह-छह भेदों की विशेषता सिद्ध होती है। अवसर्पिणी का पहला भेद सुषमा-सुषमा काल कहलाता है। इसका चार कोडाकोड़ी सागर प्रमाण है। तीसरा भेद सुषमा-दुषमा कहा जाता है। इसका दो कोडाकोडी सागर प्रमाण है। चौथा भेद दुःखमा सुखमा कहलाता है। इसका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोडी सागर प्रमाण है। पाँचवा भेद दुःखमा और छठवाँ भेद दुःखमा-दुःखमा कहलाता है। इसका प्रत्येक का प्रमाण इक्कीस हजार वर्ष है।[२२२]

जीव—ज्ञेय और दृश्य स्वभावों में जीव का जो अपनी शक्ति से परिणमन होता है वह उपयोग कहलाता है, उपयोग ही जीव का स्वरूप है।[२२३] आत्मा के चैतन्यगुण से सम्बन्ध रखने वाले परिणाम को उपयोग कहते है। उपयोग जीव का तद्भूत लक्षण[२२४] है। उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का है।[२२५] यह जीवराशि अनन्त है। इसका क्षय नही होता है। जिस प्रकार बालू के कणो का अन्त नही है, आकाश का अन्त नही है और चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों का अन्त नही है उसी प्रकार जीवराशि का भी अन्त नही है।[२२६]

२२१*. लोयायासपदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाण रासी इवते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ द्रव्यसंग्रह-गाथा २२।

२२२. पद्म० २०।७३-८२। २२३. वही, १०५।१४७।

२२४. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ३४।

२२५. पद्म० १०५।१४७। २२६. वही, ३१।१६।

ज्ञानोपयोग—ज्ञानोपयोग के मति श्रुत अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं।[२२७]

दर्शनोपयोग—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन, केवलदर्शन ये चार भेद दर्शनोपयोग के हैं।

जीव के भेद—जीव के संसारी और मुक्त की अपेक्षा दो भेद हैं।[२२८] संसारी जीव के संज्ञी (मन सहित) और असंज्ञी (मनरहित) भेद से दो प्रकार हैं।[२२९] जीव शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म और बादर (स्थूल) के भेद से दो प्रकार के हैं।[२३०] इन्ही जीवो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक (आहारादि की अपूर्णता) की अपेक्षा भी दो भेद हैं।[२३१] गति, काय, योग, वेद, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुणस्थान, निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन, नामादि निक्षेप और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगों की अपेक्षा जीव तत्त्व के अनेक भेद होते है।[२३२]

गति—गतिनामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। उसके चार भेद हैं—नरक गति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति।[२३३] पद्मचरित में इन गतियों के दुःखों का निरूपण किया गया है।[२३४]

इन्द्रिय—इन्द्रियों की अपेक्षा जीव के पांच भेद हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय।[२३५]

काय—जाति नाम कर्म के अविनाभावी (जाति नाम कर्म के होने पर होने वाले और न होने पर न होने वाले) त्रस और स्थावरनाम कर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय (अवस्था) को काय कहा है।[२३६] पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु

२२७. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ३४।

२२८. संसारिणो विमुक्ताश्च—पद्मचरित १०५।१४८, 'संसारिणो मुक्ताश्च', —तत्त्वा० २।१०।

२२९. सचित्तविचेतसः—पद्म० १०५।१४८।

२३०. सूक्ष्मबादरभेदेन ज्ञेयास्ते च शरीरतः—पद्म० १०५।१४५।

२३१. पर्याप्ता इतरे चैव पुनस्ते परिकीर्तिताः—पद्म० १०५।१४५।

२३२. पद्म० २।१५९-१६०।

२३३. गोम्मटसार जीवकांड, पृ० ५९।

२३४. पद्म० २।१६५, १६६, १४।३५, २।१६४, २६।७८-९४।

२३५. पद्म० १४।३७।

२३६. गोम्मटसार जीवकाड गाथा, १८०।

और वनस्पति ये पाँच स्थावर कहलाते हैं, शेष त्रस कहलाते हैं। इन छहों को मिलाकर जीव के छह निकायें हैं।[२३७]

योग—काय, वचन और मन की क्रिया योग है।[२३८] पातञ्जल योगदर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है। (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) जैन ग्रन्थों में भी इसका यह अर्थ कहीं-कहीं देखने को मिलता है। लेकिन यहाँ इसका अर्थ यही है जो ऊपर दिया गया है।

वेद—पुरुष, स्त्री और नपुसक वेद कर्म के उदय से भाव पुरुष, भावस्त्री, भाव नपुंसक होता है। और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष, द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुंसक होता है। यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है, परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है।[२३९]

लेश्या—जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे उसको लेश्या कहते है।[२४०] तत्त्वार्थवार्तिक मे कषाय के उदय से अनुरक्त योगप्रवृत्ति को लेश्या कहा है।[२४१] यह कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल के भेद से ६ प्रकार की होती हैं।

कषाय—जो आत्मा को कषे अर्थात् चारों गतियो मे भटकाकर दुःख दे।[२४२] क्रोध, मान, माया, लाभ ये चार कषाय है।[२४३]

ज्ञान—जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा पर्यायों (अवस्थाओं) को जाने उसे ज्ञान कहते है।[२४४] यह मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल के भेद से पाँच प्रकार का हैं। इनमें आदि के दो परोक्षज्ञान है शेष तीन प्रत्यक्ष।[२४५]

दर्शन—सामान्य विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अश का ग्रहण न करके केवल

---

२३७. पद्म० १०५।१४९, १०५।१४१।

२३८. 'कायवाङ्मनःकर्म योगः' —तत्त्वार्थसूत्र ६।१।

२३९. मोक्षशास्त्र—पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, (पृ० १०६)।

२४०. गोम्मटसार जीवकाड गाथा, ४८८।

२४१. तत्त्वार्थवार्तिक २।६ वाँ सूत्र, वार्तिक नं० ८।
गोम्मटसार जीवकांड गाथा, ४८९।

२४२. प० पन्नालाल जी : मोक्षशास्त्र पृ० १६।

२४३. पद्म० १४।११०।

२४४. गोम्मटसार जीवकाड गाथा, २९८।

२४५. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्,—तत्त्वार्थसूत्र, १।९ तत्प्रमाणे, वही, १।१०, 'आद्ये परोक्षम् प्रत्यक्षमन्यत्' १।११ (तत्त्वार्थसूत्र)।

सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसे दर्शन[२४६] कहते हैं।

चारित्र—चारित्र का विवेचन इसी अध्याय में मुनि धर्म के प्रकरण में किया जा चुका है।

गुणस्थान—गुणों के स्थानों को अर्थात् विकास की क्रमिक अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। जैनशास्त्र में गुणस्थान इस पारिभाषिक शब्द का अर्थ आत्मिक शक्तियों के आविर्भाव की उनके शुद्ध कार्यरूप में परिणत होते रहने की तरतम भावापन्न अवस्थाओं से है।[२४७] मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्त विरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोग केवलिजिन तथा अयोगकेवली इस प्रकार १४ गुणस्थान हैं।[२४८]

निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन—सम्यग्दर्शन के प्रकरण में इसी अध्याय में इनका विश्लेषण किया गया है।

नामादि न्यास—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार न्यास (निक्षेप) कहे गये हैं।[२४९] इनके द्वारा जीवतत्त्व के अनेक भेद होते हैं।[२५०] प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुए लोकव्यवहार को निक्षेप कहते है।[२५१]

नाम निक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छानुसार नाम रखने को नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे किसी का नाम जिनदत्त है। यद्यपि वह जिनदेव के द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकव्यवहार चलाने के लिए उनका नाम जिनदत्त रख लिया गया है।[२५२]

स्थापना निक्षेप—धातु, काष्ठ, पाषाण आदि की प्रतिमा में यह वह है इस प्रकार की कल्पना करना स्थापना निक्षेप है। जैसे पार्श्वनाथ की प्रतिमा में पार्श्वनाथ की कल्पना करना या सतरंज की गोटों में बादशाह आदि की कल्पना करना।[२५३]

द्रव्य निक्षेप—भूत, भविष्यत् पर्याय की मुख्यता लेकर वर्तमान में कहना

---

२४६. गोम्मटसार जीवकाड गाथा, ४८१।

२४७. प० सुखलाल जी : दर्शन और चिन्तन, पृ० २६३।

२४८. गोम्मटसार जीवकांड गाथा, ९।१०।

२४९. 'नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः', तत्त्वार्थसूत्र १।५।

२५०. पद्म० २।१६०।

२५१. मोक्षशास्त्र, पृ० ५ (टीकाकार पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य)।

२५२. वही, पृ० ५।

२५३. वही, पृ० ५।

द्रव्य निक्षेप है। जैसे कभी पूजा करने वाले पुरुष को वर्तमान में पुजारी कहना और भविष्यत् में राजा होने वाले राजपुत्र को राजा कहना।[२५४]

भावनिक्षेप—केवल वर्तमान पर्याय की मुख्यता से अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना भावनिक्षेप है। जैसे काष्ठ को काष्ठ अवस्था में काष्ठ, आग होने पर आग और कोयला हो जाने पर कोयला कहना।[२५५]

अनुयोग—आगम में सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्प-बहुत्व[२५६] इन आठ अनुयोगों का कथन सामान्य से या गुणस्थान और मार्गणाओं की अपेक्षा किया जाता है। यहाँ उनका सामान्य निर्देश किया जाता है—

सत्—वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते हैं।

संख्या—वस्तु के परिणामों की गिनती को संख्या कहते है।

क्षेत्र—वस्तु के वर्तमान काल के निवास को क्षेत्र कहते हैं।

स्पर्शन—वस्तु के तीनों काल सम्बन्धी निवास को स्पर्शन कहते हैं।

काल—वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते है।

अन्तर—वस्तु के विरहकाल को अन्तर कहते हैं।

भाव—औपशमिक क्षायिक आदि परिणामों को भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्व—अन्य पदार्थ की अपेक्षा किसी वस्तु की हीनाधिकता वर्णन करने को अल्पबहुत्व कहते हैं।

भव्य और अभव्य जीव—जीवों के भव्य और अभव्य इस प्रकार दो भेद और भी है। जिस प्रकार उड़द आदि अनाज में कुछ तो ऐसे होते है जो पक जाते हैं—सीझ जाते है और कुछ तो ऐसे होते हैं कि प्रयत्न करने पर भी नहीं पकते है—नही सीझते हैं। उसी प्रकार जीवों मे भी कुछ जीव तो ऐसे होते है जो कर्म नष्ट कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं और कुछ ऐसे होते है जो प्रयत्न करने पर भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त नही हो सकते। जो सिद्ध हो सकते हैं वे भव्य कहलाते हैं और जो सिद्ध नही हो सकते वे अभव्य कहलाते हैं। इस तरह भव्य और अभव्य की अपेक्षा जीव के दो भेद हैं।[२५७] भव्य की सामर्थ्य और अभव्य की असामर्थ्य का पद्मचरित मे विस्तार से उल्लेख किया गया है।[२५८]

---

२५४. पं० पन्नालाल साहित्याचार्य : मोक्षशास्त्र, पृ० ६।

२५५. वही, पृ० ६।

२५६. सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च।—तत्त्वार्थसूत्र १।८।
सदाद्यष्टानुयोगैश्च भिद्यते चेतना पुनः।—पद्म० २।१६०।
मोक्षशास्त्र (टीका० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य) पृ० ८।

२५७. पद्म० २।१५६, १५७, १०५।२०३।

२५८. पद्म० १०५।२६०,२६१,१०५।२००-२०२; ३१।१३, १४, ७।३१७।

जीव की दशा उत्तम, मध्यम और जघन्य की अपेक्षा तीन प्रकार की कही गई है। अभव्य जीव की दशा जघन्य है, भव्य की मध्यम है और सिद्धों की उत्तम है।[२५९] मध्यम भव्य प्राणी शीघ्र ही महान् आनन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं पर जो असमर्थ हैं, किन्तु मार्ग को जानते हैं वे कुछ विश्राम करने के बाद महाआनन्द प्राप्त कर पाते है। जो मनुष्य मार्ग को न जानकर दिन मे सौ-सौ योजन तक गमन करता है वह भटकता ही रहता है तथा चिरकाल तक इष्ट स्थान को प्राप्त नही कर सकता।[२६०]

सिद्ध जीव—पद्मचरित में सिद्ध जीव तथा उनके गुणों का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख यह चतुष्टय आत्मा का निज स्वरूप है और वह सिद्धों मे विद्यमान है। ये तीन लोक के शिखर पर स्वयं विराजमान हैं, पुनर्जन्म से रहित है,[२६१] संसार सागर से पार हो चुके हैं, परमकल्याण से युक्त हैं, मोक्षसुख के आधार है, जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके है,[२६२] जो अवगाहन गुण से युक्त हैं, अमूर्तिक है, सूक्ष्मत्वगुण से सहित है, गुरुता और लघुता से रहित हैं तथा असख्यात प्रदेशी है।[२६३] अनन्त गुणों के आधार है, क्रमादि से रहित हैं, आत्मस्वरूप की अपेक्षा समान है, आत्म प्रयोजन की अन्तिम सीमा को प्राप्त कर चुके है (कृतकृत्य[२६४] हैं) जिनके भाव सर्वथा शुद्ध है, गमनागमन से विमुक्त[२६५] है, जिनके समस्त क्लेश नष्ट हो चुके हैं,[२६६] जो सब प्रकार की सिद्धियों को धारण करने वाले हैं,[२६७] जिन्होंने उपमा रहित नित्य शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद् निर्वाण का साम्राज्य प्राप्त कर लिया है।[२६८] ऐसे सिद्ध जीव होते है। सिद्ध भगवान् का जो सुख है वह नित्य है, उत्कृष्ट है, आबाधा से रहित है, अनुपम है और आत्मस्वभाव से उत्पन्न है।[२६९] चक्रवर्ती सहित समस्त मनुष्य और इन्द्र सहित समस्त देव अनन्तकाल में जिस सासारिक सुख का उपभोग करते हैं वह कर्मरहित सिद्ध भगवान् के अनन्तवें सुख की भी सदृशता को प्राप्त नहीं होता, ऐसा सिद्धों का सुख है।[२७०]

---

२५९. पद्म०, ३१।११।
२६०. वही, १४।२२५,२२६।
२६१. वही, ४८।२००,२०१।
२६२. वही, ४८।२०२।
२६३. वही, ४८।२०३।
२६४. वही, ४८।२०४।
२६५. वही, ४८।२०५।
२६६. वही, १०५।१९४।
२६७. वही, ४२।२०७।
२६८. वही, ८०।१८।
२६९. वही, १०५।१८१ तत्त्वार्थसूत्र, २।३३।
२७०. वही, १०५।१८६-१८७।

संसारी जीवों का जन्म—संसारी जीवों का जन्म तीन प्रकार का होता है—
१. गर्भजन्म, २. उपपाद जन्म, ३. सम्मूर्च्छन जन्म।

गर्भजन्म—पोतज, अण्डज तथा जरायुज के गर्भजन्म होता है।[२७१]

जरायुज—जाल के समान मांस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटे हुए जो जीव पैदा होते हैं उन्हें जरायुज कहते हैं। जैसे—गाय, भैंस, मनुष्य आदि।[२७२]

अण्डज—जो जीव अण्डे से उत्पन्न हों उन्हें अण्डज कहते हैं जैसे—चील, कबूतर आदि।[२७३]

पोत—पैदा होते समय जिन जीवों पर किसी प्रकार का आवरण नहीं हो और जो पैदा होते ही चलने फिरने लग जावें उन्हे पोत कहते है जैसे—हरिण, सिंह आदि।[२७४]

उपपाद जन्म—देवों और नारकियों के उपपाद जन्म होता है।[२७५]

सम्मूर्च्छन जन्म—गर्भ और उपपाद जन्म वालों से बाकी बचे हुए जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म होता है।[२७६]

शरीर—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच शरीर है।[२७७] जो शीर्ण हों वे शरीर है। यद्यपि घटादि पदार्थ भी विशरणशील हैं परन्तु उनमें नाम कर्मोदय निमित्त नही है, अतः उन्हे शरीर नही कह सकते। जिस प्रकार गच्छतीति गौः यह विग्रह रूढ शब्दों मे भी किया जाता है उसी तरह शरीर का भी विग्रह समझना चाहिए।[२७८]

औदारिक—उदार अर्थात् स्थूल प्रयोजन वाला या स्थूल जो शरीर वह औदारिक है।[२७९]

वैक्रियिक—अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य के कारण अनेक प्रकार के छोटे बड़े रूप जिसका प्रयोजन है वह वैक्रियिक है।[२८०] पद्मचरित में भी

---

२७१. पद्म० १०५।१५०।

२७२. मोक्षशास्त्र, पृ० ४५ (टीकाकार पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य)।

२७३. वही, पृ० ४५। २७४. वही, पृ० ४५।

२७५. पद्म० १०५।१५० 'देवनारकाणामुपपादः'-तत्त्वार्थसूत्र २।३४।

२७६. पद्म० १०५।१५१ 'शेषाणं सम्मूर्च्छनम्'-तत्त्वार्थसूत्र २।३५।

२७७. वही, १०५।१५२ (पद्म०)।

२७८. औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि'-तत्त्वार्थसूत्र २।३६, तत्त्वार्थवार्तिक, २।३६ की व्याख्या, वार्तिक १,२,३।

२७९. वही, वार्तिक ५। २८०. वही, वार्तिक ६।

सौधर्मादि स्वर्ग के देवों के अणिमा आदि आठ सिद्धियों की प्राप्ति का संकेत किया गया है।[२८१]

आहारक—प्रमत्तसंयत मुनि के द्वारा सूक्ष्म तत्त्वज्ञान और असंयम के परिहार के लिए जिसकी रचना की जाती है वह आहारक है।[२८२]

तैजस—जो दीप्ति का कारण होता है, वह तैजस है।[२८३]

कार्मण—कर्मों के समूह को या कार्य को कार्मण कहते हैं।[२८४]

ये पाँचों शरीर आगे-आगे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं।[२८५] औदारिक, वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित हैं।[२८६] तैजस और कार्मण ये दो शरीर उत्तरोत्तर अनन्त गुणित हैं।[२८७] तैजस और कार्मण ये दो शरीर अनादि सम्बन्ध से युक्त हैं अर्थात् जीव के साथ अनादि काल से लगे हैं।[२८८] उपर्युक्त पाँचों शरीरों में से एक साथ चार शरीर तक हो सकते हैं।[२८९]

मनुष्य गति और उसकी सार्थकता

जीवों को मनुष्य पद प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है,[२९०] इससे भी अधिक दुर्लभ सुन्दर रूप का पाना है, इससे अधिक दुर्लभ धन समृद्धि का पाना है, उससे अधिक दुर्लभ आर्यकुल में उत्पन्न होना है, उससे अधिक दुर्लभ विद्या का समागम है, उससे अधिक दुर्लभ हेयोपादेय पदार्थ को जानना है और उससे अधिक दुर्लभ धर्म का समागम होना है।[२९१] जो मनुष्य भव पाकर भी धर्म नहीं करते हैं मानो उनकी हथेली पर आया अमृत नष्ट हो जाता है।[२९२] जो मनुष्य सयम उत्पत्ति के योग्य समय में भी उनका मनोमार्ग वास्तव में वैसा

---

२८१. पद्म० १४।२८६।

२८२. तत्त्वार्थवार्तिक २।३६ की व्याख्या वार्तिक ७।

२८३. तत्त्वार्थवार्तिक ८। २८४. वही, वार्तिक ९।

२८५. पद्म० १०५।१५२। परं परं सूक्ष्मम्—तत्त्वार्थसूत्र २।३७।

२८६. वही, १०५।१५३। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्—तत्त्वार्थसूत्र २।३८।

२८७ वही, १०५।१५३। अनन्तगुणे परे—तत्त्वार्थसूत्र २।३९।

२८८. वही, १०५।१५३। अनादिसम्बन्धे च २।४१ तत्त्वार्थसूत्र,

२८९. वही, १०५।१५३। तदादीनिभाज्यानि युगपदेकस्याचतुर्भ्यः।
तत्त्वार्थसूत्र २।४३।

२९०. वही, १४।१५९, ६।२१६।

२९१. वही, ५।३३३-३३४।

२९२. वही, २।१६७।

ही रहा आता है, क्योंकि मनुष्य का अपना चरित्र ही उसे आत्मकार्य में प्रेरित करता है।[२९३] यह मनुष्यक्षेत्र भयंकर संसार सागर में मानों रत्नद्वीप है। इसकी प्राप्ति बड़े दुःख से होती है। इस रत्नद्वीप में आकर बुद्धिमान् मनुष्य को अवश्य ही नियम रूपी रत्न ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान शरीर को छोड़कर पर्यायान्तर में अवश्य जाना होगा। इस संसार में जो विषयों के लिए धर्मरूपी रत्नों का चूर्ण करता है वह वैसा ही है जैसा कि कोई सूत प्राप्त करने के लिए मणियों का चूर्ण करता है।[२९४] गुण और व्रत से समृद्ध तथा नियमों का पालन करने वाले प्राणी को यदि वह संसार से पार होने की इच्छा करता है तो उसे प्रमाद रहित होना चाहिए। जो बुद्धि के दरिद्र मनुष्य खोटे कार्य नही छोड़ते हैं वे जन्मान्ध मनुष्य के समान संसार मे भटकते रहते हैं।[२९५] अनेक प्रकार के व्यापारों से जिनका हृदय आकुल हो रहा है तथा इसी के कारण जो प्रतिदिन दुःख का अनुभव करता रहता है ऐसे प्राणी की आयु हथेली पर रखे रत्न के समान नष्ट हो जाती है।[२९६]

मै यह कर चुका, यह करता हूँ और यह आगे करूँगा, इस प्रकार मनुष्य निश्चय कर लेता है पर कभी मरूँगा भी इस बात का कोई विचार नही करता है। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नही करती कि प्राणी कौन काम कर चुके और कौन काम नही कर पाये। वह तो जिस प्रकार सिंह मृग पर आक्रमण करता है उसी प्रकार असमय मे आक्रमण कर बैठती है।[२९७] सूखे ईंधन से अग्नि की तृप्ति जिस प्रकार नही हो सकती, नदियों के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता उसी प्रकार विषयों के आस्वाद से प्राणी तृप्त नही हो सकता।[२९८] जल मे डूबते हुए खिन्न मनुष्य के समान विषय रूपी आमिष से मोहित हुआ चतुर मनुष्य भी मोहान्धीकृत होकर मन्दता को प्राप्त हो जाता है।[२९९] जिस प्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका खजाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य भव पाकर विषय स्वाद के लोभ मे पड़ यदि प्रमाद करता हैं तो उसकी मनुष्य पर्याय व्यर्थ चली जाती है।[३००] तात्पर्य यह कि मनुष्य गति पाकर धर्म मे प्रमाद नही करना चाहिए।

चारों गतियों में परिभ्रमण—जीवों के जीवन को नष्ट कर प्राणी कर्मों

---

२९३. पद्म० ५६।३६। २९४. वही, १४।२३४, २३५, २३६।
२९५. वही, १४।३५१-३५२। २९६. पद्म० १११।२१।
२९७. वही, १०५।२५३-२५४। २९८. वही, १०६।९९।
२९९. वही, १०६।१००। ३००. वही, १०६।९८।

के भार से इतने भारी हो जाते हैं कि वे पानी में लौहपिण्ड के समान सीधे नरक में परिभ्रमण करते हैं।[३०१] जो वचन से तो मानो मधु झराते हैं पर हृदय में विष के समान दारुण हैं। जो इन्द्रियों के वश में स्थित हैं और बाहर से जिनका मन त्रैकालिक सन्ध्याओं में निमग्न रहता है[३०२], जो योग्य आचार से रहित हैं और इच्छानुसार मनचाही प्रवृत्ति करते हैं, ऐसे दुष्ट जीव तिर्यंच योनि में भटकते[३०३] है। कितने ही लोग धर्म करके उसके प्रभाव से स्वर्ग मे देवियों आदि के परिवार से मानसिक सुख प्राप्त करते है।[३०४] वहाँ से च्युत होकर विष्ठा तथा मूत्र से लिप्त बिलबिलाते कीड़ों से युक्त दुर्गन्धित एवं अत्यन्त दुःसह गर्भगृह को प्राप्त होते है।[३०५] गर्भ मे यह प्राणी चमड़े के जाल से आच्छादित रहते हैं, पित्त, श्लेष्मा आदि के बीच मे स्थित रहते है और नालद्वार से च्युत माता द्वारा उपभुक्त आहार के द्रव का आस्वादन करते है।[३०६] वहाँ उनके समस्त अंग सकुचित रहते है और दुःख के भार से पीडित रहते है, वहाँ रहने के बाद मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं।[३०७] यदि कोई प्राणी मृदुता और सरलता से सहित होते है तथा स्वभाव से ही सन्तोष प्राप्त करते है तो वे मनुष्य होते है।[३०८] मनुष्य में भी मोही जीव परम सुख के कारणभूत कल्याणमार्ग को छोड़कर क्षणिक सुख के लिए पाप करते है।[३०९] कोई अपने पूर्व उपार्जित कर्म के अनुसार आर्य होते है, कोई म्लेच्छ होते है, कोई धनाढ्य होते है और कोई अत्यन्त दरिद्र होते है।[३१०] इस प्रकार मनुष्यगति मे होने वाले दुःखों का पद्मचरित मे विस्तार से वर्णन किया गया है।[३११] कुछ ही मनुष्य ऐसे होते है जो षोडश कारण भावनाओ का चिन्तवन कर तीनों लोकों मे मोक्ष उत्पन्न करने वाले तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते है और कितने ही लोग निरन्तराय होकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की आराधना मे तत्पर रहते हुए दो तीन भवो मे ही अष्ट कर्म रूपी कलक से मुक्त हो जाते है।[३१२] वे फिर मुक्त जीवों के उत्कृष्ट एव निरुपम स्थान को पाकर अनन्तकाल तक निर्बाध उत्तम सुख का उपभोग करते है।[३१३]

---

३०१. पद्म० ५।३३० । ३०२ वही, ५।३३१ ।
३०३ वही, ५।३३२ । ३०४. वही, ५।३३५ ।
३०५ वही, ५।३३६ । ३०६. वही, ५।३३७ ।
३०७. वही, ५।३३८ । ३०८. वही, १४।३९ ।
३०९. वही, १४।४० । ३१०. वही, १४।४१ ।
३११. वही, २।१६९-१९१ । ३१२. वही, २।१९२, १९३ ।
३१३. वही, २।१९४ ।

पुद्गल—जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और वर्ण पाया जाय वह पुद्गल द्रव्य है।

कर्म सिद्धान्त—अनादि काल से बँधे हुए आठ कर्मों से जिसकी आत्मीय शक्ति छिप गई है ऐसा यह प्राणी निरन्तर भ्रमण कर रहा है।[३१४] अनेक लक्ष योनियों में नाना इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुख दुःख का सदा अनुभव करता रहता है।[३१५] कर्मों का जब जैसा तीव्र मन्द या मध्यम उदय आता है वैसा रागी द्वेषी अथवा मोही होता हुआ कुम्हार के चक्र के समान चतुर्गति में घूमता रहता है।[३१६] इस प्रकार चारों गतियों में घूमने का वर्णन पद्मचरित के चौदहवें अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है।[३१७] यह जीव अशुभ संकल्प से दुःख पाता है, शुभ संकल्प से सुख पाता है और अष्ट कर्मों के क्षय से मोक्ष प्राप्त करता है।[३१८] इस प्रकार इस प्राणी का बन्धु अथवा शत्रु उसका कर्म ही है।[३१९] इसलिए जिनके साथ अवश्य ही वियोग होता है ऐसे भोगों का त्याग कर देना चाहिए।[३२०] मैं दीक्षा लेकर पृथ्वी पर कब विहार करूँगा और कब कर्मों को नष्ट कर सिद्धालय में पहुँचूँगा, जो निर्मल चित्त का धारी मनुष्य प्रतिदिन ऐसा विचार करता है, कर्म भयभीत होकर ही मानो उसकी संगति नहीं करते हैं। कोई-कोई गृहस्थ प्राणी सात आठ भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और उत्तम हृदय को धारण करने वाले कितने ही मनुष्य तीक्ष्ण तप कर दो तीन भव में ही मुक्त हो जाते हैं।[३२१]

अष्टकर्म—ऊपर अष्टकर्मों का निर्देश हुआ है,[३२२] ये अष्टकर्म निम्नलिखित हैं[३२३]—१. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र, ८. अंतराय।

ज्ञानावरण—जो ज्ञान को आवृत करे या जिसके द्वारा ज्ञान का आवरण किया जाय वह ज्ञानावरण है।

दर्शनावरण—जो आत्मा के दर्शन गुण को आवृत करे या जिसके द्वारा दर्शन गुण का आवरण किया जाय वह दर्शनावरण है।

---

३१४. पद्म० १४।१८।

३१५. वही, १४।१९। ३१६. वही, १४।२०।

३१७. वही, १४।२१-५०। ३१८. वही, १४।५१।

यहाँ कई स्थानों पर तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार वर्णन है।

३१९. पद्म० ११२।९०। ३२०. पद्म० ११२।९१।

३२१. वही, ४।२२२-२२४। ३२२. वही, १४।१८।

३२३. तत्त्वार्थसूत्र, ८।४, व्याख्या तत्त्वार्थवार्तिक ८।४।२।

वेदनीय—जो अनुभव किया जाय वह वेदनीय है अर्थात् जिसके द्वारा सुख दुःख का अनुभव हो वह वेदनीय है ।

मोहनीय—जो मोहन करे या जिसके द्वारा मोह हो वह मोहनीय है ।

आयु—जिससे नरकादि पर्यायों (अवस्थाओं) को प्राप्त हो वह आयु है ।

नाम—जो आत्मा का नरकादि रूप से नामकरण करे या जिसके द्वारा नामकरण हो वह नाम है ।

गोत्र—उच्च और नीच रूप शब्द व्यवहार जिससे हो वह गोत्र है ।

अन्तराय—जिसके द्वारा दाता और पात्र आदि के बीच मे विघ्न आवे वह अन्तराय है अथवा जिसके रहने पर दाता आदि दानादि क्रियायें न कर सकें, दानादि की इच्छा से पराङ्मुख हो जायें वह अन्तराय है ।

घाति तथा अघाति कर्म—जैन आगम मे घाति तथा अघाति कर्मों का वर्णन आता है । पद्मचरित मे भी इनका निर्देश किया गया है ।[३२४] ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घाती (जीव के अनुजीवी—सद्भाव रूप गुणो के घातक) है और शेष चार कर्म अघातिया (प्रतिजीवी—अभावरूप गुणो के घातक) है । घातिकर्म का नाश कर केवलज्ञान और अघाति कर्म का नाश कर मोक्ष होता है ।[३२५]

प्रमाण और नय

प्रमाण—पदार्थ के समस्त विरोधी धर्मों का एक साथ वर्णन करना प्रमाण है ।[३२६]

नय—पदार्थ के किसी एक धर्म का सिद्ध करना नय है ।[३२७] इसी अभिप्राय का खुलासा करते हुए कहा है कि प्रमाण से जाने हुए पदार्थ के एकदेश को ग्रहण करने वाले ज्ञाता के अभिप्राय विशेष को नय कहते हैं ।[३२८] इस अभिप्राय के द्वारा ज्ञाता जानी हुई वस्तु के एकदेश को स्पर्श करता है । वस्तु अनन्त धर्म वाली है । प्रमाणज्ञान उसे समग्रभाव से ग्रहण करता है, उसमें अंशविभाजन करने की ओर उसका लक्ष्य नही होता । जैसे यह घड़ा है इस ज्ञान मे प्रमाण घडे को अखण्डभाव से उसके रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि अनन्त गुण धर्मों का

३२४. पद्म० २१।४५, १२२।७१ ।

३२५. पद्म० १२२।६९-७१, २१।४५ ।

३२६. 'प्रमाण' सकलादेशो, पद्म० १०५।१४३ ।

३२७. नयोऽवयवसाधनम्, पद्म० १०५।१४३ ।

३२८. 'प्रमाणगृहीतार्थैकदेशग्राही प्रमातुरभिप्रायविशेषो नयः ।'
'नयो ज्ञातुरभिप्रायः' (लघीयस्त्रयादिसंग्रह का० ५२)

विभाजन करके पूर्ण रूप में जानता है, जबकि कोई भी नय उसका विभाजन करके रूपवान् घटः रसवान् घटः आदि रूप में उसे अपने अपने अभिप्राय के अनुसार जानता है। प्रमाण और नय ज्ञान की ही वृत्तियाँ है, दोनों ज्ञानात्मक पर्यायें हैं। जब ज्ञाता को सकल के ग्रहण की दृष्टि होती है तब उसका ज्ञान प्रमाण होता है और जब उसी प्रमाण से गृहीत वस्तु को खंडशः ग्रहण करने का अभिप्राय होता है तब वह अंशग्राही अभिप्राय नय कहलाता है। प्रमाण ज्ञान नय के लिए भूमि तैयार करता है।[३२९]

अनेकांत

जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति में पद्मचरित के नवें सर्ग में कहा गया है कि आत्मा रागादि विकारों से शून्य है ऐसा उपदेश आपने सबके लिए दिया है। आत्मा है, परलोक है इत्यादि आस्तिक्यवाद का भी उपदेश आपने दिया है, ससार के समस्त पदार्थ क्षणिक हैं इस पक्ष का निरूपण जहाँ आपने किया है वहाँ (द्रव्यार्थिक नय से) समस्त पदार्थों को नित्य भी आपने दिखाया है।[३३०] हमारी आत्मा समस्त पर पदार्थों से पृथक् अखण्ड एक द्रव्य है ऐसा कथन आपने किया है, आप सबके समक्ष अनेकान्त धर्म का प्रतिपादन करने वाले हैं।[३३१] यहाँ अनेकान्त शब्द विशेष महत्त्व का है। जैन दर्शन में वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक (अनक धर्मात्मक) निर्णीत किया गया है। इसलिए जैनदर्शन का मुख्य सिद्धान्त अनेकान्तवाद है। अनेकान्त का अर्थ है परस्पर विरोधी दो तत्त्वों का एकत्र समन्वय। तात्पर्य यह कि जहाँ दूसरे दर्शनों मे वस्तु को केवल सत् या असत्, सामान्य या विशेष, नित्य या अनित्य, एक या अनेक और भिन्न या अभिन्न स्वीकार किया गया है वहाँ जैनदर्शन मे वस्तु को सत् और असत्, सामान्य और विशेष, नित्य और अनित्य, एक और अनेक तथा भिन्न और अभिन्न स्वीकार किया गया है और जैनदर्शन की यह मान्यता परस्पर विरोधी दो तत्त्वों के एकत्र समन्वय को सूचित करती है।[३३२]

सप्तभङ्गी

सप्तभङ्गी पदार्थ के निरूपण करने का एक मार्ग है। रविषेण ने इसे प्रशस्त मार्ग कहा है।[३३३] ऊपर नय का विवेचन किया गया है। ये नय द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो प्रकार के होते है। उनमे द्रव्यार्थिक नय प्रमाण के विषयभूत द्रव्यपर्यायात्मक तथा एकानेकात्मक अर्थ का विभाग करके पर्यायार्थिक नय

---

३२९. पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, जैनदर्शन, पृ० ४४१।
३३०. पद्म० ९।१८३। ३३१. पद्म० ९।१८४।
३३२. न्यायदीपिका, पृ० ३ (प्राक्कथन)। ३३३. पद्म० १०५।१४३।

के विषयभूत भेद को गौण करता हुआ उसकी स्थिति मात्र को स्वीकार कर अपने विषय द्रव्य को अभेद रूप व्यवहार करता है। अन्य नय के विषय का निषेध नहीं करता। इसीलिए दूसरे नय के विषय की अपेक्षा रखने वाले नय को सत् नय, सम्यक् नय अथवा सामान्य नय कहा है। जैसे यह कहना कि सोना लावो। यहाँ द्रव्यार्थिक के अभिप्राय से सोना लाओ कहने पर लाने वाला कड़ा, कुण्डल, केयूर इनमें से किसी को भी ले आने से कृतार्थ हो जाता है, क्योंकि सोने रूप से कड़ा आदि मे कोई भेद नहीं है पर जब पर्यायार्थिक नय की विवक्षा होती है तब द्रव्यार्थिक नय को गौण करके प्रवृत्त होने वाले पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से कुण्डल लाओ यह कहने पर लाने वाला कडा आदि के लाने मे प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि कडा आदि पर्याय से कुण्डल पर्याय भिन्न है। अतः द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा मे सोना कथंचित् एक रूप ही है, पर्यायार्थिक नय के अभिप्राय से कथंचित् अनेक रूप ही है और क्रम से दोनों नयो के अभिप्राय से कथंचित् एक और अनेक रूप है। एक साथ दोनों के अभिप्राय से कथंचित् अवक्तव्य स्वरूप है, क्योकि एक साथ प्राप्त हुए दो नयो से विभिन्न स्वरूप वाले एकत्व अथवा अनेकत्व का विचार अथवा कथन नही हो सकता है। जिस प्रकार कि एक साथ प्राप्त हुए दो शब्दो के द्वारा घट के भिन्न स्वरूप वाले रूप और रस इन दो धर्मों का प्रतिपादन नही हो सकता अतः एक साथ प्राप्त द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के अभिप्राय से सोना कथंचित् अवक्तव्य स्वरूप है। इस अवक्तव्य स्वरूप को द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक इन तीन नयों के अभिप्राय से प्राप्त हुए एकत्वादि के मिला देने पर सोना कथंचित् एक और अवक्तव्य है, कथंचित् अनेक और अवक्तव्य है तथा कथंचित् एक, अनेक और अवक्तव्य है, इस तरह तीन नयाभिप्राय और हो जाते है जिनके द्वारा भी सोने का निरूपण किया जाता है। नयों के कथन करने की इस शैली को ही सप्तभंगी कहते है। यहाँ भंग शब्द वस्तु के स्वरूप विशेष का प्रतिपादक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक वस्तु मे नियत सात स्वरूप विशेषों का प्रतिपादन करने वाला शब्द समूह सप्तभंगी है।[३३४]

सर्वज्ञसिद्धि

राजा मरुत्वान् के संवर्त नामक याजक और नारद के बीच हुए वाद-विवाद में नारद द्वारा सर्वज्ञ की सिद्धि अनेक युक्तियों द्वारा की गई है। पूर्वपक्षी के रूप मे संवर्त कहता है कि नारद का मत है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ वीतराग है किन्तु वह सर्वज्ञ वक्ता आदि होने से दूसरे पुरुष के समान सर्वज्ञ वीतराग सिद्ध

३३४. न्यायदीपिका, पृ० १२५, १२७।

नहीं होता। क्योंकि जो सर्वज्ञ वीतराग है वह वक्ता नहीं हो सकता और जो वक्ता है वह सर्वज्ञ वीतराग नहीं हो[३३५] सकता। अशुद्ध अर्थात् रागी द्वेषी मनुष्यों के द्वारा कहे हुए वचन मलिन होते हैं और इनसे विलक्षण कोई सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि उसका साधक कोई प्रमाण नहीं पाया जाता।[३३६]

इसके उत्तर में नारद कहता है कि संवर्त के मत के अनुसार यदि सर्व प्रकार के सर्वज्ञ का अभाव है तो शब्दसर्वज्ञ, अर्थसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ इस प्रकार सर्वज्ञ के तीन भेद संवर्त ने स्वयं अपने शब्दों द्वारा कहे ? स्ववचन से ही वह बाधित होता है।[३३७] यदि शब्दसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ तो है पर अर्थसर्वज्ञ कोई नहीं है तो यह कहना नहीं बनता क्योंकि गो आदि[३३८] समस्त पदार्थों में शब्द अर्थ और बुद्धि तीनों साथ ही साथ देखे जाते हैं।[३३८] यदि पदार्थ का बिलकुल अभाव है तो उसके बिना बुद्धि और शब्द कहाँ टिकेंगे। इस प्रकार का अर्थ बुद्धि और वचन के व्यतिक्रम को प्राप्त हो जायगा।[३३९] बुद्धि में जो सर्वज्ञ का व्यवहार होता है वह गौण है और गौण व्यवहार सदा मुख्य की अपेक्षा करके प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार चैत्र के लिए सिंह कहना मुख्य सिंह की अपेक्षा रखता है उसी प्रकार बुद्धिसर्वज्ञ वास्तविक सर्वज्ञ की अपेक्षा रखता है।[३४०] इस अनुमान से सर्वज्ञ नहीं है इस प्रतिज्ञा में विरोध आता है।[३४१]

हमारे मत में सर्वज्ञ का सर्वथा अभाव नहीं माना गया है।[३४२] पृथ्वी में जिसकी महिमा व्याप्त है ऐसा यह सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहाँ रहता है इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि दिव्य ब्रह्मपुर में आकाश के समान निर्मल आत्मा सुप्रतिष्ठित है।[३४३] तुम्हारे इस आगम से भी प्रतिज्ञावाक्य विरोध को प्राप्त होता है। यदि सर्वथा सर्वज्ञ का अभाव होता तो तुम्हारे आगम में उसके स्थान आदि की चर्चा क्यों की जाती ? और इस प्रकार साध्य अर्थ के अनेकान्त हो जाने पर अर्थात् कथंचित् सिद्ध हो जाने पर वह हमारे लिए सिद्ध साधन है क्योंकि हम भी तो यही कहते हैं।[३४४]

सर्वज्ञ के अभाव में जो वक्तृत्व हेतु दिया गया है वह वक्तृत्व तीन प्रकार का होता है—सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व, युक्त वक्तृत्व और सामान्य वक्तृत्व।

---

३३५. पद्म० ११।१६५। ३३६. पद्म० ११।१६६।
३३७. पद्म० ११।१७२। ३३८. वही, ११।१७३।
३३९. पद्म० ११।१७४। ३४०. वही, ११।१७५।
३४१. वही, ११।१७६। ३४२. वही, ११।१७६।
३४३. वही, ११।१७७। ३४४. वही, ११।१७८।

उनमें से सर्वथा अयुक्त वक्तृत्व तो बनता नहीं है क्योंकि प्रतिवादी के प्रति वह सिद्ध नहीं है। यदि स्याद्वाद सम्मत वक्तृत्व लेते हो तो तुम्हारा हेतु असिद्ध हो हो जाता है क्योंकि इससे निर्दोष वक्ता की सिद्धि हो जाती है। आपके (जैमिनि आदि के) वेदार्थ वक्ता हम लोगों को भी इष्ट नहीं हैं। वक्तृत्व हेतु से देवदत्त के समान वे भी सदोष वक्ता सिद्ध होते हैं, इसलिए आपका यह वक्तृत्व हेतु विरुद्ध अर्थ को सिद्ध करने वाला होने से विरुद्ध हो जाता[३४५] है। प्रजापति आदि के द्वारा दिया गया यह उपदेश प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि वे देवदत्तादि के समान रागी द्वेषी ही हैं और ऐसे रागी द्वेषी पुरुषों से जो आगम कहा जायेगा वह भी सदोष ही होगा। अतः निर्दोष आगम का तुम्हारे यहाँ अभाव सिद्ध होता है।[३४६] एक को जिसने जान लिया उसने सद्रूप से अखिल पदार्थ जान लिए। अतः सर्वज्ञ के अभाव की सिद्धि में तुमने दूसरे पुरुष का दृष्टान्त दिया है, उसे तुमने ही साध्यविकल कह दिया है, क्योंकि वह चूँकि एक को जानता है, इसलिए वह सबको जानता है, इसकी सिद्धि हो जाती है।[३४७] दूसरे तुम्हारे मत से सर्वथा युक्त वचन बोलने वाला पुरुष दृष्टान्त रूप से है नहीं अतः आपको दृष्टान्त मे साध्य के अभाव मे साधन का अभाव दिखलाना चाहिए।[३४८] अर्थात् जिस प्रकार आप अन्वय दृष्टान्त मे अन्वय व्याप्ति करके घटित बतलाते हैं उसी प्रकार व्यतिरेक व्याप्ति भी घटित करके बतलानी चाहिए तब साध्य की सिद्धि हो सकती है, अन्यथा नही। आपके यहाँ सुनकर अदृष्ट वस्तु के विषय में वेद मे प्रमाणता आती है, अतः वक्तृत्व हेतु के बल से सर्वज्ञ के विषय में दूषण उपस्थित करने मे इसका आश्रय करना उचित नहीं है।[३४९] अर्थात् वेदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान न होने से उसके बल से सर्वज्ञ की सिद्धि नहीं की जा सकती। सर्वज्ञता के साथ वक्तृत्व का विरोध क्या है? सर्वज्ञता का सुयोग मिलने पर यह पुरुष वक्ता अपने आप हो जाता[३५०] है। जो बेचारा स्वयं नहीं जानता वह बुद्धि का दरिद्र दूसरों के लिए क्या कह सकता है? इस प्रकार व्यतिरेक और अविनाभाव का अभाव होने से वह साधक नही हो सकता।[३५१]

हमारा पक्ष तो यह है कि जिस प्रकार सुवर्णादि धातुओं का मल बिलकुल क्षीण हो जाता है उसी प्रकार यह अविद्या और रागादिक मल कारण पाकर किसी पुरुष में अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं जिसमें क्षीण हो जाते हैं वही सर्वज्ञ कहलाने

---

३४५. पद्म० ११।१७९-१८०।
३४६. वही, ११।१८१।
३४७. वही, ११।१८२।
३४८. वही, ११।१८३।
३४९. वही, ११।१८४।
३५०. वही, ११।१८५।
३५१. वही, ११।१८६।

लगता है।[३५२] हमारे सिद्धान्त से पदार्थों के जो धर्म अर्थात् विशेषण हैं वे अपने से विरुद्ध धर्म की अपेक्षा अवश्य रखते हैं। जिस प्रकार कि उत्पल आदि के लिए जो नील विशेषण दिया जाता है उससे यह सिद्ध होता है कि कोई उत्पल ऐसा भी होता है कि जो नील नहीं है।[३५३] इसी प्रकार पुरुष के लिए जो आपके यहाँ असर्वज्ञ विशेषण दिया है वह सिद्ध करता है कि कोई पुरुष ऐसा भी है जो असर्वज्ञ नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ है।

सृष्टि कर्तृत्वनिषेध

पद्मचरित के एकादश पर्व में कहा गया है कि ब्रह्मा (स्वयम्भू) के द्वारा लोक की सृष्टि हुई यह कथन विचार करने पर जीर्ण तृण के समान निःसार जान पड़ता है।[३५४] सृष्टि कर्तृत्व के विरोध में यहाँ निम्नलिखित युक्तियाँ दी गई हैं—

यदि स्रष्टा कृतकृत्य है तो उसे सृष्टि की रचना करने से क्या प्रयोजन है? यदि कहो कि क्रीड़ावश वह सृष्टि की रचना करता है तो कृतकृत्य कहाँ रहा? जिस प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी बालक अकृतकृत्य है उसी प्रकार क्रीड़ा का अभिलाषी स्रष्टा भी अकृतकृत्य कहलायेगा।[३५५] स्रष्टा अन्य पदार्थों के बिना स्वयं ही रति को क्यों नहीं प्राप्त हो जाता जिससे सृष्टि निर्माण की कल्पना करनी पड़ी।[३५६]

दूसरा प्रश्न यह है कि जब स्रष्टा सृष्टि की रचना करता है तो इसके सहायक करण अधिकरण आदि कौन से पदार्थ हैं।[३५७] तीसरी युक्ति यह है कि संसार में सब लोग एक सदृश नहीं है, कोई सुखी देखे जाते हैं और कोई दुःखी देखे जाते हैं। इससे यह मानना पड़ेगा कि कोई तो स्रष्टा के उपकारी है उन्हें यह सुखी करता है और कोई अपकारी हैं, उन्हें यह दुःखी करता है।[३५८] यदि कहो कि ईश्वर कृतकृत्य नहीं है तो वह कर्मों से परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं कहलाएगा। जिस प्रकार कि आप कर्मों के परतन्त्र होने के कारण ईश्वर नहीं हैं।[३५९]

---

३५२. पद्म० ११।१८७। दोषावरणयोर्हानिः निःशेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥
—आचार्य समन्तभद्र : आप्तमीमांसा

३५३. वही, ११।१८८।
३५४. वही, ११।२१७।
३५५. वही, ११।२१८।
३५६. वही, ११।२१९।
३५७. वही, ११।२१९।
३५८. वही, ११।२२०।
३५९. वही, ११।२२१।

जिस प्रकार रथ, मकान आदि पदार्थ विशिष्ट आकार से सहित होने के कारण किसी बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से रचित होना चाहिए। जिसकी बुद्धि से इन सबकी रचना होती है वही ईश्वर है। इस अनुमान से सृष्टिकर्ता ईश्वर की सिद्धि होती है, यह कहना ठीक नहीं क्योंकि एकान्तवादी का उक्त अनुमान समीचीनता को प्राप्त नहीं है।[३६०] विचार करने पर जान पड़ता है कि रथ आदि जितने पदार्थ हैं वे एकान्त से बुद्धिमान् मनुष्य के प्रयत्न से ही उत्पन्न होते हैं, ऐसी बात नहीं है क्योंकि रथ आदि वस्तुओं में जो लकड़ी आदि पदार्थ अवस्थित है वही रथादि रूप उत्पन्न होता है।[३६१] जिस प्रकार रथ आदि के बनाने में बढ़ई को क्लेश उठाना पड़ता है उसी प्रकार ईश्वर को भी क्लेश उठाना पड़ता होगा। इस प्रकार उसके सुखी होने में बाधा प्रतीत होती है। यथार्थ में तुम जिसे ईश्वर कहते हो वह नामकर्म है।[३६२]

ईश्वर सशरीर है या अशरीर? यदि अशरीर है तो उससे मूर्त पदार्थों का निर्माण सम्भव नहीं है। यदि सशरीर है तो उसका वह विशिष्टाकार वाला शरीर किसके द्वारा रचा गया है? यदि स्वयं रचा गया है तो फिर दूसरे पदार्थ स्वयं क्यों नहीं रचे जाते? यदि यह माना जाय कि वह दूसरे ईश्वर के यत्न से रचा गया है तो फिर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि उस दूसरे ईश्वर का शरीर किसने रचा? इस तरह अनवस्था दोष उत्पन्न होगा। इस विसंवाद से बचने के लिए यदि माना जाय कि ईश्वर के शरीर है ही नहीं तो फिर अमूर्तिक होने से वह सृष्टि का रचयिता कैसे होगा? जिस प्रकार अमूर्त होने से आकाश सृष्टि का कर्त्ता नहीं है उसी प्रकार अमूर्त होने से ईश्वर भी सृष्टि का कर्त्ता नहीं हो सकता। यदि बढ़ई के समान ईश्वर को कर्ता माना जाय तो वह सशरीर होगा न कि अशरीर।[३६३]

यज्ञ का प्रचलन—रावण की दिग्विजय का वर्णन करते हुए पद्मचरित में कहा गया है कि जब रावण ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया तब उसने सुना कि राजपुर का राजा बड़ा बलवान् है। वह अहंकारी, दुष्टचित्त, लौकिक मिथ्या मार्ग से मोहित और प्राणियों का विध्वंस कराने वाले यज्ञ दीक्षा नामक महापाप को प्राप्त है।[३६४] इससे स्पष्ट है कि रावण के समय हिंसामय यज्ञ होते

३६०. पद्म० ११।२२२-२२३। ३६१. वही, ११।२२४।
३६२. वही, ११।२२५। ३६३. वही, ११।२२६-२२८।
३६४. वही, ११।८,९। रावण ने उत्तर की ओर जाते हुए जो राजपुर के प्रबल नरेश के क्रूर हिंसात्मक यज्ञ की बात सुनी उसका अभिप्राय यौधेय (पंजाब) की राजधानी राजपुर के उसी मारिदत्त नामक राजा से होना चाहिए

थे। जैन परम्परा के अनुसार रावण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में हुआ था। अतः यज्ञ भी कम-से-कम उतना ही प्राचीन होना चाहिए, क्योंकि उपर्युक्त वर्णन रावण के समय का ही है।

यज्ञ की उत्पत्ति—यज्ञ की उत्पत्ति के विषय में ११वें पर्व (पद्मचरित) में एक कथा दी गई है जो इस प्रकार है—

अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुकुल में एक ययाति नामक राजा हुआ। उसके सुरकान्ता नामक स्त्री से वसु नाम का पुत्र हुआ। उसने क्षीरकदम्बक नामक गुरु से शिक्षा पाई।[३६५] नारद और पर्वत नाम के उसके दो शिष्य और थे। एक दिन चारण मुनियों के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुआ क्षीरकदम्बक मुनि हो गया।[३६६] ययाति भी यह समाचार जानकर श्रमण (जैन-मुनि) हो गया। बाद में वसु सिंहासन पर बैठा।[३६७] उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। आकाश स्फटिक की लम्बी चौडी शिला पर उसका सिंहासन स्थित था। अतः तीनों लोकों में ऐसी प्रसिद्धि हुई कि सत्य के बल पर वसु आकाश में निराधार स्थित है।[३६८] एक दिन नारद और पर्वत के बीच में धर्मचर्चा में 'अजेर्यष्टव्यम्' इस वाक्य पर विवाद छिड़ गया। नारद ने कहा कि इसका अर्थ यह है कि अज उस पुराने धान्य को कहते है जिसमें कारण मिलने पर भी अंकुर उत्पन्न नहीं होते। ऐसे धान से ही यज्ञ करना चाहिए।[३६९] पर्वत ने कहा कि अज नाम पशु का है अतः उनकी हिंसा करनी चाहिए। यही यज्ञ कहलाता है।[३७०] अपने पक्ष की प्रबलता सिद्ध करने के लिए नारद ने कहा कि हम दोनों कल राजा वसु के पास चलें, वहाँ जो पराजित होगा उसका जीभ काट ली जावे।[३७१] पर्वत ने जब अपनी माता को यह हाल सुनाया तो उसने कहा कि तूने मिथ्या बात कही है। अनेकों बार व्याख्या करते हुए तेरे पिता से मैंने सुना है कि अज उस धान्य को कहते हैं जिससे अंकुर नही होते। तू देशान्तर में जाकर मांस खाने लगा है अतः तूने मिथ्या अहंकार वश यह बात कही है।[३७२] देशान्तर में जाकर मांस खाने वाली बात से इस बात की पुष्टि होती है उस समय इस देश में माँस नहीं खाया जाता था, अन्य देशों में ही इसका प्रचलन था। यथार्थ अभिप्राय जानती हुई भी पर्वत की

जिसके नरबलि विधान का मार्मिक विवरण सोमदेवकृत यशस्तिलकचम्पू व पुष्पदन्तकृत जसहरचरिउ आदि अनेक काव्यों में पाया जाता है।

३६५. पद्म० ११।१३-१४।
३६६. वही, ११।१५,१६, २६।
३६७. वही, ११।३४।
३६८. वही, ११।३५,३६।
३६९. वही, ११।४२।
३७०. वही, ११।४३।
३७१. वही, ११।४५।
३७२. वही, ११।४८-४९।

माता ने गुरु-दक्षिणा के वचन का स्मरण दिलाकर वसु को इस बात के लिए राजी कर लिया कि पर्वत के पक्ष में निर्णय देना है।[३७३] बाद में जब शास्त्रार्थ हुआ तो वसु ने पर्वत के पक्ष में निर्णय दिया जिससे उसका स्फटिक सिंहासन पृथ्वी पर गिर पड़ा।[३७४] नारद द्वारा समझाए जाने पर भी उसने अपनी कही हुई बात की ही पुष्टि की। अतः वह शीघ्र ही सिंहासन के साथ पृथ्वी में धँस गया।[३७५] पर्वत लोक में धिक्कार रूपी दण्ड प्राप्त कर कुतप करने लगा। इसके बाद वह मर कर प्रबल पराक्रम का धारक राक्षस हुआ।[३७६] अपने पूर्व जन्म के पराभव का स्मरण करते हुए उसने बदला लेने के लिए कपटपूर्ण शास्त्र रचकर ऐसा कार्य करने का निश्चय किया जिसमें आसक्त हुए मनुष्य तिर्यंच अथवा नरक गति में जावे।[३७७]

इसके बाद उस राक्षस ने मनुष्य का वेष रखा, बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत पहिना और हाथ में कमण्डलु तथा अक्षमाला आदि उपकरण लिए।[३७८] भविष्य में जिन्हें दुःख प्राप्त होने वाला था ऐसे मूर्ख प्राणी उसके पक्ष में इस प्रकार पड़ने लगे जिस प्रकार अग्नि में पतंगे पड़ते हैं।[३७९] वह उन लोगों से कहता था कि मैं वह ब्रह्मा हूँ जिसने चराचर विश्व की रचना की है। यज्ञ की प्रवृत्ति चलाने के लिए मैं स्वयं इस लोक में आया हूँ।[३८०] मैंने बड़े आदर से स्वयं ही यज्ञ के लिए पशुओं की रचना की है। यथार्थ में यज्ञ स्वर्ग की विभूति प्राप्त कराने वाला है इसलिए यज्ञ में जो हिंसा होती है वह हिंसा नहीं है।[३८१] सौत्रामणि नामक यज्ञ में मदिरा पीना दोषपूर्ण नहीं है और गोसव नामक यज्ञ में अगम्या अर्थात् परस्त्री का भी सेवन किया जा सकता है।[३८२] मातृमेध यज्ञ में माता का और पितृमेध यज्ञ मे पिता का वध वेदी के मध्य में करना चाहिए इसमें दोष नहीं है।[३८३] कछुए की पीठ पर अग्नि रखकर जुह्वक नामक देव को बड़े प्रयत्न से स्वाहा शब्द का उच्चारण करते हुए साकल्य से संतृप्त करना चाहिए।[३८४] यदि इस कार्य के लिए कछुआ न मिले तो एक गंजे सिर वाले पीले रंग के शुद्ध ब्राह्मण को पवित्र जल मे मुख प्रमाण नीचे उतारे अर्थात् उसका शरीर मुख तक पानी मे डूबा रहे ऊपर केवल कछुआ के आकार मस्तक निकला

---

३७३. पद्म० ११।६२।
३७४. वही, ११।६८।
३७५. वही, ११।७१।
३७६. वही, ११।७५-७६।
३७७. वही, ११।७७-७८।
३७८. वही, ११।७९।
३७९. वही, ११।८२।
३८०. वही, ११।८३।
३८१. वही, ११।८४।
३८२. वही, ११।८५।
३८३. वही, ११।८६।
३८४. वही, ११।८७।

रहे उस मस्तक पर प्रचण्ड अग्नि जलाकर आहुति देना चाहिए।[३८५] जो कुछ हो चुका है अथवा जो आगे होगा, जो अमृतत्व का स्वामी है और जो अन्नजीवी है वह सब पुरुष ही है।[३८६] इस प्रकार सर्वत्र जब एक ही पुरुष है तब किसके द्वारा कौन मारा जाता है इसलिए यज्ञ में इच्छानुसार प्राणियों की हिंसा करो।[३८७] यज्ञ में यज्ञ करने वाले को उन जीवों का मांस खाना चाहिए क्योंकि देवता के उद्देश्य से निर्मित होने के कारण वह मांस पवित्र माना जाता है।[३८८]

यज्ञ की पुष्टि में शास्त्र प्रमाण—नारद और संवर्त के यज्ञविषयक वाद-विवाद में संवर्त कहता है कि अकर्तृक वेद ही तीनों वर्णों के लिए अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में प्रमाण है। उसी में यज्ञ कर्म का कथन किया गया है।[३८९] यज्ञ के द्वारा अपूर्व नामक ध्रुवधर्म प्रकट होता है जो जीव को स्वर्ग में इष्ट विषयों से उत्पन्न फल प्रदान करता है।[३९०] वेदी के मध्य पशुओं का जो वध होता है वह पाप का कारण नहीं है क्योंकि उसका निरूपण शास्त्र में किया गया है इसलिए निश्चित होकर यज्ञ आदि करना चाहिए।[३९१] ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है। इसलिए जो जिस कार्य के लिए रचे गये हैं उस कार्य के लिए उनका विघात करने में दोष[३९२] नहीं है।

वेद के अपौरुषेयत्व का निषेध—ऊपर वेद को जो अकर्तृक कहा गया है उसका खण्डन करते हुए नारद कहता है कि वेद का कोई कर्ता नहीं है, यह बात युक्ति के अभाव में सिद्ध नही होती है जबकि वेद का कर्ता है इस विषय में अनेक हेतु सम्भव हैं। जिस प्रकार दृश्यमान घट पटादि पदार्थ सहेतुक होते हैं उसी प्रकार वेद सकर्ता है इस विषय में भी अनेक हेतु सम्भव हैं।[३९३] चूंकि वेद पद और वाक्यादि रूप हैं तथा विधेय और प्रतिषेध्य अर्थ से युक्त हैं अतः

---

३८५. वही, ११।८८-८९।

३८६. सर्वं पुरुष एवेदं यद्भूतं यद्भविष्यति।
ईशानो योऽमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति, पद्म० ११।९०।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ पुरुष सूक्त—ऋग्वेद।
यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ॥ मनुस्मृति, ५।३९।

३८७. पद्म० ११।९१।
३८८. वही, ११।९२।
३८९. वही, ११।१६७।
३९०. वही, ११।१६८।
३९१. वही, ११।१६९।
३९२. वही, ११।१७०।
३९३. वही, ११।१८९।

कर्तृमान् हैं।[३९४] लोक में यह सुना जाता है कि वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि पुरुषों से हुई है अतः इस प्रसिद्धि का दूर किया जाना शक्य नहीं[३९५] है। यदि तुम्हारा यह विचार हो कि ब्रह्मा आदि वेद के कर्ता नहीं हैं किन्तु प्रवक्ता अर्थात् प्रवचन करने वाले हैं तो वे प्रवचनकर्ता आपके मत से रागद्वेषादि से युक्त ही ठहरेंगे।[३९६] यदि सर्वज्ञ हैं तो वे अन्यथा उपदेश कैसे देंगे, अन्यथा व्याख्यान कैसे करेंगे, क्योंकि सर्वज्ञ होने से उनका मत प्रमाण है। इस प्रकार सर्वज्ञ की सिद्धि[३९७] होती है।

वेद शास्त्र नहीं है—संवर्त द्वारा यज्ञ के विषय में शास्त्र प्रमाण देने पर नारद कहता है कि वेदी के मध्य में पशुओं का जो वध होता है वह पाप का कारण नहीं है, यह कहना अयुक्त है उसका कारण सुनो।[३९८] सर्वप्रथम तो वेद शास्त्र हैं यही बात असिद्ध है क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माता के समान समस्त संसार के लिए हित का उपदेश[३९९] दे। जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्त का निरूपण करना उचित नहीं है परन्तु इस याज्ञिक हिंसा में प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है। उस प्रायश्चित्त का कुछ वर्णन[४००] यह है—

जो सोमयज्ञ में सोम अर्थात् चन्द्रमा के प्रतीक रूप सोमलता से यज्ञ करता है उसका तात्पर्य यह होता है कि वह देवों के वीर सोम राजा का हनन करता है, उसके इस यज्ञ की दक्षिणा एक सौ बारह गौ हैं।[४०१] (गवां शतं द्वादशं वा

---

३९४. पद्म० ११।१९०। ३९५. पद्म० ११।१९१।
३९६. वही, ११।१९२। ३९७. वही, ११।१९३।
३९८. वही, ११।२०८। ३९९. वही, ११।२०९।
४००. वही, ११।२१०। ४०१. वही, ११।२११।

सोमयज्ञ—सोमरस की आहुति देने से यह सोमयाग कहलाता है। सोमयाग ही आर्यों का प्रसिद्ध याग है। पारसी लोगों में यह प्रचलित था। यह बहुत ही विस्तृत दीर्घकालीन तथा बहुसाधनव्यापी व्यापार है। इसके प्रधानतः कालगणना की दृष्टि से तीन प्रकार हैं—
(१) एकाह—एक दिन में साध्य याग।
(२) अहीन—दो दिन से लेकर १२ दिन तक चलने वाला याग।
(३) सत्र—१३ दिनों से प्रारम्भ कर पूरे वर्ष तथा एक हजार वर्षों तक चलने वाला याग। द्वादशाह दोनों प्रकार का होता है—अहीन तथा सत्र। इसके अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम इस प्रकार ७ भेद हैं। इनका विशेष विवरण आचार्य

अतिक्रामति'—कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।१० 'यथारम्भं द्वादश द्वादशाग्नेभ्यः षड् षड् द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रश्चतस्रस्तृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्र इतरेभ्यः' कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।२४) इन एक सौ बारह दक्षिणाओं में से सौ दक्षिणायें देवों के और सोम का शोधन करती हैं, दस दक्षिणायें प्राणों का तर्पण करती हैं, ग्यारहवीं दक्षिणा आत्मा के लिए है[४०२] और जो बारहवीं दक्षिणा है वह केवल दक्षिणा ही है। अन्य दक्षिणाओं का व्यापार तो दोषों के निवारण में होता है।[४०३] पशुयज्ञ में यदि पशु यज्ञ के समय शब्द करे या अपने अगले दोनों पैरों से छाती पीटे तो हे अनल! तुम मुझे इससे होने वाले समस्त दोष से मुक्त करो।[४०४] इत्यादि रूप दोषों के बहुत से प्रायश्चित्त कहे गए हैं इनके विषय में अन्य आगम से प्रकृत में विरोध दिखाई देता है।[४०५]

अपूर्व धर्म का निषेध—यज्ञ से अपूर्व धर्म व्यक्त होता है, यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अपूर्व धर्म तो आकाश के समान नित्य है वह कैसे व्यक्त होगा? और यदि व्यक्त होता ही है तो फिर वह नित्य न रहकर घटादि के समान अनित्य होगा।[४०६] जिस प्रकार दीपक के व्यक्त होने के बाद रूप का ज्ञान उसका फल होता है उसी प्रकार स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल भी अपूर्व धर्म के व्यक्त होने के बाद ही होना चाहिए पर ऐसा नहीं है।[४०७]

यज्ञ सम्बन्धी विविध युक्तियों का खण्डन—ब्रह्मा ने यदि पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए की है तो फिर पशुओं से बोझा ढोना आदि काम क्यों लिया जाता है? इसमें विरोध आता है। विरोध ही नहीं, यह तो चोरी कहलायेगी।[४०८] यदि प्राणियों का वध स्वर्ग प्राप्ति का कारण होता तो थोड़े ही दिनों में यह संसार शून्य हो जाता।[४०९] उस स्वर्ग के प्राप्त होने से भी क्या लाभ है जिससे फिर च्युत होना पड़ता[४१०] है। यदि प्राणियों का वध करने से मनुष्य स्वर्ग

बलदेव उपाध्याय कृत 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' नामक ग्रन्थ से जान लेना चाहिए।

४०२. पद्म० ११।२१२।

४०३. पद्म० ११।२१३।

४०४. पद्म० ११।२१५।

४०५. तथा च यत्पशुर्मायुमकृतोरोदनवाहना (?) पादाभ्यामेमनसस्तस्मास्माद्विश्वस्मान् मुञ्चे त्वनलः ११।२१४ यत्पशुर्मायुमकृतोरोवा पद्भिराहते। अग्निर्मातस्मोदनसो विश्वस्मात् मुञ्चत्वे एनसः (कात्यायन श्रौतसूत्र २५।९) १३।५।

४०६. पद्म० ११।२०६।

४०७. पद्म० ११।२०७।

४०८. वही, ११।२२९।

४०९. वही, ११।२३५।

४१०. वही, ११।२३६।

में जाते हैं तो फिर प्राणिवध की अनुमति मात्र से वसु नरक क्यों गया ?[४११] वसु नरक गया, इसमें प्रमाण यह है कि ब्राह्मण अपने पक्ष के समर्थन में आज भी हे वसो ! उठो स्वर्ग जाओ इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए अग्नि में आहुति डालते हैं। यदि वसु नरक नही गया होता तो उक्त मन्त्र द्वारा आहुति देने की क्या आवश्यकता थी ?[४१२] चूर्ण के द्वारा पशु बनाकर उसका घात करने वाले लोग भी नरक गए हैं। फिर अशुभ संकल्प से साक्षात् अन्य पशु के वध करने वाले लोगों की तो कथा ही क्या है।[४१३]

यज्ञ से देवों की तृप्ति होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि देवों को तो मनचाहा दिव्य अन्न उपलब्ध होता है। जिन्हें स्पर्श, रस, गन्ध और रूप की अपेक्षा मनोहर आहार प्राप्त होता है उन्हें इस मांसादि घृणित वस्तु से क्या प्रयोजन है ? जो रज और वीर्य से उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ों का उत्पत्ति स्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप अत्यन्त कुत्सित है ऐसे मांस को देव लोग किस प्रकार खाते हैं ?[४१४, ४१५]

यदि भूखे देव होम किए गए पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होते हैं तो वे स्वयं ही क्यों नहीं तृप्ति को प्राप्त हो जाते, मनुष्यों के होम को माध्यम क्यों बनाते हैं।[४१६] जो देव ब्रह्मलोक से आकर योनि से उत्पन्न होने वाले दुर्गन्ध युक्त शरीर को खाता है उसको यहाँ कौए, शृगाल और कुत्ते के समान कहा गया है।[४१७]

श्राद्ध, तर्पण आदि के द्वारा मृत व्यक्ति की तृप्ति मानना भी ठीक नहीं। ब्राह्मण लोग लार से भींगे हुए अपने मुख में जो अन्न रखते हैं वह मल से भरे पेट में आकर पहुँचता है। ऐसा अन्न स्वर्गवासियों को किस प्रकार तृप्त करता होगा।[४१८]

जिस प्रकार व्याध के द्वारा किया हुआ वध दुःख का कारण होने से पाप-बन्ध का निमित्त होता है उसी प्रकार वेदी के मध्य में पशु का जो वध होता है वह भी दुःख का कारण होने से पापबन्ध का निमित्त है।[४१९]

मनुष्य देवों की मान्यता का निषेध—शतपथ ब्राह्मण में दो प्रकार के

---

४११. पद्म० ११।२३७।
४१२. वही, ११।२३८-२३९।
४१३. वही, ११।२४०।
४१४. पद्म० ११।२४५-२४६।
४१५. वही, ११।२४७।
४१६. वही, ११।२४९।
४१७. वही, ११।२५०।
४१८. वही, ११।२५१।
४१९. वही, ११।२१६।

देव माने गये हैं—अग्नि आदि हविर्भोजी तथा मनुष्यदेव (ब्राह्मण)। दोनों के लिए यज्ञ का दो विभाग किया गया है। आहुति देवों के लिए और दक्षिणा मनुष्य-देवों के लिए होती है।[420] हविर्भोजी देवों द्वारा मांस भक्षण न किए जाने की पुष्टि करने के बाद मनुष्य देवों के विषय में पद्मचरित में कहा गया है कि लोक में जो मनुष्य देव के रूप में प्रसिद्ध हैं वे साधारणजन के समान ही भोजन के पात्र हैं, अर्थात् भोजन करते हैं, कषाय से युक्त हैं और अवसर पर आंशिक कामादि का सेवन करते हैं। ऐसे देव दान के पात्र कैसे हो सकते हैं। कितनी ही बातों में वे अपने ही भक्त जनों से गये गुजरे अथवा उनके समान हैं तब उन्हें उत्तम फल कैसे दे सकते हैं।[421] यद्यपि वर्तमान में उनके शुभ कर्मों का उदय देखा जाता है तो भी उनसे अन्य दुःखी मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? ऐसे कुदेवों से मोक्ष की इच्छा करना बालू से तेल प्राप्त करने की इच्छा के समान है। अथवा अग्नि की सेवा से प्यास नष्ट करने की इच्छा के समान है। यदि एक लँगड़ा दूसरे मनुष्य को देशान्तर में ले जा सकता है तो इन देवों से दूसरे दुःखी जीवों को भी फल की प्राप्ति हो सकती है।[422]

विविध धार्मिक मान्यतायें

उपर्युक्त मान्यताओं के अतिरिक्त अन्य धार्मिक मान्यतायें भी उस समय थीं, जिनका उल्लेख उनका निषेध करने की दृष्टि से ही यद्यपि पद्मचरित में हुआ है फिर भी उनसे तत्कालीन मान्यताओं पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इन मान्यताओं से युक्त व्यक्तियों या वर्गों को हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं—

१. तापस[423(1)]—ये आश्रम में रहते थे। जटायें धारण करते थे। शरीर पर बल्कल धारण करते थे। स्वादिष्ट फलों को खाते थे। इनके अपने मठ भी थे। इन मठों में वे तोता, मैना, हरिण, गाय आदि पालते थे। इनके यहाँ जटाधारी बालक पढ़ने के लिए आया करते थे। कुछ तापस सूखे पत्ते खाकर तथा वायु का पान कर जीवन व्यतीत करते थे। यह अतिथि सत्कार में निपुण थे। अपने आप उत्पन्न होने वाले धान्य इनका आहार था।[423(2)] बल्कलों को धारण करने के कारण इन्हें बल्कलतापसाः भी कहा गया है। इनकी उत्पत्ति बतलाते हुए कहा गया है कि स्त्री को देखकर उनका चित्त दूषित हो जाता था और जननेन्द्रिय में विकार दिखने लगता था इसलिए उन्होंने

---

४२०. वैदिक साहित्य और संस्कृति (तृ० सं०), पृ० २०८।
४२१. पद्म० १४।८३-८४।
४२२. पद्म० १४।८५-८६।
४२३(१). वही, ४१।११९।
४२३(२). वही, ३३।११२।

जननेन्द्रिय को लँगोट से आच्छादित कर लिया । ये यज्ञोपवीत धारण[४२४] करते थे । भृगु, अंगिशिरस, वन्हि, कपिल, अत्रि तथा विद आदि अनेक ऐसे तापसों का यहाँ नाम आया है ।[४२५]

२. पृथ्वी पर सोने[४२६] वाले—ऐसे व्यक्ति जो पृथ्वी पर सोने में धर्म मानते थे ।

३. भोजन त्यागी[४२७]—जो चिरकाल तक भोजन का त्याग रखते थे ।

४. पानी में डूबे रहने वाले—ऐसे व्यक्ति जो रात दिन पानी में डूबे रहते थे । पद्मचरित में धर्म मानकर ऐसा करने वालों को दुर्गति का पात्र बतलाया है ।[४२९]

५. भृगुपाती—पहाड़ की चोटी से गिरने वाले ।[४३०] जो इसी में धर्म मानते थे ।

६. शरीरशोषिणी क्रिया करने वाले—कुछ व्यक्ति ऐसे थे जो शरीर सुखाने वाली क्रियायें करते थे, जिनसे मरण भी हो सकता था ।[४३१] यह भी कुछ लोगों के धर्म साधन का एक प्रकार था । पद्मचरित में इन सबका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भले ही इस प्रकार की क्रियायें करे, लेकिन पुण्य-रहित अपना मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकता ।[४३२]

७. तीर्थ क्षेत्र में स्नान करने वाले, दान देने वाले तथा उपवास करने वाले—ऐसे व्यक्तियों के विषय में कहा गया है कि यदि ये मांस भोजन करते हैं तो उनके उपर्युक्त कार्य नरक से बचाने में समर्थ नहीं हैं ।[४३३]

८. शिर मुंडाना (शिरसो मुण्डनं), स्नान तथा नाना प्रकार के वेष धारण करना (विलिंग ग्रहण)—इन कार्यों से भी मांसभोजी मनुष्य की रक्षा नहीं हो सकती ।[४३४]

९. अग्नि प्रवेश करने वाले[४३५]—पद्मचरित में ऐसे लोगों के विषय में कहा गया है कि जो इस प्रकार के पाप करते हैं वे आत्महित के मार्ग में मूढ हैं और दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।[४३६]

---

४२४. पद्म० ४।१२७-१२८ ।
४२५. पद्म० ४।१२६ ।
४२६. वही, ७।३१९ ।
४२७. वही, ७।३१९ ।
४२८. वही, ७।३१९ ।
४२९. वही, १०५।२३८ ।
४३०. वही, ७।३१९ ।
४३१. वही, ७।३२० ।
४३२. वही, ७।३२० ।
४३३. वही, २६।६८ ।
४३४. वही, २६।६८ ।
४३५. वही, १०५।२३८ ।
४३६. वही, १०५।२३८ ।

१०. कुलिंगी—जो गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात रहता है, निरन्तर ऊपर की ओर भुजा उठाये रहता है, माह में एक बार भोजन करता है, मृगों के साथ जंगल में शयन करता है, भृगुपात करता है, मौन से रहता है और परिग्रह का त्याग करता है वह मिथ्यादर्शन (विपरीत श्रद्धान) से दूषित होने के कारण कुलिंगी है। ऐसे जीव पैरों से चलकर अगम्य स्थान (मोक्ष) नहीं प्राप्त कर सकते।[४३७]

११. मस्करी[४३८]—

१२. कृतान्त, विधि, दैव तथा ईश्वर को मानने वाले—ऐसे लोगों के मत के विषय में कहा गया है कि पूर्व पर्याय में जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है। मैं पृथक् रहने वाले कृतान्त के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त कराया गया हूँ ऐसा जो मनुष्य का निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है।[४३९]

१३. इसके अतिरिक्त काल, कर्म, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति को मानने वाले लोगों के अस्तित्व का पता भी पद्मचरित से चलता है।[४४०]

अधार्मिक क्रियायें—दया, दम, क्षमा, संवर, (कर्मों का आगमन रोकना) का ज्ञान तथा परित्याग का न होना,[४४१] हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का आश्रय करना,[४४२] दीक्षा लेकर पाप में प्रवृत्ति करना,[४४३] धर्म के बहाने सुख प्राप्त करने के लिए छह काय (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, तथा वनस्पति काय या त्रस) के जीवों को पीड़ा पहुँचाना,[४४४] मारना, ताड़ना, बाँधना, आँकना, तथा दोहना आदि कार्य करना तथा दीक्षा लेकर भी ग्राम, खेत आदि में आसक्त होना,[४४५] वस्तुओं के खरीदने बेचने में आसक्त होना, स्वयं भोजनादि पकाना, दूसरे से याचना करना, स्वर्णादि परिग्रह साथ रखना,[४४६] मर्दन, स्नान, संस्कार, माला, धूप, विलेपन, आदि का सेवन करना,[४४७] हिंसा को निर्दोष कहते हुए शास्त्र वेष तथा चरित्र में दोष लगाना।[४४८] ये सब अधार्मिक क्रियायें कही गई हैं।

कुकृत-सुकृत—अत्यधिक क्रोध करना, परपीड़ा में प्रीति रखना और रूक्ष (कठोर, रूखे) वचन बोलना यह कुकृत है। विनय, श्रुत, शील, दयासहित वचन,

४३७. पद्म० १०५।२३५-२३७। ४३८. पद्म० ४१।६१।
४३९. वही, ९६।९,१०। ४४०. वही, ३१।२१३।
४४१. वही, १०५।२२७। ४४२. पद्म० १०५।२२८।
४४३. वही, १०५।२२९। ४४४. पद्म० १०५।२३०।
४४५. वही, १०५।२३१। ४४६. वही, १०५।२३२।
४४७. वही, १०५।२३३। ४४८. वही, १०५।२३४।

अमात्सर्य और क्षमा ये सुकृत हैं।[४४९] सुकृत के फल से यह जीव उच्च पद तथा उत्तम सम्पत्तियों का भण्डार प्राप्त करता है और पाप के फल से कुगति सम्बन्धी दुःख को पाता है।[४५०]

मुक्ति का साधन—मुक्ति के लिए राग छोड़ना आवश्यक है क्योंकि वैराग्य में आरूढ़ मनुष्य की मुक्ति होती है और रागी मनुष्य का संसार में डूबना होता है। जिस प्रकार कण्ठ में शिला बाँधकर नदी नहीं तैरी जा सकती उसी प्रकार रागादि से संसार नहीं तिरा जा सकता। जिसका चित्त निरन्तर ज्ञान में लीन रहता है तथा जो गुरुजनों के कहे अनुसार प्रवृत्ति करता है ऐसा मनुष्य ही ज्ञान, शील आदि गुणों की आसक्ति से संसार को तैर सकता है।[४५१]

●

४४९. पद्म० १२३।१७७। ४५०. वही, १२३।१७६।
४५१. वही, १२३।७४-७६।

अध्याय ७

पद्मचरित का सांस्कृतिक महत्त्व

पद्मचरित में उत्कृष्ट काव्य गुणों के अतिरिक्त सांस्कृतिक सामग्री विपुल रूप में पाई जाती है। यह एक महत्त्वपूर्ण मानवीय समाजशास्त्र है। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक प्राकृतिक अवस्था में किस प्रकार रहता था इसका सजीव वर्णन उपस्थित करने के साथ-साथ यह तत्कालीन युग की सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक स्थिति पर प्रकाश डालता है। उस समय के लोगों का भोजन-पान क्या था ? उनकी वेषभूषा कैसी होती थी ? लोग अपना मनोरंजन कैसे करते थे ? उनका रहन-सहन किस प्रकार का था ? कौन-कौन से कला-कौशल समाज में विकसित थे ? नगर-निर्माण, शासन-व्यवस्था, युद्ध-संचालन, अस्त्र-शस्त्र, यातायात के साधन इत्यादि कैसे थे ? सामाजिक-पारिवारिक सम्बन्ध किस प्रकार के थे ? विवाह और प्रेम का आदर्श क्या था ? समाज में नारियों का क्या स्थान था ? शिक्षा कहाँ तक विकसित हुई थी ? जीवन के प्रति लोगों का क्या दृष्टिकोण था ? उनकी लौकिक एवं पारलौकिक महत्त्वाकांक्षायें क्या थी ? इन प्रश्नों का उत्तर इनमें सम्यक् रूप से मिलता है। इस ग्रन्थ में जीवन का सभी दृष्टिकोणों से विवेचन किया गया। नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, वन प्रदेश, विभिन्न प्रकार की वनस्पति, जीव-जन्तु, राजा, मंत्री, सेनाध्यक्ष, सैनिक, गृहस्थ, मुनि आदि का इसमे पर्याप्त विवेचन उपलब्ध होता है। अतः सांस्कृतिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है।

भारतीय कथा साहित्य में पद्मचरित का स्थान

भारतीय कथा साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत, पालि, वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में इस प्रकार का साहित्य विपुल रूप से लिखा गया। कथा साहित्य का उदय भारतवर्ष में हुआ और इसने संसार के सामने इस साहित्यिक साधन की उपयोगिता सर्वप्रथम प्रदर्शित की।[1] भारत में कथायें केवल कौतुकमयी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण के लिए भी प्रयुक्त की जाती थीं और यही कारण है कि ब्राह्मणों ने, जैनियों ने तथा बौद्धों ने समान भाव से साहित्य के इस अंग का परिवर्धन और उपबृंहण किया है। बौद्धों के जातकों का साहित्य के इतिहास

१. बल्देव उपाध्याय–संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४२४।

में तथा कला के संवर्धन में विशेष महत्त्व रहा है। कहानी लिखने में जैनियों को शायद ही कोई पराजित कर सके। भारतीय कथा साहित्य में राम-कथा का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् प्रभृति जितने भी भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं उन सबमें सर्वत्र रामकथा की व्यापकता वर्तमान है।[२] बौद्ध और जैन साहित्य में भी रामकथा को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। जैन कवि विमलसूरि रचित पउम चरिय प्राकृत भाषा का रामकथा सम्बन्धी आद्यग्रन्थ है। विमलसूरि के बाद संस्कृत में रविषेण ने पद्म-चरित की रचना की। पद्मचरित संस्कृत में जैन रामकथा का आद्यग्रन्थ होने के साथ-साथ संस्कृत जैन कथा साहित्य का भी आद्यग्रन्थ है। भारतीय कथा साहित्य को उपदेशात्मक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद इस प्रकार तीन भागों[3] में विभक्त किया गया है। इनमें से उपदेश प्रधान कथाओं का यह श्रेष्ठ-भांडार है। उप-देश के साथ-साथ इसमें शिक्षा और मनोरंजन के भी तत्त्व विद्यमान हैं। प्रधा-नता उपदेश की ही है।

राम, लक्ष्मण और रावण को जैन परम्परा में त्रेसठ शलाका पुरुषों (महा-पुरुष, विशिष्ट पुरुष) में स्थान दिया गया है। त्रेसठ शलाका पुरुषों के अन्तर्गत २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण का समावेश होता है। इनका उल्लेख पद्मचरित में किया गया है।[४] राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें बलदेव[५], नारायण[६] और प्रतिनारायण[७] माने गये हैं। यहाँ यह भी ज्ञात होता है कि नारायण बलदेव के साथ मिलकर प्रति-नारायण का वध करते हैं।[८] इसके अतिरिक्त इसमें (पद्मचरित की रामकथा में) निम्नलिखित अन्य विशेषतायें मिलती हैं—

यहाँ हनुमान्, सुग्रीव आदि वानर नहीं किन्तु विद्याधर थे। उनके छत्र आदि में वानर का चिह्न होने के कारण वे वानर कहलाने लगे।[९]

राक्षसों के विषय में कहा गया है कि राक्षसवंशी विद्याधर राक्षस जातीय देवों के द्वीप की रक्षा करते थे इसलिए वह द्वीप राक्षस (द्वीप) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उस द्वीप के रक्षक विद्याधर राक्षस कहलाने लगे।[१०] इस उल्लेख

२. वाचस्पति गैरोला—संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५५।
३. वही, पृ० ८८२।
४. पद्म० पर्व २०।
५. पद्म० २१।१।
६. वही, ३५।४४, १०३।४०।
७. वही, ७३।९९–१०२।
८. वही, ७३।९९–१०२, ७३।११८–१२२ एवं रामकथा, पृ० ६६।
९. पद्म० ६।२१४।
१०. पद्म० ५।३८३, ४३।३८, ३९, ४०।

से रावण आदि राक्षस योनि वाले न होकर राक्षसवंशी विद्याधर राजा ठहरते हैं। पद्मचरित के पंचम पर्व में राक्षस वंश की कथा दी गई है। तदनुसार मनोवेग नामक राक्षस के राक्षस नाम का ऐसा प्रभावशाली पुत्र हुआ कि उसके नाम से उसका वंश ही राक्षस वंश कहलाने लगा।[११]

असुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि इन्द्र नामक विद्याधर ने इन्द्र के समान विभूति की रचना की। तदनुसार विद्याधर के असुर[१२] नामक नगर में जो विद्याधर रहते थे वे पृथ्वी पर असुर[१२] नाम से प्रसिद्ध हुए। यक्षगीत नगर के विद्याधर यक्ष[१३] कहलाए। किन्नर नामक नगर के निवासी किन्नर[१४] कहलाए और गन्धर्व नगर के रहने वाले विद्याधर गन्धर्व[१५] नाम से प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार अश्विनीकुमार, विश्वावसु और वैश्वानर आदि विद्याबल से समन्वित (विद्याधर) थे। ये देवों के समान क्रीड़ा करते थे।[१६]

रावण का प्रारम्भिक नाम दशानन था। हजार नागकुमार द्वारा रक्षित एक हार को रत्नश्रवा के केकसी से उत्पन्न प्रथम पुत्र ने खींच लिया। उस हार में बड़े-बड़े स्वच्छ रत्न लगे हुए थे। उसमें असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित हो रहे थे इसलिए उस बालक का नाम दशानन नाम रखा गया।[१७] रावण नाम उसका बाद में पड़ा जब कि बालि मुनिराज के प्रभाव से वह कैलास पर्वत नहीं उठा सका। पर्वत के बोझ से वह दबने लगा। उस समय चूंकि उसने सर्वप्रयत्न से चिल्ला कर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर रावण इस नाम को प्राप्त हुआ।[१८]

डॉ० हीरालाल ने पउमचरिय की कतिपय[१९] विशेषताओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार पद्मचरित पउमचरिय का ही पल्लवित अनुवाद है अतः पउमचरिय की उन विशेषताओं को पद्मचरित की भी विशेषतायें कहा जा सकता है। पद्मचरित को देखने पर इन विशेषताओं की पुष्टि भी होती है। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

---

११. पद्म० ५।३७८।
१२. वही, ७।११७।
१३. वही, ७।११८।
१४. वही, ७।११८।
१५. वही, ७।११८।
१६. वही, ७।११९।
१७. वही, ७।२१३, २१४, २२२।
१८. सं च सर्वं यत्नेन कृत्वा रावितवान् जगत्।
यतस्ततो गतः पश्चात्प्रख्यातां समस्तगाम्॥ पद्म० ९।१५३।
१९. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान (डॉ० हीरालाल), पृ० १३२।

सीता यथार्थ में जनक की ही औरस कन्या थी, उसका एक भाई भामंडल भी था।[२०] राम ने म्लेच्छों द्वारा किए गए आक्रमण के समय जनक की सहायता की, उसी के उपलक्ष्य में जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करने का निश्चय किया।[२१] सीता के भ्राता भामंडल को उसके बचपन में ही एक विद्याधर हर ले गया था।[२२] युवक होने पर तथा अपने माता-पिता से अपरिचित होने के कारण उसे सीता का चित्रपट देखकर उसपर मोह उत्पन्न हो गया था, वह उसी से अपना विवाह करना चाहता था। इसी विरोध के परिहार के लिए धनुष परीक्षा का आयोजन किया गया जिसमें राम की विजय हुई।[२३] दशरथ ने जब वृद्धावस्था आयी जान राज्य भार से मुक्त हो वैराग्य धारण करने का विचार किया, तभी गम्भीर स्वभाव वाले भरत को भी वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार अपने पति और पुत्र दोनों के साथ वियोग की आशङ्का से भयभीत होकर केकया ने अपने पुत्र को गृहस्थी में बाँधने की भावना से उसे ही राज्य पद देने के लिए दशरथ से एकमात्र वर माँगा और राम दशरथ की आज्ञा से नहीं, किन्तु स्वेच्छा से वन को गए।[२४] इस प्रकार कैकेयी (केकया) को किसी दुर्भावना के कलंक से बचाया गया है। रावण के आधिपत्य को स्वीकार करने के प्रस्ताव को ठुकराकर बालि स्वयं अपने लघु भ्राता सुग्रीव को राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गया था, राम ने उसे नहीं मारा।[२५] रावण को यहाँ ज्ञानी और व्रती चित्रित किया गया है। वह सीता का अपहरण तो कर ले गया, किन्तु उसने उसकी इच्छा के प्रतिकूल बलात्कार करने का कभी विचार या प्रयत्न नही किया और प्रेम की पीड़ा से घुलता रहा। जब मन्दोदरी ने रावण के सुधार का कोई दूसरा उपाय न देख सच्ची पत्नी के नाते उसे बलपूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण कर लेने का सुझाव दिया तब उसने यह कहकर उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि मैंने अनन्तवीर्य केवली के समीप किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी संभोग न करने का व्रत ले लिया है, जिसे मैं कभी भंग न करूँगा।[२६] रावण के स्वयं अपने मुख से इस व्रत के उल्लेख द्वारा कवि ने न केवल उसके चरित्र को उठाया है, किन्तु सीता के अखंड पातिव्रत का प्रमाण उपस्थित कर दिया है। रावण की मृत्यु यहाँ राम के हाथ से नहीं अपितु लक्ष्मण के हाथ से कही गई है।[२७] राम के पुत्रों के नाम यहाँ अनङ्गलवण

२०. पद्म० २६।१२१।
२१. वही, २७।९२।
२२. वही, २६।१२१।
२३. वही, २८।१६९-१७१, २४१-२४३।
२४. वही, पर्व ३१।
२५. वही, ९।५०-९०।
२६. वही, ४६।५०-५२, ५५, ६५-६६।
२७. वही, ७६।२८-३४।

और मदनाङ्कुश कहे गए हैं।[२८] इसके अतिरिक्त अन्य कथात्मक विशेषताएँ भी पद्मचरित में मिलती हैं जिनमें से अधिकांश विशेषताओं की ओर संकेत डॉ० रेवरेंड फादर कामिल बुल्के ने अपने ग्रन्थ रामकथा (उत्पत्ति और विकास) में पउमचरिय के प्रसंग से कर दिया है। इस ग्रन्थ में पउमचरिय और पद्मचरित को जिन मान्यताओ में वैशिष्ट्य है, उन्हें भी कह दिया गया है, अतः उनको यहाँ दुहराना पिष्टपेषण ही होगा। जैन रामकथा ने ब्राह्मण रामकथाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया। उनमें से कतिपय प्रसगो की ओर बुल्के साहब ने सकेत किया है। ये प्रसंग निम्नलिखित[२९] हैं जो पद्मचरित में भी आए हैं—

सीता स्वयवर के अवसर पर अन्य राजाओं की उपस्थिति में राम द्वारा धनुर्भङ्ग।[३०] कैकेयी का पश्चात्ताप।[३१]

लका मे विभीषण से हनुमान् की भेंट—[३२] अर्वाचीन रामकथाओं में विभीषण को रामभक्त के रूप में चित्रित किया गया है। आनन्द रामायण में लिखा है कि रावण की लका में सीता की खोज करते हुए हनुमान् ने विभीषण को कीर्तन सलग्न पाया था। रामचरित मानस, गुजराती रामायणसार आदि रचनाओ मे भी हनुमान् तथा विभीषण की भेंट का वर्णन किया गया है। वास्तव में जैन रामायणो में पहले-पहल इस भेंट का उल्लेख मिलता है। पउमचरिय तथा पद्मचरित के अनुसार विभोषण ने लका मे हनुमान् का स्वागत किया था तथा सीता को लौटाने के लिए रावण से आग्रह करने की प्रतिज्ञा की थी।[३३]

लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा (चन्द्रनखा) के पुत्र का वध—[३४] वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड में जो शम्बूक वध का वृत्तान्त मिलता है, इसके अनुसार नारद से यह जानकर कि शूद्र की तपस्या के कारण किसी ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु हुई, राम पुष्पक पर चढ़कर शूद्र का पता लगाते हैं तथा उसका वध भी करते हैं।[३५] पउमचरिय (पद्मचरित में भी) इस कथा को एक दूसरा रूप दिया गया है—खरदूषण तथा चन्द्रनखा का पुत्र शम्बूक सूर्यहास नामक खड्ग प्राप्त करने के उद्देश्य से साधना करता है। १२ वर्ष की तपस्या के पश्चात् यह खड्ग प्रकट

---

२८ पद्म० १००।२१। २९. वही, रामकथा, पृ० ७३५।
३० वही, पर्व २८। ३१. वही, ३२।१०४-११०।
३२. वही, ५३।१-१२।
३३ वही, ५३।१-१२, सम्मति सन्देश, पृ० ११ वर्ष १५ अंक ३।
३४. वही, पर्व ४३।
३५. सम्मति सन्देश, पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३ (मार्च १९७०)।

होता है। संयोग से लक्ष्मण वहाँ पहुँचकर उसे देखते हैं तथा उसी हाथ में लेकर बाँस को काटते समय शम्बूक का सिर भी काट लेते हैं। चन्द्रनखा अपने पुत्र से मिलने आती है तथा उसे मृत देखकर विलाप करते-करते वन में घूमने लगती है। अन्त में वह राम लक्ष्मण के पास पहुँचकर उन पर आसक्त हो जाती है। दोनों के अस्वीकार करने पर वह अपने पति खरदूषण तथा अपने भाई रावण को शम्बूक वध की सूचना देती है। इस प्रकार लक्ष्मण द्वारा शम्बूक वध सीता हरण तथा राम रावण युद्ध का कारण बन जाता है।[३६]

उपर्युक्त वृत्तान्त न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ अनेक रामकथाओं में पाया जाता है। उदाहरणार्थ—आनन्दरामायण, तेलगू द्विपद रामायण, कन्नड़ी तोरवे रामायण, जावा का सेरत काण्ड, मलय का सेरीराम, श्याम की रामकीर्ति।[३७]

युद्ध से पूर्व राक्षस-राक्षसियों के संभोग शृंगार का वर्णन।[३८]

राम सेना से लवकुश का युद्ध[३९]—वाल्मीकि रामायण में राम के अश्वमेध की यज्ञ भूमि में कुश और लव रामायण का गान करते हैं और इस तरह राम अपने पुत्रों का परिचय प्राप्त करते हैं।[४०] बहुत सी परवर्ती रामकथाओं में कुश और लव का राम सेना तथा राम से भी युद्ध का वर्णन किया गया है। उस युद्ध के भिन्न-भिन्न कारण बतलाए जाते हैं, किन्तु सबसे प्रचलित कारण यह है कि कुश लव ने राम के अश्वमेध का घोड़ा बाँध लिया था। कुश लव का युद्ध वर्णन कथासरित्सार, उत्तररामचरित, जैमिनीय अश्वमेध, पद्मपुराण का पाताल खण्ड, रामलिंगामृत का कृत्तिवास रामायण, रामचन्द्रिका, गुजराती रामायणसार, काश्मीरी रामायण, कम्बोडिया की रामकीर्ति तथा श्याम की रामकीर्ति आदि में मिलता है।[४१] विमलसूरि प्राचीनतम रचना है, जिसमें सीता के पुत्रों के युद्ध का वर्णन है। पद्मचरित में भी यह वर्णन इसी रूप में मिलता है। इसके अनुसार लवण (अनङ्गलवण) और अंकुश (मदनाङ्कुश) अपनी माता के साथ पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ के यहाँ रहते हैं। उनके विवाह के बाद नारद उनके पास जाकर उन्हें उनकी माता के परित्याग की कथा सुनाते हैं। इस पर दोनों सेना लेकर अयोध्या पर आक्रमण करते हैं। अन्त में लवण राम

---

३६. पद्म० पर्व ४३,४४, सन्मति सन्देश पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३।

३७. सन्मति सन्देश, पृ० १३ वर्ष १५ अंक ३।

३८. पद्म० पर्व ७३।

३९. वही, पर्व १०२-१०३।

४०. सन्मति सन्देश, पृ० १३, वर्ष १५ अंक ३।

४१. वही, पृ० १३।

से युद्ध करते हैं तथा अंकुश लक्ष्मण से युद्ध करते हैं। युद्ध अनिश्चित होने पर सिद्धार्थ लवण और अंकुश का परिचय देता है। इस पर राम अपने पुत्रों से मिलकर दोनों को अपने पास रखते हैं।[४२]

रावण के चरित्र में अन्तर—रामभक्ति के पल्लवित होने के पश्चात् रावण के चरित्र चित्रण में अन्तर आ गया है और यह कहा गया है कि रावण ने मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से सीता का हरण किया था। राक्षस होने के कारण वह राम-भक्ति का अधिकारी नहीं था, किन्तु वह राम के द्वारा मारे जाने पर ही परमपद प्राप्त कर सकता था। अर्वाचीन रामकथाओं के अनुसार रावण ने इसी उद्देश्य से सीता का अपहरण किया था। अध्यात्म रामायण में इसका स्पष्ट शब्दों मे उल्लेख किया गया है कि रावण ने सीता का माता के समान पालन किया था।[४३] उन रचनाओं के शताब्दियों पूर्व ही विमलसूरि और रविषेण ने रावण का चरित्र ऊपर उठाने का प्रयास किया था। इन दोनों ग्रन्थों के अनुसार रावण में केवल एक दुर्बलता है। वह सीता के प्रति आसक्ति है। वह एक भक्तिमय जैनधर्मावलम्बी है जो नलकूबर की पत्नी उपरम्भा का प्रेम प्रस्ताव अस्वीकार करता है और किसी केवली का उपदेश सुनकर यह धर्म-प्रतिज्ञा करता है कि मैं विरक्त परनारी का स्पर्श नही करूँगा।[४४] अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वह सीता का राम के प्रति प्रेम देखकर सीता हरण पर हार्दिक पश्चात्ताप करता है।[४५]

उपर्युक्त वर्णन से यह नहो समझना चाहिए कि पद्मचरित में केवल रामकथा ही कही गई है। रामकथा तो एक आधार है। उसके माध्यम से इसमें भगवान् महावीर, राजा श्रेणिक, कुलकर, ऋषभदेव, राजा श्रेयांस और सोम, भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, अजितनाथ भगवान्, सगर चक्रवर्ती, भावन वणिक्, सहस्र-नयन तथा पूर्णधन, आवलि तथा चन्द्र, रम्भ, भीम, सुभीम, मेघवाहन, सगर के पुत्र, महारक्ष विद्याधर, राजा श्रीकण्ठ, विद्युत्केश, किष्किन्ध और अन्ध्रकरूढि, माली-सुमाली, राजा सहस्रार, इन्द्र विद्याधर, वैश्रवण, दशानन, भानुकर्ण, विभीषण, मन्दोदरी, सुरसुन्दर, इन्द्रजित्, हरिषेण चक्रवर्ती, बाली, खरदूषण, विराधित, सुग्रीव, साहसगति विद्याधर, सहस्ररश्मि, राजा वसु, नारद-पर्वत, नारद,

---

४२. पद्म० पर्व १०२, १०३।

४३. सन्मति सन्देश, वर्ष १५, अंक ३, पृ० १२।

४४. वही, पद्म० १२।९७—१५२, १४।३७१, सन्मति सन्देश, पृ० १२ वर्ष १५ अंक ३।

४५. पद्म० ७२।४९—६९, सन्मति सन्देश पृ० १२ वर्ष १५ अंक ३।

महत्त्व, हरिवाहन, सुमित्र और प्रभव, राजा मधु, नलकूबर, कुलकान्ता, अनन्तबल मुनिराज, उपवना कन्या, सहस्रभट पुरुष, राजा महेन्द्र, अंजना-पवनंजय, हनुमान्, वरुण, चौबीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, शान्ति, कुन्थु, अर चक्रवर्ती, सनत्कुमार चक्रवर्ती, सुभूम चक्रवर्ती, महापद्म चक्रवर्ती, जयसेन चक्रवर्ती, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, आठवें बलभद्र राम, मुनिसुव्रत भगवान्, वज्रबाहु, कीर्तिधर मुनि, सुकौशल मुनि, हिरण्यगर्भ, मांसभक्षी सुदास, दशरथ, जनक, केकया, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, एर ब्राह्मण, पिङ्गल ब्राह्मण, कुण्डलमण्डित, भामण्डल, सीता, म्लेच्छों का आगमन, चन्द्रगति विद्याधर, सुप्रभा रानी, अतिभूति, उपास्ति गृहस्थ, वज्रकर्ण, सिंहोदर, बालखिल्य, कल्याणमाला, कपिल ब्राह्मण, वनमाला, अतिवीर्य, जितपद्मा, देशभूषण-कुलभूषण मुनि, उदित और मुदित, अग्निप्रभदेव, जटायु, शम्बूक, चन्द्रनखा, रत्नजटी विद्याधर, यक्षदत्त, विनयदत्त, क्षुद्र, आत्मश्रेय, चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरङ्गमाला, लंकासुन्दरी, गिरि और गोभूति, कुरुविन्दा और उसके पुत्र अहिदेव महीदेव, हस्त प्रहस्त, नल नील, अंगद, चन्द्रप्रतिभ, विशल्या, इन्द्रजित और मेघवाहन के पूर्व भव, मन्दोदरी के पूर्वभव, अभिमाना, श्रीवर्धित तथा उसके परिवार के पूर्वभव, त्रिलोकमण्डन हाथी, सूर्योदय और चन्द्रोदय, कृतान्तवक्त्र सेनापति, अचल, अर्हद्दत्त सेठ, मनोरमा, सीता के जनापवाद, वज्रजंघ, अनङ्गलवण और मदनांकुश, कनकमाला के विवाह, राम लक्ष्मण तथा सीता और रावण के पूर्वभव, प्रियङ्कर और हितङ्कर, विद्युद्वक्त्रा और सर्वभूषण, सीता जी की अग्नि परीक्षा, मधु कैटभ, मधु चन्द्राभा, लक्ष्मण के पुत्र, वज्रमाली, सीतेन्द्र द्वारा रावण और लक्ष्मण के जीव को संबोधन, रावण और लक्ष्मण के आगामी भव तथा सीता के आगामी भव की कथायें कही गई हैं। ये सभी कथायें संस्कृत जैन कथा साहित्य की बहुमूल्य निधि है। इनसे प्रेरणा प्राप्त कर मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक अभ्युदयों की सिद्धि कर सकता है।

पद्मचरित और हरिवंश पुराण

आचार्य जिनसेन ने शक सं० ७०५ (विक्रम सं० ८४०) में[४६] हरिवंश पुराण की रचना की थी। इस रचना में उन्होंने अन्य आचार्यों के साथ रविषेण की भी प्रशंसा की है। उनकी कविता के विषय में वे लिखते हैं—रविषेणाचार्य की काव्यमयी मूर्ति सूर्य की मूर्ति के समान लोक में अत्यन्त प्रिय है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य की मूर्ति 'कृतपद्मोदयोद्योता' है अर्थात् कमलों का विकास और उद्योत (प्रकाश) करने वाली है उसी प्रकार रविषेण की काव्यमयी मूर्ति भी 'कृतपद्मो-

---

४६. हरिवंश पुराण, ६६।५२।

पयोद्योता' अर्थात् श्री राम के अभ्युदय का प्रकाश करने वाली है और सूर्य की मूर्ति जिस प्रकार प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती है उसी प्रकार रविषेणाचार्य की काव्यमयी मूर्ति भी प्रतिदिन परिवर्तित (अभ्यस्त) होती रहती है।[४७] इससे स्पष्ट है कि जिनसेन अवश्य ही रविषेण की काव्यात्मकता से प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त जिनसेन के पुराण की वर्णन शैली रविषेण के पद्मचरित की वर्णन-शैली से अत्यधिक प्रभावित है। उदाहरणतः—

पद्मचरित के प्रथम पर्व में मङ्गलाचरण (तीर्थङ्करादि की स्तुति) सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा, पूर्वाचार्यों की परम्परा, ग्रन्थ का अवतरण, ग्रन्थ के वर्णनीय अधिकार तथा निरूप्यमाण विषयों का सूत्र रूप मे संकलन है। हरिवंश पुराण के प्रथम सर्ग में मङ्गलाचरण (तीर्थंकरादि की स्तुति), पूर्वाचार्यों का स्मरण सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निन्दा, ग्रन्थकर्तृ प्रतिज्ञा, ग्रन्थ के वर्णनीय अधिकारों तथा निरूप्यमाण विषयों का सूत्र रूप में संकलन है।

पद्मचरित में भगवान् महावीर का राजगृह के समीप विपुलाचल पर्वत पर आगमन होता है। राजा श्रेणिक भगवान् के दर्शन के लिए जाता है। वहाँ जाकर दूसरे दिन गौतम स्वामी (भगवान् महावीर के प्रमुख गणधर) से रामकथा श्रवण की इच्छा प्रकट करता है। गौतम स्वामी इसके उत्तर में रामकथा कहते हैं।[४८] हरिवंश पुराण मे भगवान् महावीर विहार करते हुए विपुलाचल पर आते हैं। राजा श्रेणिक चतुरंग सेना के साथ भगवान् के समवसरण मे पहुँचता है। वहाँ वह गौतम गणधर से तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलभद्रों, नारायणों तथा प्रतिनारायणों के चरित, वंशों की उत्पत्ति तथा लोकालोक के विभाग के निरूपण के लिए प्रार्थना करता है।[४९] अन्तर केवल यही है कि पद्मचरित मे भगवान् महावीर और उनके जीवन, माहात्म्य आदि का संक्षिप्त वर्णन ही दिया गया है, जबकि हरिवंश पुराण में भगवान् महावीर के जन्म से लेकर विपुलाचल पर्वत तक पहुँचने की घटनाओं का वर्णन विस्तार से किया गया है।[५०]

पद्मचरित में लोक-रचना का अत्यन्त संक्षिप्त रूप से विशेषकर तीसरे पर्व में वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में लोक रचना का विस्तृत रूप से चतुर्थ से सप्तम सर्ग तक वर्णन किया गया है।

---

४७. कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता। मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया॥—हरिवंशपुराण १।३४।

४८. पद्म० पर्व २, ३। ४९. हरिवंश पुराण सर्ग २, ३।

५०. पद्म० पर्व २, ३, हरिवंश पुराण सर्ग २, ३।

पद्मचरित में क्षेत्र-काल निरूपण के पश्चात् भोगभूमि, चौदह कुलकर, अंतिम कुलकर नाभिराय तथा उनके यहाँ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म, भगवान् के भरत बाहुबली आदि पुत्रों का वर्णन, भरत की दिग्विजय, भगवान् की दीक्षा लेना तथा निर्वाण प्राप्त करना आदि का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया गया है।[५१] हरिवंश पुराण में क्षेत्र-काल निरूपण के पश्चात् भोगभूमि, चौदह कुलकर, अन्तिम कुलकर नाभिराय तथा उनके यहाँ प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का जन्म, भगवान् के भरत बाहुबली आदि पुत्रों का वर्णन, भरत की दिग्विजय, भगवान् का दीक्षा लेना तथा निर्वाण प्राप्त करना आदि का विस्तृत[५२] रूप से वर्णन किया गया है। पद्मचरित के पञ्चम पर्व में चार महावंशों का वर्णन कर अजितनाथ भगवान् तथा सगर चक्रवर्ती का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण के त्रयोदश सर्ग में सूर्यवंश और चन्द्रवंश के अनेक राजाओं का समुल्लेख, अजितनाथ भगवान् तथा सगर चक्रवर्ती का वर्णन किया गया है।

पद्मचरित के इक्कीसवें पर्व में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया गया है। हरिवंश पुराण के षोडश सर्ग में भगवान् मुनिसुव्रतनाथ का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

पद्मचरित के एकादश पर्व में यज्ञ की उत्पत्ति का आरम्भिक इतिहास बतलाते हुए अयोध्या के क्षीरकदम्बक गुरु, स्वस्तिमती नामक उनकी स्त्री, राजा वसु तथा नारद और पर्वत का अजैर्यष्टव्यं शब्द के अर्थ को लेकर विवाद, वसु द्वारा मिथ्या निर्णय तथा उसका पतन निरूपित किया गया है। हरिवंश पुराण के सत्रहवें सर्ग में भी राजा वसु, क्षीरकदंबक के पुत्र और नारद का 'अजैर्यष्टव्यं' वाक्य के अर्थ को लेकर विवाद, वसु द्वारा मिथ्या पक्ष का समर्थन, वसु का पतन और नरक गमन का निरूपण किया गया है।

पद्मचरित के बाईसवें पर्व में नरमांसभक्षी सौदास की कथा कही गई है। हरिवंश पुराण के चौबीसवें सर्ग में भी मनुष्यभक्षी सौदास की कथा है, लेकिन इन दोनों ग्रन्थों की कथाओं में कुछ भेद है। पद्मचरित में सुदास को राजा नघुष[५३] का पुत्र तथा हरिवंश पुराण में इसे काञ्चनपुर के राजा जितशत्रु का[५४] पुत्र कहा गया है। पद्मचरित में अंत में वह किसी साधु से अणुव्रत का[५५] धारी हो अंत में महावैराग्य से युक्त हो तपोवन को[५६] चला जाता है। हरिवंश पुराण में उसकी मृत्यु वसुदेव के हाथों से होती है।[५७]

---

५१. पद्म० पर्व ३, ४।
५२. हरिवंश पुराण सर्ग ७-१३।
५३. पद्म० २२।१३९।
५४. हरिवंश पुराण २४।११-१३।
५५. पद्म० २२।१४८।
५६. वही, २२।१५२।
५७. हरिवंश पुराण सर्ग २४।

पद्मचरित में विशेषकर आठवें बलभद्र राम और आठवें नारायण लक्ष्मण तथा प्रतिपक्षियों के जीवन तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण में नवें बलभद्र और नवें नारायण तथा उनके प्रतिपक्षियों से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है।

पद्मचरित में राम लक्ष्मण के पिता दशरथ का रावण के भय से राज्यभार मन्त्रियों को सौंपकर इधर-उधर परिभ्रमण, उनका अनेक राजाओं से युद्ध तथा केकया नामक कन्या की प्राप्ति का वर्णन है। हरिवंश पुराण में कृष्ण, बलदेव के पिता वसुदेव अपने बड़े भाई समुद्रविजय द्वारा महल के बाहर न घूमने की पाबन्दी के कारण छल से नगर के बाहर निकलकर अनेक देशों में भ्रमण कर वीरोचित कार्य करते हुए अनेक सुन्दर राजकुमारियों के साथ विवाह करते हैं। हरिवंशपुराण के १९ से ३१ तक १३ सर्गों में वसुदेव की इसी प्रकार की चेष्टाओं तथा तत्सम्बन्धी अन्य कथाओं का उल्लेख किया गया है जबकि पद्मचरित मे केवल २३वें और २४वें पर्व में ही राजा दशरथ की उपर्युक्त चेष्टाओं का वर्णन है। अन्त में जिस प्रकार दशरथ कैकयी के स्वयंवर के बाद घर पर आ जाते हैं उसी प्रकार वसुदेव भी रोहिणी के स्वयंवर के बाद घर पर आ जाते हैं। पद्मचरित के २६ वें पर्व में राजा जनक के नवजात शिशु भामण्डल को पूर्व भव के वैर के कारण महाकाल नाम का असुर हरकर ले जाता है। बाद में दयार्द्र होकर उसे आकाश से नीचे गिरा देता है। हरिवंशपुराण के ४३ वें सर्ग मे श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को पूर्वभव का वैरी धूमकेतु नाम का असुर हरकर ले जाता है और खदिराटवी में यक्षशिला के नीचे दबा आता है। बाद में पुण्य योग से दोनों को विद्याधर राजा अपने यहाँ ले जाते हैं। पद्मचरित में भामण्डल अपनी बहिन सीता के चित्रपट को देख अज्ञानवश उसके प्रति आकर्षित हो जाता है। अन्त में इसी आकर्षण के कारण यथार्थ स्थिति जान वह अपने माता-पिता आदि से मिलता है।[५८] हरिवंश पुराण में कालसंवर की स्त्री कनकमाला, जिसने कि पुत्रवत् प्रद्युम्न का पालन किया था, पूर्वजन्म के मोहवश उसपर आसक्त हो जाती है। इसी आधार पर प्रद्युम्न यथार्थ का पता लगाकर अपने माता पिता आदि से मिलता है।[५९]

पद्मचरित के १०९ वें पर्व में प्रद्युम्न तथा उसके भाई शाम्ब के पूर्वभवों का वर्णन है। हरिवंश पुराण के ४३ वें सर्ग में प्रद्युम्न तथा शाम्ब की कथा का निरूपण इसी प्रकार किया गया है।

पद्मचरित के अट्ठाईसवें पर्व में नारद सीता के महल में जाते हैं। सीता

५८. पद्म० २८, २९, ३०।

५९. हरिवंश पुराण सर्ग ४७।

उस समय दर्पण में अपना मुख देख रही थी। नारद की प्रतिकृति दर्पण में देख वह भयभीत हो उठी। इस पर क्रुद्ध हो नारद ने भामण्डल को सीता प्राप्ति के लिए उकसाया। हरिवंश पुराण के ५४ वें सर्ग में नारद द्रौपदी के घर आते हैं। द्रौपदी उस समय आभूषण धारण करने में व्यस्त थी इसलिए नारद ने कब प्रवेश किया और कब निकल गये यह वह नहीं जान सकी। इसपर नारद ने पूर्वधातकी खण्ड के भरत क्षेत्र के एक राजा पद्मनाभ के पास जाकर द्रौपदी के सौंदर्य का वर्णन किया, जिससे उसने द्रौपदी का हरण कर लिया।

पद्मचरित के बीसवें पर्व में तीर्थङ्कर तथा अन्य शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण के ६०वें सर्ग में त्रेसठ शलाकापुरुषों का वर्णन किया गया है, जो पद्मचरित से मिलता जुलता है तथा विस्तार में पद्मचरित से कुछ अधिक है। इसके अतिरिक्त यहाँ भविष्यत्कालीन त्रेशठ शलाकापुरुषों की नामावली भी दी गई है। पद्मचरित में राम लक्ष्मण का राम के पुत्रों लव और कुश के साथ युद्ध होता है। युद्ध में राम लक्ष्मण उनको जीतने में असमर्थ रहते हैं तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ नाम का क्षुल्लक उनका परिचय दे कर मिलन कराता है।[६०] हरिवंश पुराण में भी प्रद्युम्न का कृष्ण बलदेव के साथ युद्ध होता है। कृष्ण बल्देव उसको जीतने में असमर्थ रहते हैं, उसी समय रुक्मिणी के द्वारा प्रेरित नारद आकर पिता पुत्र का सम्बन्ध बतला दोनों का मिलन कराता है।[६१]

पद्मचरित में राम कृतान्तवक्त्र सेनापति के दीक्षा लेने के समय उससे कहते हैं कि यदि तुम अगले जन्म में देव होओ तो मोह में पड़े हुए मुझे सम्बोधित करना न भूलना।[६२] हरिवंश पुराण में बलदेव सिद्धार्थ नामक सारथि से जो उनका भाई था, उसके दीक्षा लेते समय कहते हैं कि कदाचित् में मोहजन्य व्यसन को प्राप्त होऊँ तो मुझे सम्बोधित करना।[६३] बाद में कहे अनुसार दोनों ने मोह के समय दोनों (राम और बलदेव) की सहायता की।[६४] यहाँ पर राम और बलदेव की चेष्टाओं में बहुत कुछ समानता है।

धर्म की निरूपण की पद्धति दोनों ग्रन्थों में एक सी है। इतना विशेष है कि पद्मचरित में यह संक्षेप रूप में और हरिवंश पुराण में विस्तृत रूप से मिलती है।

---

६०. पद्म० पर्व १०२, १०३।

६१. हरिवंश पुराण ४७।१२६-१३२।

६२. पद्म० १०७।१४-१५।

६३. हरिवंश पुराण ६१।४१।

६४. पद्म० पर्व ११८, हरिवंश पुराण सर्ग ६३।

पद्मचरित के प्रत्येक पर्व के अन्तिम श्लोक में रवि शब्द आता है। हरिवंश पुराण के प्रत्येक सर्ग के अन्त में जिन शब्द आता है।

पद्मचरित और पउमचरिउ

कवि स्वयम्भू ने पउमचरिउ की रचना की। डा० देवेन्द्रकुमार ने इनका काल आठवीं शताब्दी का प्रथम चरण[६५] निर्धारित किया है। कवि की उक्त रचना का आधार आचार्य रविषेण कृत पद्मचरित है। पउमचरिउ की पढमो संधि (प्रथम संधि) में कवि ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है। पूर्वाचार्यों की परम्परा भी कवि ने वही दी है जो रविषेण ने अपने पद्मचरित में दी है। इतना विशेष है कि उसमें रविषेण का नाम जोड़कर बाद में अपने नाम का निर्देश किया है। तदनुसार भगवान् महावीर के मुख पर्वत से निकलकर क्रम से बहती हुई[६६] रामकथा रूपी नदी में क्रमशः आचार्य इन्द्रभूति, गुणों से अलंकृत सुधर्मा, संसार से विरक्तप्रभव, कीर्तिधर, उत्तरवाग्मी, रविषेण और स्वयम्भू को रामकथा रूपी नदी में अवगाहन करने का अवसर मिला[६७] यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रविषेण को उत्तरवाग्मी मुनि के साक्षात् मुख से रामकथा प्राप्त न होकर उनके द्वारा लिखी हुई रामकथा प्राप्त हुई थी। गुरु परम्परा उत्तरवाग्मी के बहुत बाद की है, जो इस प्रकार प्राप्त होती है—इन्द्रगुरु के शिष्य दिवाकरयति थे, उनके शिष्य लक्ष्मणसेन मुनि थे और लक्ष्मणसेन के शिष्य रविषेण थे।[६७] (अ) कथानक के लिए तो स्वयम्भू ने पूरी तरह से पद्मचरित का अनुसरण किया ही

६५. पउमचरिउ—भाग १ (महाकवि स्वयम्भू) सम्पादक अनु० डा० देवेन्द्रकुमार जैन, (ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९५७)।

६६. वद्धमाण मुह कुहर विणिग्गय। रामकहाणइ एह कमागय ॥
—पउमचरिउ १।२।१।

६७. एह रामकह सरि सोहन्ती। गणहर देवेंहि दिट्ठ वहन्ती ॥
पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं। पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं ॥
पुणु पहवें संसाराराएं। कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं ॥
पुणु रविषेणायरिय-पसाएं। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ॥
—पउमचरिउ १।२।६-९।

वर्द्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम्।
इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मधारणीभवम्।
प्रभवं क्रमतः कीर्ति ततोऽनु (नु) त्तरवाग्मिनम्।
लिखितं तस्य संप्राप्य रवेर्यत्नो यमुद्गतः ॥—पद्म० १।४१-४२।

६७ (अ). आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिः।
तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदःशिष्यो रविस्तु स्मृतम् ॥

है जो दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है। साथ ही रविषेण की अनेक काव्यात्मक कल्पनाओं आदि में अपनी कल्पना का पुट देकर इसे विशिष्टता प्रदान की है। रविषेण के दाय को स्वयम्भू ने कितने अधिक रूप में ग्रहण किया, यह तो दोनों के ग्रन्थों (पद्मचरित और पउमचरिउ) के स्वतन्त्र रूप से तुलनात्मक अध्ययन का विषय है। यहाँ उदाहरण के लिए पद्मचरित और पउमचरिउ के प्रारम्भिक भाग के कुछ अंशों की तुलना ही पर्याप्त होगी—

पद्मचरित के प्रथम पर्व के आदि में मंगलाचरण स्वरूप तीर्थङ्करों की स्तुति की गई है। पउमचरिउ में भी तीर्थंकरों की स्तुति की गई है।

तीर्थंकरों की स्तुति के बाद पद्मचरित में सत्कथा की प्रशंसाकर रविषेण ने अपनी आचार्य परम्परा दी है। पउमचरिउ में मंगलाचरण के बाद सीधे आचार्य परम्परा का उल्लेख किया गया है।

पद्मचरित का दूसरा पर्व मगध देश के वर्णन से प्रारम्भ किया गया है। पउमचरिउ की प्रथम सन्धि में ही पद्मचरित की भाँति संक्षिप्त कथावस्तु का निर्देशन करके मगध देश का वर्णन किया गया है। मगध देश का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—'जहाँ कि भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, जो धान के श्रेष्ठ खेतों से अलंकृत है और जिसके भूभाग मूँग और मोठ की फलियों से पीले-पीले हो रहे हैं।'[६८] स्वयम्भू मगध देश के पके हुए धान्य का सीधे रूप में वर्णन न करके इस रूप में कहते हैं कि जहाँ पके हुए धान्य पर बैठी लक्ष्मी (शोभा) तारुण्य न पाने वाली खिन्न वृद्धा के समान दिखाई देती है।[६९]

मगध देश के पौड़ों और ईखों के वनों का वर्णन करते हुए पद्मचरित में कहा गया है—'जो दूध के सिंचन से ही मानों उत्पन्न हुए थे और मन्द-मन्द वायु से जिनके पत्ते हिल रहे थे, ऐसे पौड़ों और ईखों के वनों के समूह से जिस देश का निकटवर्ती भूभाग सदा व्याप्त रहता है।'[७०] पउमचरिउ में इसी को सीधे रूप में इस ढंग से व्यक्त किया गया है—जहाँ पवन से हिलते डुलते ईख के खेत पीड़न के भय से काँपते हुए से जान पड़ते थे।[७१]

---

६८. उर्वरायां वरीयोभिः यः शालेयैरलङ्कृतः।
    मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशाः कपिलत्विषः ॥—पद्म० २।७।

६९. जेहिं पक्क कलमे कमलणिणिसण्णा।
    अलहन्त तरणि घेर धविसण्णा ॥—पउ० १।४।२।

७०. क्षीरसेकादिवोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलैः।
    पुण्ड्रेक्षुवाटसन्तानव्याप्तितानन्तरभूलतः ॥—पद्म० २।४।

७१. जहिं उच्छु वणइं पवणाहयाइं।
    कम्पन्ति व पीलण-भय गयाइं ॥—पउम० १।४।४।

अनार के बगीचों के विषय में पद्मचरित में कहा गया है—जिनके फूल तोताओं की चोंचों के अग्रभाग तथा वानरों के मुखों का संशय उत्पन्न करने वाले हैं ऐसे अनार के बागों से वह देश युक्त है।[७२] पउमचरिउ में इसी को इस रूप में व्यक्त किया गया है—(जिस देश में) खुले हुए अनारों के मुख कपि के मुख की तरह जान पड़ते हैं।[७३]

केतकी की धूलि से युक्त प्रदेशों का वर्णन करते हुए रविषेण कहते हैं—'जिस देश के ऊँचे-ऊँचे प्रदेश केतकी की धूलि से सफेद-सफेद हो रहे हैं और ऐसे जान पड़ते हैं मानों मनुष्यों से सेवित गंगा के पुलिन ही हों।'[७४] इसी के विषय में स्वयम्भू कहते हैं—जहाँ सुन्दर भौंरों की पंक्तियाँ केतकी के रजकणों से धूसरित हो रही थीं।[७५]

पद्मचरित में फलों के द्वारा श्रेष्ठ वृक्षों के समान गृहस्थों से पथिकों के समूह सन्तुष्ट होते हैं।[७६] पउमचरिउ में हिलते-डुलते दाखों के लतागृह पथिकों को रसरूपी जल पिलाते हैं।[७७] इससे पथिक सन्तुष्ट होते हैं।

पद्मचरित मे मगध देश के सब ओर से सुन्दर तथा फूलों की सुगन्धि से मनोहर राजगृह नगर के विषय मे कहा गया है कि मानों वह संसार का यौवन ही हो।[७८] पउमचरिउ में एक कदम और आगे चलकर कवि कहता है—'उस मगध देश मे धन-धान्य और स्वर्ण से समृद्ध राजगृह नाम का नगर था, जो

---

७२. कोटिभिः शुकचञ्चूनां तथा शाखामृगाननैः ।
संदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमीवनैः ॥—पद्म० २।१६ ।

७३. जहिं फाडिम-वयणइं दाडिमाइं ।
णज्जन्ति ताइं णंकइं मुहाइं ॥—पउमचरिउ १।४।६ ।

७४. केतकीधूलिधवला यस्य देशाः समुन्नताः ।
गङ्गापुलिनसङ्काशा विभान्ति जनसेविताः ॥—पद्म० २।१४ ।

७५. जहिं महुयर पन्तिउ सुन्दराउ ।
केयइ केसर रय धूसराउ ॥—पउमचरिउ १।४।७ ।

७६. तर्पिताध्वगसंघातैः फलैर्वरतरूपमैः ।
महाकुटुम्बिभिर्नित्यं प्राप्तोऽभिगमनीयताम् ॥—पद्म० २।३० ।

७७. जहिं दक्खा मण्डव परियलन्ति ।
पुणु पन्थिय रस सलिलइं पियन्ति ॥—पउम० १।४।८

७८. तत्रास्ति सर्वतः कान्तं नाम्ना राजगृहं पुरम् ।
कुसुमामोदसुभगं भुवनस्येव यौवनम् ॥—पद्म० २।३३ ।

धरती रूपी नवयुवती के सिर पर बँधे हुए मुकुट के समान सुशोभित होता था।'[७९]

राजगृह नगर के वर्णन के बाद पद्मचरित में राजा श्रेणिक का वर्णन किया गया है।[८०] पउमचरिउ में भी राजगृह वर्णन के बाद राजा श्रेणिक का वर्णन किया गया है।[८१] श्रेणिक वर्णन के बाद एक श्लोक में उसकी पत्नी चेलना का वर्णन करने के पश्चात् विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर के आने का तथा उनकी महिमा का वर्णन किया गया है।[८२] पउमचरिउ में श्रेणिक वर्णन के बाद भगवान् महावीर का इसी प्रकार वर्णन किया गया है।[८३]

पद्मचरित में समवसरण का विस्तार से, पउमचरिउ में अपेक्षाकृत कम विस्तार से भगवान् महावीर के समवसरण का वर्णन किया गया है।[८४]

पद्मचरित में शंकायुक्त हो राजा श्रेणिक गौतम गणधर से रामकथा सुनने की प्रार्थना करता है। पउमचरिउ में भी ऐसा ही निरूपण है।[८५] श्रेणिक द्वारा प्रश्न किए जाने पर गौतम गणधर पहले क्षेत्र, काल के विषय में निरूपण कर बाद में कुलकरों का निरूपण करते हैं। पउमचरिउ मे भी ऐसा ही किया गया है।[८६]

कुलकरों के वर्णन के बाद अन्तिम कुलकर नाभिराय की पत्नी मरुदेवी तथा उनके सोलह स्वप्नों व फलों का निरूपण है, पउमचरिउ में भी ऐसा ही विवेचन है।[८७]

इस प्रकार पूरा पउमचरिउ पद्मचरित के प्रभाव से ओतप्रोत है। अन्तर यही है कि पद्मचरित में विस्तार और पउमचरिउ मे संक्षेप पाया जाता है साथ ही स्वयम्भू ने निजी काव्यात्मक प्रतिभा का भी पउमचरिउ में उपयोग किया है।

●

---

७९. तहिं तं पट्टणु रायगिहु धण-कणय समिद्धउ।
णं पिहिविए णव जोव्वणए सेहरु आइद्धउ॥—पउमचरिउ ४।४।९।

८०. पद्म० २।३३-७०। ८१. पउमचरिउ १।४, ५, ६।

८२. पद्म० २।७१-१३४। ८३. पउमचरिउ ४।६, ७।

८४. पद्म० २।१३५-१५४, पउमचरिउ १।८।

८५. पद्म० २।२३०-२४९, ३।२३, १६-२२, पउमचरिउ १।९, १०।

८६. पद्म० ३।२४-९०, पउमचरिउ १।११, १२, १३।

८७. पद्म० ३।९१-१५३, पउमचरिउ १।१३, १४-१६।

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत ग्रन्थ

१ पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग १	आचार्य रविषेण, अनु० प० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (जुलाई १९५८)।
२ पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग २	आचार्य रविषेण, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (फरवरी, १९५९)।
३ पद्मपुराण (पद्मचरितम्)—भाग ३	आचार्य रविषेण, अनु० प० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम आवृत्ति (नवम्बर, १९५९)।
४ कामसूत्रम	वात्स्यायन व्या० देवदत्त शास्त्री चौखम्भा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी (१९६४ ई०)।
५ चन्द्रप्रभ चरित	वीरनन्दी, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
६ मनुस्मृति	मनु, भाष्य० स्व० प० तुलसीराम स्वामी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, (१९५४ ई०)।
७ अमरकाश	अमरसिंह।
८. रघुवश	कालिदास (मल्लिनाथ टीका)
९ ऋग्वेद	(सूरत, १९५०)।
१०. अथर्ववेद संहिता	(सूरत, १९५०)।
११ शतपथ ब्राह्मण	(काशी वि० स० १९९४)।
१२ साहित्य दर्पण	विश्वनाथ, व्या० डा० सत्यव्रत सिंह चौखम्भा विद्याभवन, चौक, वाराणसी (१९५७)।

१३. हरिवंश पुराण — जिनसेन, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन (प्र० सं०)।

१४. तत्त्वार्थसूत्र—(मोक्षशास्त्र) — उमास्वामी, टीका० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रका० मूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत, वीर सं० २४८२।

१५. रत्नकरण्ड श्रावकाचार — आचार्य समन्तभद्र, जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर।

१६. तत्त्वार्थवार्तिक — अकलंकदेव, सं० पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी) (प्र० सं०)

१७. लघीयस्त्रयादि संग्रह — अकलंकदेव, सं० पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी), प्र० सं०।

१८. न्यायदीपिका — अभिनव धर्मभूषणयति, अनु० डा० दरबारीलाल कोठिया, प्रका० वीरसेवा मन्दिर, देहली, द्वि० आवृत्ति।

१९. कौटिलीयं अर्थशास्त्रम् — कौटिलीयं अर्थशास्त्रम्, रामतेज शास्त्री, पं० पुस्तकालय, काशी सं० २०००।

२०. अष्टाध्यायी — आचार्य पाणिनि।

२१. शिशुपाल वध — महाकवि माघ।

२२. महाभारत — चित्रशाला प्रेस, पूना।

२३. नाट्यशास्त्र — भरतमुनि, बम्बई सं०।

२४. संगीतरत्नाकर — आचार्य शार्ङ्गदेव, अडयार सं०।

२५. अभिनव भारती — बड़ौदा सं०, तृतीय खंड।

२६. आदिपुराण — जिनसेन, अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

२७. मुनिधर्मप्रदीप — आचार्य कुंथुसागर, कुंथुसागर ग्रन्थमाला, पुष्प नं० ३०, सन् १९४१।

प्राकृत ग्रन्थ

२८. आचारांग

२९. नायाधम्मकहाओ

३०. निशीथ

३१. अंतगडदसाओ

३२. सूयगडंग

३३. द्रव्यसंग्रह — नेमिचन्द्राचार्य, गणेशवर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला, खरखरी, धनबाद, बिहार, (१९५८)।

३४. गोम्मटसार (जीवकांड) — नेमिचन्द्राचार्य, रायचन्द्र जैन ग्रंथ-माला, शोलापुर।

पालिग्रन्थ

३५. दीघनिकाय — (बम्बई सं १९४३)।

३६. केवट्टसुत्त — (बम्बई सं० १९४३)।

अपभ्रंश ग्रन्थ

३७. पउमचरिउ–(भाग–१, २, ३) — कवि स्वयम्भू, अनु० डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, एम० ए० साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (प्र० सं०)।

हिन्दी ग्रन्थ

३८. जैन साहित्य और इतिहास — नाथूराम प्रेमी (द्वि० सं०)।

३९. संस्कृत साहित्य का इतिहास — कीथ, प्र० मोतीलाल बनारसीदास, काशी।

४०. रामकथा (उत्पत्ति और विकास) — डॉ० रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्ववि०।

४१. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — चन्द्रशेखर पाडेय तथा शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर (१९६४)।

४२. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्या-भवन, काशी (१९६०)।

४३. कालिदास और उसकी काव्यकला — वागीश्वर विद्यालंकार, प्र० मोतीलाल बनारसीदास।

४४. संस्कृत साहित्य का इतिहास — बल्देव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी (सप्तम सं०)।

४५. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान — डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल (१९६२)।

४६. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत — डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी (प्र० सं० १९६८) ।

४७. भारतीय संस्कृति का इतिहास — नरेन्द्रदेव सिंह शास्त्री, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ (द्वि० सं०) ।

४८. संस्कृत काव्य में शकुन — दीपचन्द्र शर्मा, साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ (प्र० सं०) ।

४९. कादम्बरी: एक सांस्कृतिक अध्ययन — वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखम्भा विद्या-भवन, वाराणसी (१९५८) ।

५०. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद — हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई (सितम्बर, १९५२) ।

५१. वर्ण जाति और धर्म — पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (प्र० सं०, १९६३) ।

५२. प्राचीन भारतीय वेशभूषा — डा० मोतीचन्द्र, सस्ता साहित्य मण्डल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली, सं० २००७ ।

५३. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन — वासुदेवशरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, १९५३ ।

५४. रामायणकालीन संस्कृति — शान्तिकुमार नानूराम व्यास, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्र० सं० १९५८ ।

५५. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका — रामजी उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (मार्च १९६६) ।

५६. वैदिक साहित्य और संस्कृति — बलदेव उपाध्याय (तृ० सं० १९६७) ।

५७. जैन बाल गुटका (प्र० भाग) — बाबू ज्ञानचन्द्र जैनी, लाहौर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय अनारकली, जैन गली, लाहौर ।

५८. जैन दर्शन — पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन (द्वि० सं०) ।

५९. राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त — पुखराज जैन, प्रका० साहित्य भवन आगरा–३ (सन् १९७०)।

६०. प्राचीन भारतीय संस्कृति — बी० एन० लूनिया, प्र० लक्ष्मी-नारायण अग्रवाल, शिक्षा साहित्य के प्रकाशक, आगरा (प्र० सं० जनवरी १९६६)।

६१. गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ — प्रका० अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ (७ सितम्बर, १९६७)।

६२. कला और संस्कृति — डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद (द्वि० सं० १९५८)।

६३ प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति — राजकिशोर सिंह यादव, उषा यादव, हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, विनोद पुस्तक भंडार, आगरा (प्र० सं० १९६८)।

६४. संगीत शास्त्र — के० वासुदेव शास्त्री, सूचना विभाग, उ० प्र०, (सन् १९५८)।

६५. भरत का संगीत सिद्धान्त — कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उ० प्र० (सन् १९५९)।

६६. बरैया स्मृति ग्रंथ — दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद, सन् १९६७।

६७. भारतीय मूर्तिकला — रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००९।

६८. भारतीय स्थापत्य — द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ० प्र० (प्र० सं० १९६८)।

६९. सार्थवाह — डॉ० मोतीचन्द्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५३।

७०. Introduction to Prakrit.

७१. New standard dictionary of the English Language vol. III Funk & wagnal.

७२. The century dictionary vol. V.

७३. Encyclopdedia of religion and ethics.

पत्र-पत्रिकायें

७४. मार्डन रिव्यू
७५. महावीर जयन्ती स्मारिका — प्रका० राजस्थान जैन सभा, जयपुर (१९६४)।
७६. सन्मति सन्देश — प्रका० प्रकाश हितैषी शास्त्री, ५३५, गाँधीनगर, दिल्ली (वर्ष १५ अंक, ३)।

●

शब्दानुक्रमणिका

[अ]

[आ]

[इ]

[ई]

[उ]

[ऊ]

[ए, ऐ]

[अं]

[ऋ]

[क]

●